विभोम-स्वर

RNI Number : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814
वर्ष : 7, अंक : 28
जनवरी-मार्च 2023
मूल्य 50 रुपये

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

Dhingra Family Foundation
USA

नूतन
वर्षाभिनंदन

गद्य विशेषांक

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

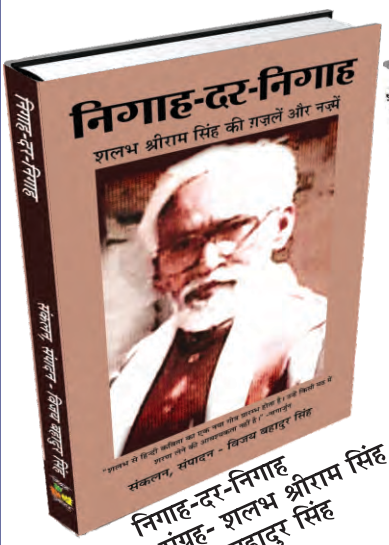

निगाह-दर-निगाह
गीत-ग़ज़ल संग्रह- शलभ श्रीराम सिंह
सं. विजय बहादुर सिंह

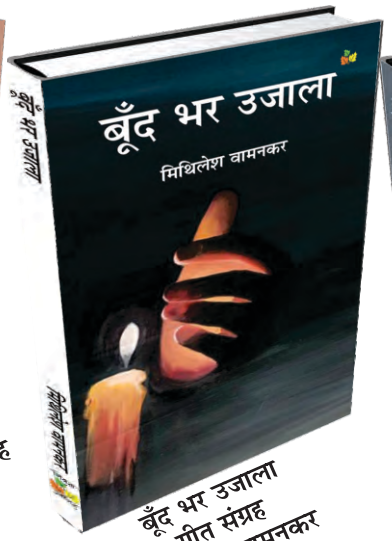

बूँद भर उजाला
गीत संग्रह
मिथिलेश वामनकर

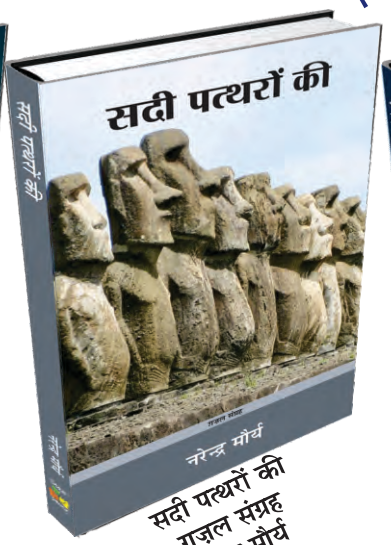

सदी पत्थरों की
ग़ज़ल संग्रह
नरेन्द्र मौर्य

मनरंगी
उपन्यास
गरिमा मुद्गल

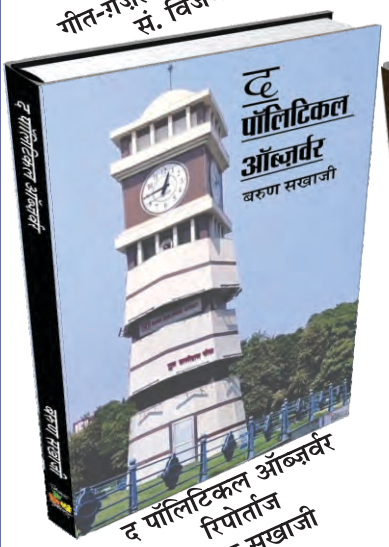

द पॉलिटिकल ऑब्ज़र्वर
रिपोर्ताज
बरुण सखाजी

धूप का छोर
दोहा संग्रह
सीमा पांडे मिश्रा

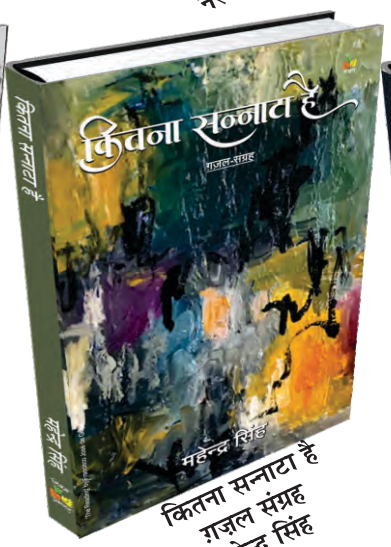

कितना सन्नाटा है
ग़ज़ल संग्रह
महेन्द्र सिंह

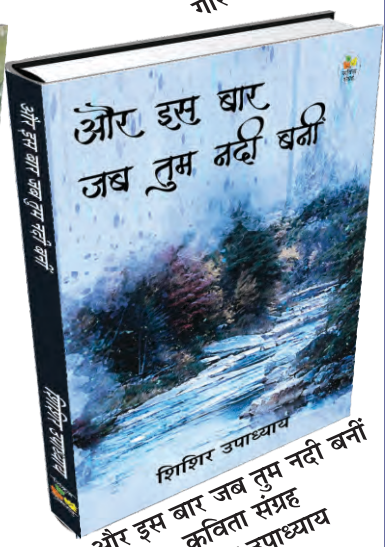

और इस बार जब तुम नदी बनीं
कविता संग्रह
शिशिर उपाध्याय

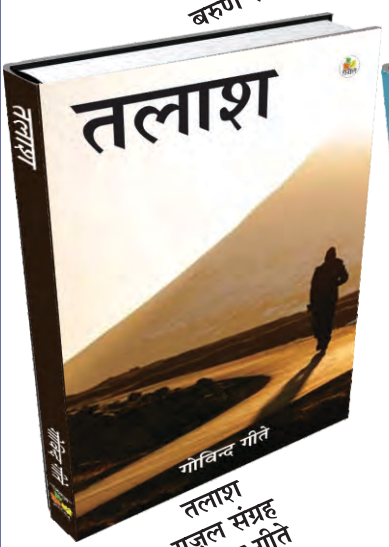

तलाश
ग़ज़ल संग्रह
गोविन्द गीते

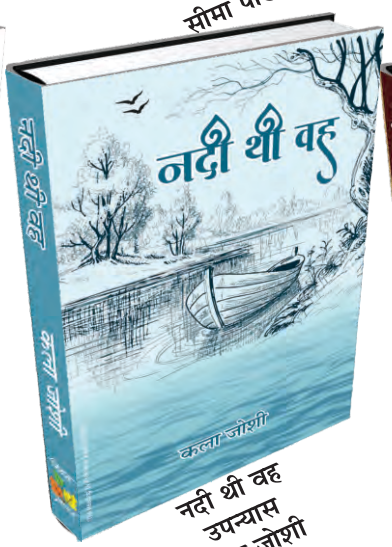

नदी थी वह
उपन्यास
कला जोशी

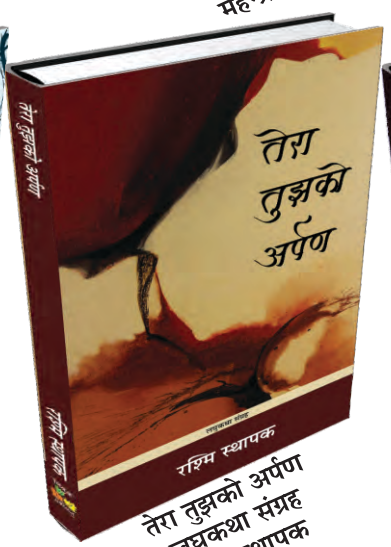

तेरा तुझको अर्पण
लघुकथा संग्रह
रश्मि स्थापक

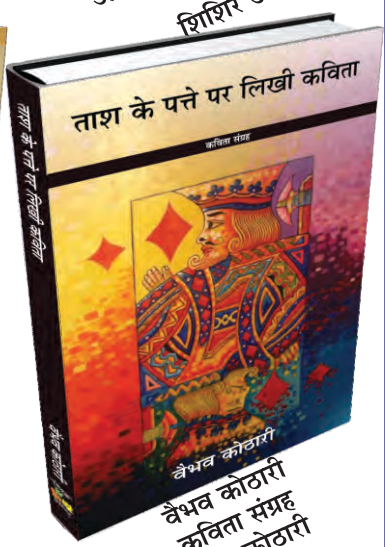

वैभव कोठारी
कविता संग्रह
वैभव कोठारी

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
+91-8819806162
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

संरक्षक एवं
प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)

तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह, सनी गोस्वामी
डिज़ायनिंग
सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Vibhom Swar
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000312
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 7, अंक : 28, त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2023
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

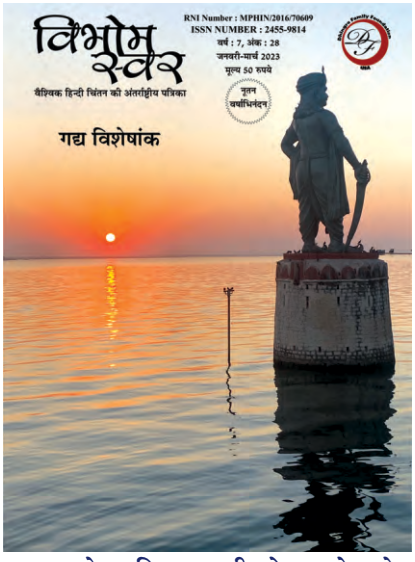

मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल के बड़े तालाब पर राजा भोज प्रतिमा और सूर्य

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

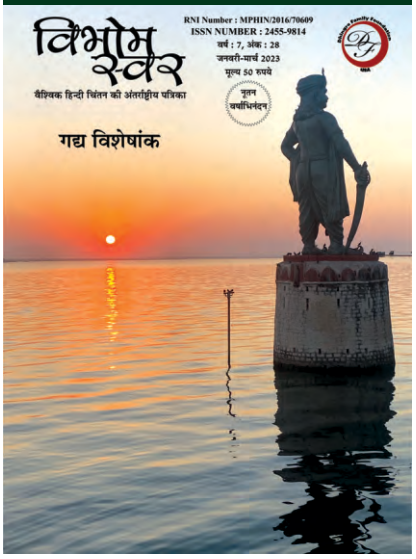

विभोम-स्वर

वर्ष : 7, अंक : 28,

जनवरी-मार्च 2023

गद्य विशेषांक

संपादकीय 3

मित्रनामा 5

साक्षात्कार

नए कवियों में स्थापना की हड़बड़ी और अपने पुरखों-पूर्वजों-अग्रजों के लिखे को अनदेखा करने की प्रवृत्ति है

वरिष्ठ कवि वसंत सकरगाए से शिवना साहित्यिकी के सह-संपादक आकाश माथुर की बातचीत 9

विस्मृति के द्वार से

किस्सा, किस्सों और उसके पीछे- पीछे मैं

गीताश्री 14

कथा कहानी

बा-इज़्ज़त बरी

रेनू यादव 21

रुके क़दम, यूँ आगे बढ़ें...

उषा राजे सक्सेना 28

जॉन की गिफ़्ट

पुष्पा सक्सेना 34

चबूतरा

विनीता राहुरीकर 38

ख़ामोशी का साझापन

डॉ. अमिता प्रकाश 41

एक बूँद समंदर

मीनाक्षी दुबे 44

मैं मधु नहीं

राजकुमार सिंह 49

वसीयत

अनुजीत इकबाल 52

भाषांतर

ज़ख़्मी पंखों की फड़फड़ाहट

पंजाबी कहानी, मूल लेखक : अजमेर सिद्धू

अनुवादक: सुभाष नीरव 55

सौदा

मराठी कहानी, मूल कथाकार: रा. रं. बोराडे

अनुवादक : डॉ. सचिन गपाट 60

ललित निबंध

नव पर नव स्वर दे..

विनय उपाध्याय 64

अनंत, फेसबुक और मेटावर्स

डॉ. गरिमा संजय दुबे 66

शहरों की रूह

स्वेत्येंका-सदियों को समेटते चंद रास्ते

प्रगति टिपणीस 68

व्यंग्य

मठ हाउस

दिलीप कुमार 71

साहित्यकार बनने के नुस्खे

चन्द्र प्रकाश श्रीवास्तव 73

कुत्ते की मौत

हनुमान मुक्त 76

बीमार रहने के शौकीन लोग

उर्दू व्यंग्य

मूल रचना – कृष्ण चंदर

अनुवाद - अखतर अली 78

बस एक चुप-सी लगी है..

कमलेश पांडेय 79

लघुकथा

मेरा बेटा, मेरा लाल

डॉ. वीरेन्द्र कुमार भारद्वाज 37

योगदान

टीकेश्वर सिन्हा "गब्दीवाला" 54

संस्मरण

डॉ. राजेंद्र मिश्र : पॉलीटिक्स से बेख़बर

ब्रजेश श्रीवास्तव 80

आलेख

हिन्दी ग़ज़ल में समकालीनता

डॉ. भावना 84

आख़िरी पन्ना 88

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष) 11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is "Zero")

(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके: 1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र है), 6-दिनांक (यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

हर बात पर विदेशों की स्वीकृति की इच्छा क्यों ?

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोरिंस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

भारत जब ग़ुलाम था, लोग छोटी-छोटी बातों की स्वीकृति के लिए विदेशियों यानी अंग्रेज़ों की ओर देखते थे। आज़ादी के वर्षों बाद भी वह मानसिकता नहीं बदली। हालाँकि ग़ुलामी की बेड़ियाँ तोड़ कर खुली साँस लेने की आज़ादी के लिए ही लंबा संघर्ष आज़ादी के परवानों ने किया। ऐसा महसूस होता है, बाहरी आज़ादी ही मिली है, भीतर से अभी भी ग़ुलाम हैं। मस्तिष्क वैयक्तिक ज़िम्मेदारी लेने से अभी भी कतराता है। आप सोच रहे होंगे यह मैंने क्या कहना शुरू कर दिया है, भारत तो आज प्रगति और विकास की राह पर विश्व में बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ रहा है। जी बढ़ ज़रूर रहा है, पर हर बात पर विदेशों की स्वीकृति की इच्छा भी रहती है।

दिल्ली के स्कूल मॉडल पर न्यूयॉर्क टाइम्स ने कुछ लिख दिया, तो वह मॉडल अच्छा हो गया। देशवासियों की स्वीकृति-अस्वीकृति कोई मायने नहीं रखती। विदेशों से सम्मान मिलते हैं तो लेखकों की लेखनी सार्थक हो जाती है। भारत के प्रतिष्ठित सम्मानों से जो लेखक सम्मानित होते हैं, क्या उनका कोई महत्त्व नहीं? बहुत से कवि यहाँ कवि सम्मेलनों में हिस्सा लेने आते हैं, भारत लौट कर उनका पारिश्रमिक बढ़ जाता है। मेरे सामने कई कवियों ने अपने आगामी कार्यक्रमों का पारिश्रमिक बढ़ा दिया। वे सभी कवि भारत में ही अच्छे कवि थे, तभी बुलाए गए थे। विदेशी दौरा करने से उनके लेखन में ऐसा क्या परिवर्तन आ गया कि एक रात में उनका पारिश्रमिक बढ़ गया। यह मानसिक ग़ुलामी नहीं तो और क्या है कि अभी भी अंग्रेज़ों की स्वीकृति की मोहर चाहिए।

योग भारत की देन है। पर जब विदेशों ने योग को अपनाया तो देश में इसकी कदर बढ़ी। कभी-कभी लगता है विदेशों में हिन्दी का प्रचार-प्रसार जिस तेज़ी से हो रहा है, वही भारत में हिन्दी को प्रथम दर्जे की भाषा बनाने में सहायता करेगा।

सन् 2000 में विदेशों में आई टी बूम आया। सन् 2000 से 2022 तक बहुत से भारतीय विदेशों में आई टी कंपनियों के सीईओ, अध्यक्ष और उपाध्यक्ष बने। भारत ने भी इसका संज्ञान लिया और तकनीक के क्षेत्रों में क्रांति आई। आज देश तकनीकी विकास में बहुत आगे निकल चुका है। उच्च पदों पर आसीन सभी भारतीय देश से ही शिक्षित और प्रशिक्षित हो कर आए हैं, पर

संपादकीय

वहाँ किसी ने ध्यान नहीं दिया, सही स्थान नहीं पा सके। विदेशों में उनकी प्रतिभा को पहचाना गया।

सांस्कृतिक और सामाजिक स्तर पर देखें तो देश में दिन प्रतिदिन घनघोर परिवर्तन आ रहा है। पश्चिमी पहनावे का प्रचलन, हेलोवीन, थैंक्सगिविंग, वैलेंटाइन विशुद्ध विदेशी त्योहारों का आकर्षण देश में बढ़ता जा रहा है। पाश्चात्य पहनावा और त्योहारों को मनाना कोई बुरी बात नहीं, पर अपनी जड़ों को छोड़ते जाना भी तो अच्छी बात नहीं। विदेशों के प्रति झुकाव को बाज़ारवाद और सोशल मीडिया बढ़ावा देता है, यह सर्वविदित है। पर यूरोप की सेक्स के प्रति उन्मुक्तता और बिना शादी किये रहना यानी लिव इन संबंधों को स्त्री विमर्श के नाम पर स्वीकारना सोचने का विषय है। यूरोपियन देशों का सांस्कृतिक इतिहास, सामाजिक व्यवस्था और क़ानूनन अधिकार भारत से अलग हैं। भारत में जो बातें वर्जित हैं, यूरोप में मान्यता पा चुकी हैं। यूरोप के मुकाबले अमेरिका रूढ़िवादी है। यहाँ यूरोप जैसा खुलापन नहीं। विवाह संस्था का महत्त्व समझा जाता है।

अमेरिका के शहरों, गाँवों और क़स्बों की सफ़ाई और व्यवस्था का दायित्व लोग स्वयं लेते हैं। सड़कें और हाइवेज़ ग्रहण करते हैं। उनकी साफ-सफाई की वैयक्तिक ज़िम्मेदारी लेते हैं। हर छोटी-बड़ी बात के लिए सरकार की ओर नहीं देखते, स्वयं कार्य करते हैं। संस्थाओं, चर्चों, मंदिरों, गुरुद्वारों और मस्जिदों की कार्यकारिणी तथा उनके सदस्य सड़कों और हाइवेज़ को अपनाते हैं और साफ़ रखते हैं। अन्य बातों की तरह देशवासी इस बात को क्यों नहीं अपनाते?

उस देश के स्त्री विमर्श को सामने रख देश के स्त्री विमर्श को परिभाषित किया जाता है, जिस देश की स्त्री को आज़ादी के एक सौ चवालीस वर्ष बाद वोट का अधिकार मिला। आज तक अमेरिका में महिला प्रेसिडेंट नहीं चुनी गई।

अफ्रीका के लोगों को ग़ुलाम बनाया गया। कोई मानवाधिकार संस्था खड़ी नहीं हुई। किसी ने विरोध नहीं किया। अभी भी उनके साथ भेदभाव किया जाता है। कोई नहीं बोलता।

अमेरिका, रूस और ब्रिटेन मनमानी करते हैं, पर दूसरे देशों के आंतरिक मामलों में मानवाधिकारों को सामने रख दखल देते हैं। ऐसे देशों की ओर क्यों देखा जाता है ?

भारत के पास भौगोलिक संपदा है, ख़ूबसूरत सांस्कृतिक इतिहास है, गहरी पारिवारिक और सामाजिक व्यवस्था है, युवा शक्ति से भरपूर देश है, इन देशों की ओर देखने की बजाय, अपनी शक्ति पहचाने! इसी कामना के साथ...

इस बार का यह नव वर्ष अंक समर्पित है गद्य साहित्य की विधाओं को, साक्षात्कार, आत्मकथ्य, कहानी, अनुवाद, व्यंग्य, निबंध, संस्मरण, आलेख, लघुकथा, यात्रा वृत्तांत जैसी विधाओं को हमने इस अंक में स्थान देने की कोशिश की है, पढ़ कर अपनी प्रतिक्रिया अवश्य प्रदान कीजिएगा।

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

प्रकृति के पास कोई कोल्ड स्टोरेज नहीं है, उसके पास अपनी व्यवस्था है कि वह मौसम के अनुसार हमें फल और फूल प्रदान करती है। लेकिन हम चाहते हैं कि प्रकृति के चक्र को तोड़ कर अपनी इच्छा से जब जो चाहें वह फल या फूल प्राप्त करें। ज़ाहिर बात है कि इस लालच के दुष्परिणाम भी हमें ही भोगने होंगे।

मित्रनामा

विस्तृत फ़लक

विभोर स्वर और शिवना साहित्यिकी दोनों पत्रिकाएँ मिलीं, बहुत धन्यवाद। इस अंक का मुखपृष्ठ न सिर्फ आकर्षक है, बल्कि इसका फ़लक इतना विस्तृत है कि विचार और सोच को एक नई दृष्टि देता है, बहुत बधाई।

-शेफालिका सिन्हा

000

कहानियों ने ख़ासा प्रभावित किया

'विभोम- स्वर' का अक्टूबर-दिसम्बर अंक पढ़ा। सुधा ओम ढींगरा जी का लिखा संपादकीय दिल को छू गया। जिसमें वे दोहरी मानिसकता, दोहरे मापदंड का ज़िक्र करती हैं, जो अमेरिकी भारतीयों की बुराई करते हैं लेकिन बाद में ख़ुद को अमेरिका में स्थापित करने की कोशिश करते हैं, तब यह बेहतरीन देश हो जाता है। समाज और सामान्य जनजीवन में यह मानिसकता बहुत गहरे घर कर चुकी है।

अंक की कविताओं का चयन भी अच्छा है, कुछ लघुकथाएँ प्रभावी हैं, कुछ संपादन की माँग करती हैं। इस अंक की अधिकांश कहानियों ने ख़ासा प्रभावित किया। सन्दीप तोमर की कहानी "तुम आओगे न" एक अलग तरह का फ्लेवर लिए हैं, लेखक की अधिकांश कहानियाँ प्रेम के ताने-बाने को लेकर पढ़ी हैं लेकिन यह कहानी इन सबसे इतर है, एक पहाड़ी स्त्री के साथ जीवन का सामंजस्य बिठाने की कोशिश में लगा नायक आम कहानियों के पुरुष पात्रों से सर्वथा भिन्न है, जबकि नायिका अपना एक अलग वैचारिक संसार बना ख़ुद को अलग-थलग पाती है, जिसकी परिणति पृथक होकर जीवन यापन करने में होती है, नायिका के पूर्व प्रेमी के सम्मुख अपनी ग़लतियों को स्वीकारना नायिका को बहुत ऊपर खड़ा कर देता है, यही लेखक के मन की पड़ताल करने के लिए काफी है। एक अच्छे अंक के लिए बधाई।

-सुमन युगल

मुज़फ़्फ़रनगर, उत्तर प्रदेश

000

अक्टूबर-दिसम्बर 2022 अंक में छपी नीरज नीर की कहानी 'हाकिम का पैजामा' पर खंडवा में साहित्य संवाद तथा वीणा संवाद ने चर्चा की। इस चर्चा के संयोजक श्री गोविन्द शर्मा तथा समन्वयक श्री शैलेन्द्र शरण थे।

चुटीली और व्यंग्यात्मक कहानी

कहानी हाकिम का पैजामा, बहुत ही चुटीली और व्यंग्यात्मक कहानी है, इस कहानी का शिल्प अनूठा है। लेखन ने बहुत ही ख़ूबसूरत कहन से कथ्य का ताना-बाना कहानी में बुना है। कहानी में जनता, भय, सियासत और कर्मचारियों के बीच कैसा रिश्ता है कैसे प्रकरण बनते हैं, उनका निपटान होता है। सब कुछ अपने नपे तुले प्रतीकात्मक लहजे में लेखक ने बहुत चतुराई से कहानी में रखा है। मुझे कहावत याद आती है "करे कोई भरे कोई" अच्छी कहानी के प्रस्तुतिकरण हेतु साधुवाद।

-श्याम सुंदर तिवारी, खण्डवा

000

एक बढ़िया कहानी

आज चर्चा में कहानी हाकिम का पैजामा है। कहानी बहुत ही रोचक शैली में शासक वर्ग की सनक, और सर्व साधारण के जीवन पर पड़ने वाले उसके प्रभाव और समाज में उपस्थित कुछ अवसरवादी लोगों जो इन सब स्थितियों का अपने पक्ष में किसी भी प्रकार प्रयोग करना चाहते हैं, का वर्णन करती है।

हाकिम के पैजामे को उस आभिजात्य के प्रतीक के रूप में प्रयोग किया गया है जो एक साधारण व्यक्ति अपने जीवन में सिर्फ कल्पना कर सकता है। कहानी का केंद्रीय पात्र सरल किंतु भीरु है। जीवन में अकस्मात् कोई वस्तु मिलने पर उसका लोभ संवरण नहीं कर पाता। लेकिन उससे जुड़ी दुश्वारी पता चलते ही, उससे छुटकारा पाना चाहता है किसी भी प्रकार से।

पड़ोसी के अहाते में पैजामे को फेंक देना, अपनी मुसीबत दूसरों के माथे मढ़ देने का प्रतीक है। और सबसे चुटीला अंत है, जिसमें केंद्रीय पात्र को ज्ञात होता है कि यह सारी मुसीबत उसके पड़ोसी ने उसके लिए ही खड़ी की थी जिससे वह भाग्यवश बच गया है। एक बढ़िया कहानी पढ़ने का अवसर प्रदान करने के लिए साहित्य संवाद खंडवा एवं वीणा संवाद प्रकल्प का हार्दिक आभार। आदरणीय द्वय श्री गोविंद शर्मा तथा श्री शैलेंद्र शरण का हार्दिक आभार।

-गरिमा चवरे, रतलाम

000

अनूठी व्यंग्य कहानी

'विभोम-स्वर' (अक्टूबर-दिसंबर 2022) त्रैमासिक पत्रिका में प्रकाशित नीरज नीर की कहानी "हकीम का पाजामा" अनूठी और एक तरह से व्यंग्य कहानी है। अनूठी इसलिए कि इस तरह की कहानी प्राय: दुर्लभ होती हैं। व्यंग्य कहानी इसलिए कि अनैतिक कार्यों में व्यस्त हकीम का पाजामा चोरी जाना और हकीम का महल में बिना पाजामे के नंगे अपने महल में जाना शासक के नंगेपन पर व्यंग्य है। चोरी हुए पाजामे को अपने छत पर देखना और उसकी बनावट एवं नरमाई से आम आदमी का प्रभावित होना शासक के वैभव पर व्यंग्य है। सिपाहियों का किसी को भी चोर बनाकर प्रस्तुत करना व्यवस्था पर व्यंग्य है। पड़ोसी के द्वारा पाजामा चुरा कर अपने पड़ोसी की छत पर फेंकना हमारे सामाजिक संबंधों पर व्यंग्य है। इस तरह कहा जा सकता है कि कहानी में राजनीतिक,प्रशासनिक और सामाजिक परिवेश पर तीखा व्यंग किया गया है।

कहानी की भाषा प्रवाही है जिस से अंत तक पढ़ने की उत्सुकता बनी रहती है। सार्थक कहानी के लिए कहानीकार को बधाई। संयोजक गोविंद शर्मा एवं समन्वयक शैलेंद्र शरण का इस कहानी पर चर्चा कराने हेतु आत्मीय आभार।

रघुवीर शर्मा, खंडवा म.प्र.

000

राजशाही पर व्यंग्य

'विभोम-स्वर' में प्रकाशित नीरज नीर की कहानी हकीम का पजामा पढ़कर मज़ा आ गया। शानदार तरीके से राजशाही पर व्यंग्य किया गया है। वर्तमान विकृत राजनीति पर भी यह कहानी बिल्कुल सटीक वार करती है। फ्री

की चीज़ की लालच करना नैसर्गिक मानव स्वभाव है, ऐसे में पजामा मिलते ही कहानी का नायक उसे पहनने का लोभ संवरण नहीं कर पाया और बिना वजह के तनाव का शिकार हुआ। कहानी की भाषा शैली सरस होकर वाक्य दर वाक्य कहानी मस्तिष्क में बहती रहती है। मुझे इस कहानी के मध्य भाग में कसावट थोड़ी कमज़ोर लगी, हालाँकि शैली व्यंग्यात्मक होने से इस ओर ध्यान जाता ही नहीं है। कहानी के नायक ने पजामा पड़ोसी के गार्डन में फेककर पीछा छुड़ा लिया था किन्तु वह पजामा पुन: उसी स्थान पर(नायक के गार्डन में) कैसे आ गया इस रहस्य का खुलासा नहीं हो पाया।

एक बहुत अच्छी, रोचक और चुटीली कहानी के लिए नीरज नीर को, संयोजक गोविंद शर्मा एवं समन्वयक शैलेन्द्र शरण को हार्दिक बधाई।

-महेश जोशी

000

व्यंग्यात्मक रचना

नीरज नीर की कहानी 'हाकिम का पाजामा' एक व्यंग्यात्मक रचना है जो सत्ता की कार्यशैली पर व्यंग्य करती है।

सत्ताधीश के आदेशों का पालन करना मातहतों का दायित्व है। पाजामा चोरी के असली चोर को न पकड़ कर निर्दोष व्यक्ति को फाँसी पर चढ़ा देना सत्ता के चरित्र और मातहतों की कार्यशैली पर व्यंग्य है जो अपने राजा को ख़ुश करने के लिए किस तरह के हथकंडे अपनाते हैं। जिसके पास पाजामा है उसकी बात को भी अनसुना कर दिया जाता है कि जिसे फाँसी पर चढ़ाया जा रहा है वह निरपराध है। लेकिन उसकी बात मातहत कारिंदे नहीं सुनते। ऐसा करने पर राजा के सामने उनके निकम्मेपन की पोल खुल जाती जो वे असली मुजरिम को नहीं पकड़ सके।

राजा का पाजामा उतारकर पराई स्त्री के साथ संभोग करना और इस बीच पाजामे का चोरी हो जाना तथा राजा का निर्वस्त्र महल मे भागकर जाना, इसकी सांकेतिकता को समझा जाए तो यह भी समझा जा सकता है कि राजा अपने आनंद के लिए किसी भी प्रकार की मनमानी कर सकता है और अन्य व्यक्ति को अपराधी घोषित करवाकर उसे दंडित कर अपने अहम् की तुष्टि कर सकता है।

एक बात और सामने आती है कि आप अपने पड़ोसी को कम न आँकें।

कहानी मनोरंजक भी है और पुरानी क़िस्सा शैली में लिखी गई है। कहानीकार को बधाई संयोजक और समन्वयक को साधुवाद।

-कुँअर उदयसिंह अनुज

000

एक सधी हुई कहानी

नीरज नीर की कहानी हाकिम का पैजामा, आज की न्याय-अवस्था पर, आला अधिकारियों की लोलुपता एवं कार्य की खानापूर्ति पर कटाक्ष रूप में एक बड़ा-सा प्रश्नचिह्न लगाती है। अपने आप को निर्दोष साबित करने एक ओर तो सामान्य नागरिक आई बला को दूसरे के सिर थोपकर पल्ला झाड़ लेना चाहता है, वहीं दूसरी ओर आला अधिकारी साक्ष्य को छुपाकर एक निर्दोष की बलि लेने से भी नहीं चूकते। आम नागरिक के मन में अपने हाकिम के प्रति व्याप्त भय उसे सच से पलट जाने पर प्रेरित करता है। यदि कहीं कोई हिम्मत जुटाकर सच बोलता भी है तो उसकी सुनवाई नहीं होती,उसे मार-पीट कर साक्ष्य छिपा दिए जाते हैं। यह तो वैसे ही हुआ जैसे कोई अपने दामन को पाक-साफ रख कर दूसरे के उजले दामन पर कीचड़ उछालकर अपने इस हुनर पर खुश होता हो। बहुत कड़े व्यंग्य से परिपूर्ण, दो-एक उर्दू के शब्दों द्वारा वज़नी होती एक सधी हुई कहानी के लिए नीरज नीर को हार्दिक बधाई।

पुन: पाठकों के दिलों को झकझोर देनेवाली इस कहानी के लिए समन्वयक, शैलेन्द्र शरण एवं संयोजक गोविंद शर्मा का बहुत-बहुत धन्यवाद एवं आभार।

अनुराधा सुनील पारे

जबलपुर(मध्यप्रदेश)

000

कड़े कटाक्ष

नीरज नीर की कहानी हाकिम का पैजामा आज के वर्तमान को बख़ूबी दर्शाती कहानी है। आज हमारे अधिकारी अपना काम ख़त्म करने कैसे किसी को भी बलि का बकरा बनाते हैं इसका बख़ूबी वर्णन किया है।

हाकिम का पजामा बाहर कैसे आया यह पूछने की हिम्मत किसी की नहीं। और हिम्मत कर सच्चाई बताने वाले पहुँचे सज्जन को बिना सुने भगा दिया जाता है। कड़े कटाक्ष के साथ आज की परिस्थिति को दर्शाती इस कहानी के लिए नीरज नीर को बधाई।

हम पाठकों को एक बार पुन: झकझोर देनेवाली इस कहानी के लिए समन्वयक, शैलेन्द्र शरण एवं संयोजक गोविंद शर्मा का बहुत- बहुत धन्यवाद एवं आभार।

-मंजिरी "निधि "

000

पाठको को बाँधकर रखने में सक्षम

नीरज नीर की कहानी हाकिम का पैजामा, पढ़कर मन खुश हो गया एक पजामा लेकर इतनी सुंदर कहानी लिखना कहानीकार की कल्पनाशीलता को दर्शाता है। बहुत रोचक लेखन। एक बार तो कहानी पढ़कर हँसी भी आई लेकिन इसके पीछे छुपी आला अफ़सरों की हरकतें व लालची प्रवृत्ति भी खुलकर सामने आई है। अपने कार्य के प्रति उदासीनता एवं खानापूर्ति करना, लेखक की लेखनी का कमाल ही है। बेवजह बेकसूर लोगों को कैसे परेशानी प्रसाद के रूप में दे देते है यह इस कहानी में बख़ूबी दर्शाया है।

बहुत बढ़िया कहानी है। पाठकों को बाँधकर रखने में सक्षम रही। पुन: साधुवाद लेखक नीरज नीर, समन्वयक शैलेन्द्र शरण एवं संयोजक गोविंद शर्मा का बहुत-बहुत आभार व सादर धन्यवाद एक बहुत अच्छी कहानी पढ़वाने के लिए।

- सुषमा शर्मा इन्दौर

000

सशक्त लेखन

यह एक सहजता और बहुत ही सरल शब्दों से रचा गया व्यंग्य है। एक कहानी के ताने-बाने में से झाँकता सत्य जो पूरे सिस्टम को आईना दिखाता है। कहानी को बड़े ही रुचिकर तरीके से कहा है। क़िस्सागो की क़िस्सागोई मज़ेदार है।

सुंदर पैजामे के पीछे के असलियत

कितनी असुन्दर है। समरथ को नहीं दोष गोसाईं। पैजामा चोर किसी ग़रीब मासूम को साबित कर दंडित भी कर दिया जाता है। पकड़ने वाले अपनी पीठ थपथपाने वाले सब जी हुज़ूरी करने वाले दरबारी चारण और भाट के प्रतीक है। कुल मिलाकर बेहतरीन कथाक्रम की रोचकता को अंत तक बनाए रखा। सशक्त लेखन हेतु नीरज नीर को बधाई। समन्वयक शैलेन्द्र शरण एवं संयोजक गोविंद शर्मा का आभार।

-रश्मि स्थापक

000

न्याय व्यवस्था पर व्यंग्य

कहानी हाकिम का पैजामा शीर्षक पढ़ कर ही पाठक पढ़ने को आतुर हो जाता है और जैसे-जैसे पढ़ता है पाठक की जिज्ञासा बढ़ती जाती है कि कहानी का अंत क्या होगा।

कहानी हाकिम का पैजामा चोरी के शुरूआती विषय को लेकर बढ़ते हुए एक बड़ी न्याय व्यवस्था पर व्यंग्य करती हुई नज़र आती है। किस तरह एक साधारण व्यक्ति ग़लती ना होने पर भी डर रहा है और सच बात को न छुपाते हुए सब कुछ सबके सामने रखना चाहता है। वहीं आला अफसर अपने फ़र्ज़ के प्रति दिखावा करके औपचारिकता पूरी करते नज़र आते हैं और एक निर्दोष व्यक्ति को सूली पर चढ़ा कर अपने कार्य की इतिश्री करना चाहते है। कहानी चरमराती न्याय व्यवस्था की ओर पाठक का ध्यान इंगित करती हुई जान पड़ती है।

लेखक नीरज नीर, समन्वयक शैलेन्द्र शरण एवं संयोजक गोविंद शर्मा का बहुत-बहुत धन्यवाद एवं आभार।

-अदिति अत्रे

चंडीगढ़

000

सशक्त कहानी

कहानी का शीर्षक ही उत्सुकता बढ़ा देता है और आशा बँध जाती है कि, एक उत्कृष्ट व्यंग्य पढ़ने को मिलेगा। लेखक निराश नहीं करते।

व्यंग्य के साथ व्यवस्था पर तमाचा भी अच्छा ही पड़ा है। न्याय और पुलिस विभाग की लीपापोती सामने आई है।

चूँकि पैजामा हाकिम का है, इसलिए चोर भी तुरंत पकड़ा गया और पैजामा भी बरामद हो गया।

बहुत से पहलुओं की कमज़ोरी को उधेड़ती सशक्त कहानी है, जिसमें हाकिम साहब जैसे शक्ति संपन्न लोगों की ऐयाशियाँ, आम जनता का भय, पुलिस की लीपापोती करने की प्रवृत्ति और निर्दोष व्यक्ति पर अत्याचार आदि हैं। नीरज नीर को सार्थक रचना के लिए बधाई। शैलेन्द्र शरण, गोविंद शर्मा और राजश्री शर्मा का हार्दिक आभार, आपके सहयोग से एक अनूठी रचना पढ़ने को मिली।

-शशि शर्मा इंदौर

000

सुंदर कथानक

नीरज नीर की कहानी "हाकिम का पैजामा" वर्तमान सरकारी व्यवस्था की सत्यता दर्शाता सुंदर कथानक है। "हाकिम का पजामा" बाहर कैसे आया यह पूछने की हिम्मत किसी की नहीं। और हिम्मत कर सच्चाई बताने वाले पहुँचे सज्जन को बिना सुनें भगा दिया जाना सही प्रस्तुति।

चोर की दाढ़ी में तिनका सी स्थिति वाले व्यक्ति के मन का सही चित्रण किया है।

साथ ही पड़ोसी के मन की कटुता को बड़े ही सुन्दर ढंग से अंत में प्रस्तुत कर कहानी को बहुत सशक्त बना दिया है।

सरल सहज प्रवाहित भाषा शैली से मन पर अंकित होने वाली व सत्यता दर्शाती उत्कृष्ट कहानी के लिए लेखक को धन्यवाद व शैलेन्द्र शरण एवं गोविंद शर्मा का बहुत-बहुत धन्यवाद एवं आभार सुंदर कहानी प्रेषित करने हेतु।

-सुनीता परसाई

000

दिल को झकझोरने वाली कहानी

कहानी हाकिम का पैजामा राजशाही की कमियों को उजागर करती, दिल को झकझोर देने वाली है। हाकिम की मनमानी, सरकारी अफ़सरों की गैर ज़िम्मेदाराना हरकत, हाकिम की निगाह में कर्त्तव्य निष्ठ पुलिस बनने की ललक, साथ ही अपनी ग़लती को दूसरों पर थोपने वाली मनोवृत्ति को उजागर करती कहानी पाठक को आगे पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती है। एक अच्छा चरित्र भी सामने आता है जो निर्दोष को फाँसी का विरोध करता उसे बचाने की कोशिश करते हुए दिखता है। फाँसी वाली जगह के आसपास मेला लगना मनुष्य की संवेदनशीलता पर प्रश्न खड़ा करता है।

राजा और प्रजा के बीच ज़मीन -आसमान का अंतर है इसे भी पायजामा के द्वारा बता दिया साथ ही हाकिम के चरित्र के काले भाग को भी चित्रित किया गया है।

अच्छे कथानक के साथ गठी हुई कहानी पढ़ने का अवसर देने के लिए कहानीकार व वीणा संवाद के संपादक मंडल का आभार, धन्यवाद।

-संध्या पारे, रायगढ़

000

दिलचस्प कहानी

आलोच्य कहानी हाकिम का पैजामा दिलचस्प कहानी है।

वर्तमान की राजशाही के प्रशासनिक तंत्र और न्याय तंत्र पर तीक्ष्ण कटाक्ष है इस कहानी में किंतु ऐसी ही स्थितियाँ लोकशाही में भी परिलक्षित होती है।

हाकिम अपने सूबे का सर्वेसर्वा होता है। वह साधिकार ऐयाशी/दुराचरण करना भी अपना अधिकार समझता है।

पराई स्त्री से सहवास के दौरान कोई चोर उसका पैजामा चुरा लेता है। गुम हुए पैजामे की ख़बर अख़बार में ऐसी छपती है कि जिस चोर ने उसे चुराया है,उसे सरेआम फाँसी दे दी जाएगी।

ख़ुदा न खास्ता वह कहानी के सूत्रधार के बगीचे में पड़ा मिलता है। उस बेलबूटेदार रेशमी और आकर्षक पैजामे को देखकर वह उसे पहनकर सड़क पर घूमने का लोभ संवरण नहीं कर पाता। उसे अच्छा लगता है पैजामा पहनकर घूमना।

दूसरे दिन अख़बार में हाकिम के पैजामे की ख़बर अख़बार में छपी पढ़कर वह घबरा जाता है और सोचता है वह हो न हो हाकिम

का पैजामा ही है। वह उस पैजामे को शराबी पड़ोसी के घर जिससे उसकी खटपट चलती रहती है, उसके घर के आँगन में फेंक देता है। कहानी में मोड़ यहाँ पर आता है कि दूसरे दिन वही पैजामा उसे उसके बगीचे में पड़ा मिलता है,उसे आश्चर्य होता है। दूसरे दिन फिर ख़बर छपती है कि यदि पैजामा नहीं मिला तो सिपाहियो के साथ पूरे शहर को सज़ा मिलेगी। ऐसी स्थिति में वह पैजामा हाकिम को सौंपने की सोच कर घर से निकलता है।

बाहर उसे बहुत भीड़ मिलती है। चौराहे की ओर जाते हुए, रास्ते में लोगों से उसे पता चलता है कि पैजामा मिल गया और चोर को फाँसी दी जाएगी, यह उसी की भीड़ है। वहाँ उसे उसका पड़ोसी भी दिखता है, मुस्कुराते हुए उससे मिलता है।

वह देखता है कि चोर को सिपाही ले जा रहे हैं। वह सिपाहियों से कहता है कि वह चोर नहीं है, पैजामा तो मेरे पास है, उसकी बात अनसुनी कर कहा जाता है कि चोर से माल बरामद हो चुका है, उसे फाँसी होगी। पड़ोसी उसके पास आकर धीरे से कहता है। हाकिम का पैजामा उसने चुराया और तुम्हारे आँगन में फेंका।

कहानी में आगे पढ़ने की जिज्ञासा बनी रहती है। कहानी में पड़ोसी की हरकतें, हाकिम की दबंगई और सिपाहियों की काली करतूतें सबकी ख़बर ली गई है। संयोजक गोविंद शर्मा और समन्वयक शैलेंद्र शरण को साधुवाद।

- अरुण सातले, खण्डवा

000

बहुत ही रोचक

हाकिम का पैजामा के लेखक नीरज नीर द्वारा रचित बहुत ही रोचक और एक गहरा व्यंग्य जो संपूर्ण तंत्र, मानव व्यवहार एवं प्रकृति का एक उदाहरण है, जो सभी को सोचने पर मजबूर करता है। हाकिम का पैजामा जैसी रचना समाज को एक दिशा देते हुए संदेश देती है कि समरथ को नहीं दोष गोसाँई। जहाँ अधिकांश जगह वारदातें तो होती है किंतु किसी निर्बल की बलि दे दी जाती है और उस घटना को एक नया रूप देकर बंद कर दिया जाता है। इसी तारतम्य में नीरज नीर ने हाकिम की पैजामे को सत्ता पर एक तंज के रूप में लिखा हुआ है। वीणा संवाद सदैव से एक बहुत ही समृद्ध साहित्य दर्पण के रूप में अस्तित्व में है, जिसमें ऐसी ही उम्दा रचनाओं को स्थान मिलता रहा है। एक ऐसा घटनाक्रम जो सामान्य तौर पर मनुष्य मात्र सदैव से समाज को दिखाना चाहता है की वह जो भी करना चाहता है वह कर सकता है। नीरज नीर एक ऐसे लेखक हैं जो पाठक की रुचि एवं नब्ज को पकड़ लेते हैं, एवं अपनी लेखनी को समर्पित भाव से प्रस्तुत करते हैं। हाकिम का पैजामा में सभी पात्र उस बात का संकेत हैं जो जो तंत्र की कमज़ोरियों को उजागर करते हैं। हाकिम साहब के पात्र चरित्र चित्रण दोगली व्यवस्था को उजागर करते हुए अत्यंत ही रोचक बन पड़ी है।

संयोजक गोविंद शर्मा, समन्वयक शैलेंद्र शरण को साधुवाद एवं लेखक नीरज नीर को शुभकामनाएँ।

- डॉ. रश्मि दुधे

000

यह कहानी एक उदाहरण है

यह कहानी एक उदाहरण है। चूँकि समय ठहरता नहीं है अत: इस कहानी को पढ़ते हुए पहले पढ़ी हुई इस विषय से मिलती-जुलती कहानियाँ याद आ जाती हैं। यानी विषय नया नहीं है। कथानक नया है, कथन नए हैं, भाषा अलग है संभवत: उद्देश्य भी अलग। किसी भी कहानी की चर्चा में किसी अन्य कहानी को जोड़कर नहीं बात नहीं करना चाहिए। प्राप्त टिप्पणियों का सार यही है कि यह एक व्यंग्य कथा है जिसमें प्रशासनिक तन्त्र पर सटीक कटाक्ष किए गए हैं। सिस्टम की ख़ामियों और बुराइयों को आड़े हाथों लिया गया है। नायक की नैतिकता को भी बख़ूबी उभारा गया है। कहानी की भाषा रोचक और पठनीय है।

लेखक नीरज नीर कहानी का आरंभ ही बिजली और पानी की किल्लत से करते हैं और आगे बढ़ते हुए हाकिम तक आ जाते हैं। हाकिम क्रूर, चरित्रहीन, निर्दयी और निडर है। वर्तमान परिदृश्य में ये अवगुण कहीं न कहीं हमें दिखाई दे जाते हैं। साहित्य का एक उद्देश्य समाज में फैली विषमताओं और विषैलेपन को सामने रखना है, उससे आगाह करना है इस उद्देश्य में कहानी खरी उतरती है। आज की जद्दोजहद के बीच यह कहानी पाठक के दिमाग़ को भारी नहीं करती अपितु कहानी के नायक की नैतिकता के पक्ष में विचारमग्न कर देती है। अंत में पड़ोसी का व्यवहार नायक और पाठक दोनों के लिए विस्मयकारक सिद्ध होता है।

छोटी किंतु सुघड़, रोचक कहानी, अनूठी भाषा, आकर्षक शिल्प के लिए कहानीकार नीरज नीर को बधाई। समृद्ध पत्रिका विभोम-स्वर की प्रमुख संपादक सुधा ओम ढींगरा तथा संपादक पंकज सुबीर को उनकी प्रखर दृष्टि और श्रेष्ठ कहानी चयन के लिए बधाई। ऐसे ही उत्तम चयन के कारण विभोम-स्वर की कहानियाँ आज सर्वाधिक पढ़ी जाती हैं। वीणा संवाद संयोजक गोविंद शर्मा को इस कहानी के चयन और बेहतरीन प्रस्तुति के लिए धन्यवाद।

इस कहानी को श्यामसुंदर तिवारी ने अनूठी कहा है। गरिमा चवरे शासक वर्ग की सनक अवसरवादी जाति वर्ग का प्रतीक बताती हैं। रघुवीर शर्मा इसे व्यंग्य कथा तथा शासन के नंगे पन को उजागर करने वाली निरूपित करते हैं। महेश जोशी राजशाही पर करारा व्यंग्य के साथ मध्य भाग में कसावट की कमी को इंगित करते हैं। कुंवर उदयसिंह अनुज इसे प्रशासनिक कार्यशैली पर प्रहार निरूपित करते हैं।

अनुराधा सुनील पारे, मंजरी निधि, सुषमा शर्मा, रश्मि स्थापक, आदिति अत्रे, शशि शर्मा, सुनीता परसाई, संध्या पारे, अरुण सातले, डॉ. रश्मि दुधे, द्वारा की गई समीक्षात्मक टिप्पणियाँ सिद्ध करती हैं की "हाकिम का पैजामा" प्रत्येक दृष्टि से एक पठनीय तथा रोचक व्यंग्य कथा है। वीणा संवाद की ओर से आप सभी का हार्दिक आभार।

-शैलेन्द्र शरण

सह-संपादक शिवना साहित्यिकी

समन्वयक, वीणा संवाद

000

साक्षात्कार

नए कवियों में स्थापना की हड़बड़ी और अपने पुरखों-पूर्वजों-अग्रजों के लिखे को अनदेखा करने की प्रवृत्ति है

वरिष्ठ कवि वसंत सकरगाए से शिवना साहित्यिकी के सह-संपादक आकाश माथुर की बातचीत

वसंत सकरगाए
ए/5 कमला नगर, कोटरा सुल्तानाबाद,
भोपाल 462003
मोबाइल- 9893074173, 9977449467

आकाश माथुर
152, राम मंदिर के पास, क़स्बा, ज़िला
सीहोर, मप्र 466001,
मोबाइल- 9200004206
ईमेल- akash.mathur77@gmail.com

वसंत सकरगाए - 2 फ़रवरी 1960 वसंत पंचमी को हरसूद, जो अब जलमग्न हो चुका है, जिला खंडवा मध्यप्रदेश में जन्म। पहला कविता संग्रह निगहबानी में फूल वर्ष 2011 में तथा दूसरा 'पखेरू जानते हैं" वर्ष 2018 में प्रकाशित। मध्यप्रदेश साहित्य सम्मेलन का वागीश्वरी सम्मान और मध्यप्रदेश साहित्य अकादेमी का दुष्यंत कुमार सम्मान, शिवना प्रकाशन का शिवना अंतर्राष्ट्रीय कविता सम्मान। बाल कविता धूप की संदूक केरल राज्य के माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल।

आकाश माथुर- वसंत जी सबसे पहले तो बात करने के लिए शुक्रिया। बात शुरू करते हैं कविता के साथ आपकी यात्रा की। क्या सोचते हैं आप इस लेखन यात्रा के बारे में, क्या आप संतुष्ट हैं या अभी लेखकीय असंतुष्टि बनी हुई है। क्या कोई ऐसा विषय है जो आपको लगता है कि उस पर आपको लिखना चाहिए ?

वसंत सकरगाए- धन्यवाद। स्पष्ट कर दूँ कि अकादमिक रूप से मैं साहित्य अथवा दीगर किसी भी विषय का विद्यार्थी नहीं रहा। लेक्रिन शब्द-संसार का नागरिक बचपन से रहा हूँ। पाठ्यक्रम की पुस्तकों की अपेक्षा बाहरी किताबें शुरू से लुभाती रहीं। जिसे तरतीब से या सिलसिलेवार पढ़ना कहते हैं, वैसा कुछ नहीं किया। इसकी वज़ह यह थी कि बँधकर रहना मेरे स्वभाव के विपरीत है। सोलह-सत्रह की उम्र में पँक्तियों ने छुटपुट आकार लेना शुरू किया था। कुछ छुटपुट कविताएँ लिखीं। इधर-उधर दैनिक-साप्ताहिकों में छपी भी। चूँकि ज़बरदस्त आर्थिक अभाव था, तो गद्य लेखन की तरफ़ झुकाव हुआ। दैनिक भास्कर में "आह-वाह" तथा नई दुनिया के "अधबीच" कॉलम में व्यंग्य छपने पर पचास से सत्तर रुपये का मानदेय मिल जाता था, तो जेबख़र्च आराम से निकल जाता था। फिर हिन्दी हेराल्ड सहित कुछ साप्ताहिकों और दैनिक भास्कर भोपाल में फीचर पेज, रसरंग और मधुरिमा परिशिष्ट में बतौर सह-संपादक काम किया। इसके बाद तक़रीबन पन्द्रह वर्षों तक शब्दों की दुनिया से बिल्कुल बाहर रहा। दूसरी पारी कला-साहित्य की दैनिक पत्रकारिता से शुरू हुई। 2008 के आसपास जब अभिन्न मित्र यशस्वी कला-समीक्षक विनय उपाध्याय के साथ "राज्य की नईदुनिया" (अब नवदुनिया) में था, तब अचानक कविता का प्रगटीकरण हुआ। और इस क़दर हुआ कि कविता के अलावा मुझे कुछ सूझता ही नहीं था। कविता लिखता। विनय को दिखाता तो वह बड़ी गंभीरता से देखते। कुछ कतर-ब्योंत करते। कुछ सुझाव देते। इस तरह विनय मेरी कविताओं के पहले पाठक, श्रोता और संपादक भी रहे। उन्हीं की सलाह पर एक कवि की हैसियत से अपनी कविताओं को लेकर राजेश जोशी सर के पास पहुँचा और उनके ब्लर्ब के आशीर्वाद के ज़रिए मेरा पहला कविता-

संग्रह "निगहबानी में फूल" लोगों तक पहुँचा। नौ साल बाद "पखेरु जानते हैं" और "समकाल की आवाज़" शृंखला के तहत चयनित कविताओं का संकलन आया। लेक़िन सच यह है कि कभी-कभी इन संग्रहों को फाड़कर फेंक देने की इच्छा होती है। इतनी कमियाँ ख़ामियाँ हैं कि कहाँ तक सुधारूँ इन कविताओं को। ऐसे में लगता है चूँकि मैं कोई मुकम्मल कविता नहीं लिख पाया इसलिए अपनी कविता के पाठकों के साथ मैंने बहुत अन्याय किया है। मुझे उनसे बार-बार माफ़ी माँगनी चाहिए। भीतर से एक ईमानदार आवाज़ यह भी निकलती है या कहें कि चुरचुराना लगता है कि जब मैं ही अपनी कविताओं से संतुष्ट नहीं हूँ तो पाठकों को कैसे संतुष्टि होगी। अभी भी ऐसे बहुतेरे विषय हैं जो कविता से वंचित हैं। हमारी कविता को उन विषयों की पहुँच तक का रास्ता बनाना होगा। विषयों की कमी नहीं है। कमी है तो कविता के वहाँ तक पहुँचने के रास्तों की।

आकाश माथुर- आपकी जनेऊ कविता बहुत चर्चा में रही है, वैसे तो कवि या लेखक या यूँ कहें किसी भी कलाकार का कोई धर्म या जाति नहीं होती लेकिन फिर भी यह जानना पाठकों के लिए दिलचस्प होगा कि एक ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने वाले आप के लिए यह कविता लिखना कितना चुनौती भरा रहा ? क्या इसे लिखने के बाद घर, परिवार या समाज की तरफ़ से कोई विरोध सामने आया?

वसंत सकरगाए- कुछ घटनाएँ कवि-लेखक-कलाकार के भीतर को बुरी तरह हिला देती हैं। 2018 के गुजरात विधानसभा चुनाव के दौरान ऐसा ही कुछ घटा। हिन्दुत्व के मुद्दे पर टीवी पर बहस छिड़ी हुई थी कि नेहरु ब्राह्मण थे तो क्या जनेऊ पहनते थे? शेरवानी पहने नेहरु तो ब्लेजर पहने राजीव गाँधी और राहुल गाँधी की तस्वीरों में शेरवानी तथा ब्लेज़र के ऊपर जनेऊ डालकर उनकी तस्वीरें पेश करने की हरक़तें की गईं। इस घटना ने दो कारणों से मुझे बहुत आहत किया। एक तो यह कि भारतीय संस्कृति-संस्कारों का दम भरने वाली हमारी राजनीति क्या अब इतने ओछेपन पर उतर आई है कि हमारे सोलह संस्कारों में हस्तक्षेप करने पर आमादा हो गई है। सोलह संस्कारों में उपनयन भी शामिल है। और क्या दैहिक स्पर्श से अलग कर शेरवानी ब्लेज़र पर जनेऊ को दिखाया जाना जनेऊ का अपमान नहीं था? (माना जाता है कि जनेऊ को देह से नहीं हटाया जाता)। ब्राह्मणवादियों ने तरह-तरह से मेरी लानत-मलानत की। किसी ने जनेऊ से होने वाली मेरी असुविधा को अव्यवहारिक बताया। जबकि मेरा अनुभव बिल्कुल व्यवहारिक है। धमकियाँ मिलीं तो सराहना भी मिली। कहा गया कि कवि में दम हो तो बनारस के गंगा घाट पर पंडों के सामने यह कविता पढ़कर दिखाए तब देखते हैं कवि जीवित वापस कैसे लौट पाता है। तो प्रणम्य कथा विदूषी ममता कालिया को यह कविता पढ़ते हुए अमेठी लोकसभा चुनाव के दौरान संजय गाँधी के साथ पेश आया वह वाक़या याद हो आया; जिसमें एक पंडित ने संजय गाँधी को जनेऊ देकर पहनने की सलाह देते हुए कहा था कि दीर्घ और लघुशंका के समय इसे कान पर लपेटना ज़रूरी होता है। तब संजय गाँधी ने बेहद मासूमियत से पूछा कि ऐसा नहीं करने पर क्या इन शंकाओं का निवारण नहीं होगा।

शिवना प्रकाशन के सम्मान-समारोह में कवि गोष्ठी में मैंने यह कविता पढ़ी तो कार्यक्रम के बाद डिनर लेते समय एक बिटिया ने लगभग मुझे लानत देते हुए कहा था कि ब्राह्मण होते हुए भी आपने जनेऊ का मज़ाक उड़ाया है। आप लोगों में हिम्मत तो है नहीं कि आप मुसलमानों की किसी बात के विरोध में लिख सकें। तब मैंने ताज साहब का यह शेर सुनाया-" ये टोपियाँ ये तिलकधारियाँ नहीं चलती / हमारे अहद में मक़्क़ारियाँ नहीं चलती।" मेरी बात उसे कितनी समझ में आई, कह नहीं सकता।

आकाश माथुर- आपकी कविता 'मेरे घर छापा पड़ा' बहुत लोकप्रिय हुई, वर्तमान की भाषा में कहें तो वायरल हुई। रवीश कुमार सहित कई हस्तियों ने उसे शेयर किया। इस कविता के बारे में कुछ बताइए।

वसंत सकरगाए- जैसा कि मैंने कहा कि हमारे आसपास कुछ ऐसा घटित होता है जो हमें गहरे तक आंदोलित करती हैं। "मेरे घर छापा पड़ा" के कुछ माह पहले लिखी कविता-"पत्र वापसी के लिए आवेदन-पत्र" भी रवीश कुमार जी ने अपने लिंक्डइन अकाउंट पर शेयर की थी; जिसके शिल्प को लेकर वरिष्ठ आलोचक डॉ. अजय तिवारी ने सकारात्मक टिप्पणी के साथ अपनी फेसबुक वाल पर साझा की थी। संभवत: रवीश जी ने इस कविता को वहीं से लिया हो। ख़ैर, 'मेरे घर छापा पड़ा' भी लगभग उसी ज़मीन की कविता है। ठीक चुनाव के आसपास सरकार अपने फ़ायदे और दबाव बनाने के लिए किस तरह ईडी,सीबीआई, पुलिस जैसी सरकारी संस्थाओं का बेज़ा इस्तेमाल करती है। छापे के बहाने पक्षपात की ओर भी इशारा करने की कोशिश की है कि किस तरह गोदी मीडिया घृणा का वातावरण निर्मित कर रहा है। 'द सूत्र' चैनल ने इस कविता पर कुछ सेकेंड का मेरा बाइट लिया, पूछा कि आपको डर नहीं लगता ऐसे माहौल में ऐसी कविता लिखने से? मेरा उत्तर बिल्कुल साफ़ था कि यदि कवि-पत्रकार राजनीतिक अराजकता और दुर्व्यवस्था के ख़िलाफ़ आवाज़ नहीं उठाएँगे तो आम आदमी के पक्ष में कौन खड़ा होगा।

आकाश माथुर- इसी कविता से बात को प्रारंभ करते हैं, आपकी यह कविता लोकप्रिय हो गई, अर्थात् लोक की ज़बान पर चढ़ गई। लोक ने उसे स्वीकार कर लिया। कबीर, तुलसी, ग़ालिब, दुष्यंत इन सबको भी लोक ने स्वीकार किया था। आप कविता की लोक स्वीकृति को कितना ज़रूरी मानते हैं ? और लोक स्वीकृति तथा आलोचक स्वीकृति में से कविता के लिए अधिक ज़रूरी किसे मानते हैं? कविता आलोचक की स्वीकृति के लिए लिखी जाएगी या लोक स्वीकृति के लिए ? कविता यदि लोगों की ज़बान पर चढ़ जाए तो उसे गंभीर कविता की श्रेणी से अलग कर दिया जाता है और कहा जाता है कि यह तो लोकप्रिय है, यह कहाँ तक ठीक है?

वसंत सकरगाए- देखिए कबीर, तुलसी, ग़ालिब ये महान् लोग हैं। कृपया इनसे मेरी तुलना मत कीजिए। इस तुलना की कल्पना भर से बहुत संकोच हो रहा है। यह अलग बात

है कि 'मेरे घर छापा पड़ा' लोगों को पसंद आई लेक़िन, यह लोक का हिस्सा बन गई है इससे मैं पूरी तरह असहमत हूँ। हमारी लोक-काव्य परम्परा बहुत समृद्ध और व्यापक है जिसके समक्ष यह कविता कहीं नहीं ठहरती। इतना भर है कि यह कविता अपने समय की स्थिति-परिस्थितियों को उजागर भर करती है। जहाँ तक आलोचना की बात है तो मेरा मानना है कि पहले रचना का जन्म हुआ होगा उसके बाद आलोचना अस्तित्व में आई होगी। लाज़िमी है, रचना करते वक़्त रचनाकार यह नहीं सोचता है कि इसका आलोचकीय पक्ष क्या होगा। इस पर ध्यान दिया जाएगा तो रचनाकार को एक तरह की घुटन होगी और लिखना असंभव हो जाएगा। एक रचनाकार अपनी ओर से बेहतर करने की कोशिश करता है और आलोचना अपनी तरफ से। यह मान लिया जाना कि अमुक कविता चूँकि बहुत लोकप्रिय है अत: इसे गंभीर कविता से अलग रखा जाए तब तो रामचरितमानस से लेकर ग़ालिब और निराला, बाबा नागार्जुन से लेकर राजेश जोशी, नरेश सक्सेना, अरुण कमल सहित अनेक कवियों की अनेक लोकप्रिय कविताओं के बाबत गंभीरतापूर्वक विचार करना होगा। जबकि असंख्य कविताएँ अपनी गांभीर्य पृष्ठभूमि के कारण ही लोकप्रिय हुई हैं। ऐसा सोचना सरासर अनुचित है।

आकाश माथुर- अब बात आपके शहर और वहाँ के साहित्य की करते हैं। ऐसा लगता है कि भोपाल साहित्य का गढ़ बन सकता है, लेकिन भोपाल की साहित्यिक संस्थाएँ अलेखकों के हाथों में है और वे लेखकों को नियंत्रित करते हैं। क्या इससे भोपाल के साहित्य को नुकसान हो रहा है?

वसंत सकरगाए- इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि भोपाल शुरू से साहित्य का एक बड़ा मर्कज़ रहा है। हिन्दी-उर्दू साहित्य की सुदीर्घ परम्परा का केंद्र रहा है। ताज़ भोपाली, नईम क़ौसर, ज़िया फ़ारूक़ी, मंज़ूर एहतेशाम, मेहरूनिसां परवेज़, राजेश जोशी जैसे और अनेक नाम लिए जा सकते हैं जिनकी ख्याति ने भोपाल को ख्याति दिलाई है। जहाँ तक भोपाल की साहित्यिक संस्थाओं की बात है तो इतना ही कहूँगा कि सब अपना-अपना काम कर रहे हैं। हाँ, यह ज़रूर विचारणीय है कि साहित्यिक संस्थाओं को लेखन की नई पीढ़ी तैयार करने में जिस तरह की भूमिका निभाना चाहिए इसमें काफ़ी कोताही बरती जा रही है। संस्थाओं ने स्वयं के दीर्घायु होने की परवाह तो की मगर रचनाकार के साहित्यिक जीवन को लेकर हद दर्जा लापरवाह रहीं। और यह भी सच है कि कुछ रचनाकार संस्थाओं से जुड़कर (बँधकर) रह गए। उन्हें साहित्य के व्यापक परिवेश देखना-समझना और आत्मसात् करना चाहिए। मुझे लगता है कोई साहित्यिक संस्था किसी रचनाकार का नुक़सान नहीं करती, इसके लिए स्वयं रचनाकार ज़िम्मेदार होता है।

आकाश माथुर- अब बात वर्तमान में लिखी जा रही कविताओं के करें, तो हम देखते हैं कि लोगों को पुरानी छंदमुक्त कविताएँ याद हैं, लेकिन अब जो छंद मुक्त कविता लिखी जा रहीं है वह याद नहीं रहती। इसका क्या कारण है?

वसंत सकरगाए- यह सच है कि निराला के समय से छंद मुक्त कविता की जो शुरूआत हुई इसका अर्थ यह तो नहीं कि हम छंदमुक्त कविता में छंद की आत्मा और अंतर्लय को छोड़ दें। इसे छोड़ दें तो फिर कविता हमें क्यों याद रहेगी। वरिष्ठ आलोचक डॉ. विजयबहादुर सिंह ने एक कविता पुस्तक के लोकार्पण में अध्यक्ष की आसंदी से कहा था- 'कविता में विचार ही सब कुछ होता तो महात्मा गाँधी बहुत बड़े कवि हो गए होते।'

राजेश जोशी, अरुण कमल, नरेश सक्सेना, मंगलेश डबराल, विष्णु नागर की ऐसी कई कविताएँ हैं जो हमारी स्मृतियों का आवश्यक हिस्सा है। सवाल कविता के शिल्प का है उसके भीतर लय की उपस्थिति का है।

आकाश माथुर- यह जो लय है इसे गेयता से किस प्रकार अलग किया जाएगा, तरन्नुम को क्या कविता की अंर्तलय भी कहा जा सकता है?

वसंत सकरगाए- लय के बिना गेयता भला कैसे संभव है! बेशक़ तरन्नुम में कविता की लय अंतर्निहित है।

आकाश माथुर- आज कल छंद मुक्त कविताएँ ज़्यादा लिखी जा रही हैं। इनसे प्रतिरोध कैसे पैदा किया जा सकता है। छंद बद्ध कविताओं को गाया जा सकता है, जिससे प्रतिरोध पैदा होता है। जबकि छंद मुक्त को गाया नहीं जा सकता।

वसंत सकरगाए- तब तो यह भी सोचा जाना चाहिए कि आजकल की छंदबद्ध रचनाएँ अपना कितना प्रभाव छोड़ रही हैं! प्रतिरोध का स्वर छंद से ही मुखर होता है यह बिल्कुल आवश्यक नहीं है। नाटकों, नुक्कड़ नाटकों, धरना-प्रदर्शनों में ऐसी कितनी ही गद्यात्मक कविताएँ सामने आती है जिन्हें लय में बाँधकर प्रस्तुत किया जाता है।

आकाश माथुर- काव्य का आधार लय है। छंद मुक्त कविताएँ जिनमें लय है वो पढ़ी जा रही हैं, लेकिन, जिनमें लय नहीं है उन्हें पढ़ा नहीं जा सकता। उन्हें भी लिखा जा रहा है, जबकि वे याद भी नहीं रहतीं। इस बारे में आप क्या कहेंगे?

वसंत सकरगाए- आप जिसे कहते या मानते हैं तो उसमें लय होगी ही। लय के बग़ैर कोई कविता कभी स्वीकार हुई हो इसमें पूरा-पूरा संदेह है। जहाँ तक याद में ठहरने की बात है तो हमें अनेक फ़िल्मी गीत या फ़िल्मों के संवाद याद हैं लेक़िन, उन्हें कविता नहीं कहा जा सकता। कविता में कुछ ऐसा ज़रूर होता है जो हमें कहीं-न-कहीं आंदोलित करता है। फिर काफी कुछ कवि के आत्मबोध-आत्मचिंतन पर निर्भर करता है।

आकाश माथुर- राजेंद्र यादव ने एक बार कहा था कि पत्रिकाओं में कविता कोई नहीं पढ़ता। कहानी ही पढ़ी जाती है, लेकिन मजबूरी में हमें उन्हें छापना पड़ता है, कई पत्रिकाएँ अब भी कविता नहीं छापती। इस बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

वसंत सकरगाए- एक लम्बी कथायात्रा के बीच यह राजेन्द्र जी का व्यक्तिगत अनुभव हो सकता है। कविता को लेकर ऐसे फ़तवे जारी होते रहे हैं। संभवत: राजेन्द्र जी इस निष्कर्ष पर इसलिए भी पहुँचें हों कि शुरू में उन्होंने कविता भी लिखीं लेक़िन जो स्थान उन्हें कहानीकार के रुप में मिला, बतौर कवि

नहीं मिला। राजेन्द्र जी की तरह और भी प्रतिष्ठित कहानीकार हैं। आलोचक हैं जिनके लेखन की शुरूआत कविता, गीत-ग़ज़ल से हुई। उधर यह बात भी सुनने में आती है कि पत्रिका में पाठक सबसे पहले कविता पढ़ता है। इसके बाद कहानी अथवा अन्य विधा से मुख़ातिब होता है। कुछेक पत्रिकाएँ बेशक़ कविता को स्थान नहीं देती हों किन्तु अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ कविता प्रकाशित करती हैं। इसका मतलब तो यही हुआ न कि कविता पढ़ी नहीं जा रही हैं। आज भी पाठक कवि को फ़ोन कर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। कुछ पत्रिकाएँ जो सिर्फ़ कहानी-उपन्यास विधा पर केंद्रित हैं और वे कविताओं का स्थान नहीं दे रही हैं तो यह उन पत्रिकाओं के संपादकों की रुचि का मामला है। इससे कदाचित् यह नहीं माना जा सकता कि कविता के पाठक नहीं हैं।

आकाश माथुर- आप छंद मुक्त कविताओं का क्या भविष्य देखते हैं।

वसंत सकरगाए- कविता की कोई भी विधा हो, कवि को नई बात और नए तेवर से कहने के लिए काफ़ी संघर्ष से गुज़रना पड़ता है। छंदमुक्त कविता का बड़ा फलक और विस्तृत ज़मीन है। नित नए प्रयोग और तेवर हमारे समक्ष हैं। तय है कि फ्री-वर्स कविता का भविष्य उज्जवल और नई आशाओं से भरा हुआ है।

आकाश माथुर- कई पत्रिकाएँ तो कविता छापना ही बंद कर चुकी हैं और अब तो कई प्रकाशक भी कविताओं की किताब नहीं छापते। उनका कहना है कि कविता कोई नहीं पढ़ता। जबकि ग़ज़ल संग्रह छापे जा रहे हैं।

वसंत सकरगाए- जैसा कि मैंने ऊपर कहा है कि कुछेक पत्रिकाओं में कविता नहीं छपती हैं जबकि अधिकांश पत्रिकाएँ कविताओं को स्थान देती हैं। कविता संग्रह धड़ल्ले से छप रहे हैं। इसी वर्ष यानी 2022 की बात करूँ तो मेरी जानकारी में अलग-अलग प्रकाशनों से तक़रीबन सौ कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं। यह दीगर बात है कि इनमें से कितने संग्रह चर्चा में आए या लाए गए या नहीं आ पाए। कमोबेश यही बात ग़ज़ल संग्रहों पर भी लागू होती है।

आकाश माथुर- राजेश जोशी की कविताओं में आप क्या अलग पाते हैं? जिससे वे अपने समकालीनों से बहुत आगे दिखाई देते हैं।

वसंत सकरगाए- राजेश सर की कविता की ज़मीन और आकाश इतना व्यापक है कि उस पर कोई आलोचनात्मक टिप्पणी कर सकूँ इतना सामर्थ्य मुझमें नहीं है। फिर भी अब तक जो महसूसा वह यह कि आख्यानात्मकता और आमफ़हम बोलचाल की भाषा में कविता का शिल्प गढ़ना। हर बार एक नई ज़मीन तैयार करने की अपने तईं ख़ुद को एक चुनौती देते रहना उनके कवि की ख़ूबी है। यही वज़ह है कि राजेश जोशी अपनी कविताओं के कुशल संपादक भी हैं। उनके पास कविता-संपादन की विलक्षण प्रतिभा है। युवा कवि-आलोचक अच्युतानंद मिश्रा ने एक बार बातचीत के दौरान बिल्कुल सही कहा था कि राजेश जोशी बड़े मीटर (बड़ी पँक्ति) की कविता के प्रस्थान-बिन्दु हैं। उनके देखा-देखी उनके समकक्ष, अग्रज और बाद की पीढ़ी के अनेक कवियों ने इस शिल्प को साधने की कोशिश की लेक़िन सफल नहीं हो पाए।

राजेश सर की एक नसीहत मैंने गाँठ बाँधकर रखी है, कि-"कविता में सतर्कता और चालाकी नहीं चलती।" कुल मिलाकर यह कि राजेश जोशी कविता का विश्वविद्यालय हैं। जिसने नई पीढ़ी तैयार की है।

आकाश माथुर- क्या यह कह सकते हैं कि राजेश जोशी के पास जीवन अनुभव अधिक हैं, वह अनुभव जो जीवन के संघर्षों से प्राप्त होते हैं। या फिर जीवन को देखने की एक अलग तरह की दृष्टि के कारण उनकी कविताएँ भीड़ से अलग दिखाई देती हैं?

वसंत सकरगाए- उपरोक्त तीनों बातें तो राजेश सर पर लागू होती ही हैं इसके अलावा राजेश सर वैश्विक क्लासिकी के गहरे अध्येता भी है। विश्व की किसी भी भाषा का शायद ही कोई ऐसा क्लासिकल साहित्य हो जो उनसे अछूता रहा हो। छूता ही नहीं बल्कि उसका आकाश-पाताल एक किया है। किसी विषय पर बात करते हुए मानस से ग़ालिब के दीवान तक और शेक्सपियर के नाटक-सॉनेट की आवाजाही करते हुए वे कब कालीदास, टैगोर,टॉल्सटॉय से कोई ऐसा वैचारिक संबंध-सूत्र आपको थमा दें कि आप हतप्रभ हो जाएँ। बर्बर सिर्फ़ बर्बर थे, चाँद और बिल्लियाँ या फिर इन्दौर की कचौरी कविता को लीजिए, ऐसी कविताएँ क्लासिकी के गहरे अध्ययन के बग़ैर संभव नहीं हो सकतीं तो चाँद की वर्तनी जैसी कविताएँ बेशक़ उनके अलग दृष्टिबोध की परिचायक हैं। अगर यह कहूँ कि कोलम्बस की तरह कवि को भी इसी दुनिया में हरहमेश एक नईदुनिया की खोज करनी पड़ती है तो यह बात प्रथमत: राजेश सर पर लागू होती है। मेरा नया फ़ोन नम्बर, खिलौना, इसलिए कि तुम पहाड़ हो, जैसी कविताएँ उसी नईदुनिया की खोज है।

आकाश माथुर- बहुत सारे कवि कविता से कहानियों और उपन्यास की तरफ जा रहे हैं इसका क्या कारण है? उनमें असुरक्षा का बोध है या पाठक नहीं है इसलिए वे ऐसा कर रहे हैं।

वसंत सकरगाए- कविता छोड़कर कहानी-उपन्यास की तरफ जाने का यह अर्थ तो कतई नहीं निकाला जा सकता कि कवियों के भीतर असुरक्षा जैसी कोई बात बैठ गई है। आज भी कविता का एक बड़ा पाठकवर्ग है। राजेश जोशी को ही लीजिए, उन्होंने साहित्य की हर विधा में लिखा है और उन्हें पाठकों का भरपूर प्रतिसाद मिला है लेकिन इससे उनके कवि पर कोई प्रभाव पड़ा हो ऐसा कहीं देखने में नहीं आता। जहाँ तक असुरक्षा की बात है तो यह लेखक के भीतर का मामला है। बाहर असुरक्षा जैसी कोई चीज़ नहीं है।

आकाश माथुर- एक और प्रश्न कवि और उपन्यासकार या कहानीकार को लेकर और है कि आजकल कवि अपने नाम के आगे सिर्फ कवि लिखे जाने से संतुष्ट नहीं हैं। वे चाहते हैं कि उनके नाम के आगे कहानीकार, कथाकार या उपन्यासकार भी लिखा जाए।

वसंत सकरगाए- अब उनकी संतुष्टि-असंतुष्टि को लेकर मैं क्या कह सकता हूँ।

सवाल आपकी मूल पहचान से है, उस विधा से है जिसके कारण आप जाने जाते हैं। राजेश जोशी, कुमार अम्बुज और भी अनेक प्रतिष्ठ कवियों ने कहानियाँ भी लिखी है लेकिन लोग इन्हें कवि कहना ज़्यादा पसंद करते हैं। फिर इससे कोई विशेष नहीं हो जाता है कि नाम के पहले उन तमाम विधाओं का उल्लेख हो जिन-जिन विधाओं में रचनाकार ने काम किया है। कवि-लेखक को उसके अच्छे काम से यूँ भी पहचान मिल जाती है।

आकाश माथुर- युवा कवियों में आपको क्या कमी दिखाई देती है। क्या कारण है कि उनकी कविताएँ लोगों को याद नहीं रहतीं और तो और उन कवियों के नाम भी लोगों को याद नहीं हैं।

वसंत सकरगाए- स्थापना की हड़बड़ी और अपने पुरखों-पूर्वजों-अग्रजों के लिखे को अनदेखा करना। भारतीय काव्य परम्परा को धैर्यपूर्वक नहीं समझना। यह तय करना बहुत ज़रूरी है कि सफलता के लिए लिखा जा रहा है सार्थकता के लिए। फिर कविता किसी एक विचार का उद्घाटन भर नहीं बल्कि विचारों का समुच्चय है। एक भरीपूरी यात्रा है। ऐसा नहीं है कि पूरा परिदृश्य निराशा से भरा हुआ है। कुछ युवा कवि अच्छी कविताएँ लिख रहे हैं। समय के साथ हो रहे बदलावों पर पैनी नज़र रखे हुए हैं।

आकाश माथुर- दक्षिण पंथ अलग से एक मंच तैयार कर रहा है और आप जैसे लेखक जो प्रतिरोध के स्वर बुलंद करते आ रहे हैं, उन्हें हाशिये पर धकेला जा रहा है। इस बारे में आपकी क्या राय है?

वसंत सकरगाए- जो पंथ या विचारधारा जितनी लोकतांत्रिक और उदार होगी। खाँचों में विभक्त नहीं होगी, उतनी ही जीवनपरक शाश्वत और दीर्घायु होगी। जहाँ तक किसी पंथ के मंच की बात है तो इससे कोई ख़ास फ़र्क नहीं पड़ता। बल्कि जिन्होंने प्रतिरोध की आवाज़ उठायी वे हिन्दी समाज और आम आदमी के बीच हमेशा रहे हैं। जनकवि बाबा नागार्जुन ने जब इन्दु जी..इन्दु जी कविता का सरेआम पाठ किया तो उन्हें अरेस्ट कर लिया गया था। इस घटना का देशभर में इतना कड़ा विरोध हुआ कि बाबा को तत्काल रिहा करना पड़ा। कहने का तात्पर्य है कि एक अच्छी कविता की ताक़त कभी कम नहीं होती। राजेश जोशी की कविता "मारे जाएँगे" लगभग चालीस साल पहले लिखी गई थी लेक़िन आज वह लोगों की ज़ुबान पर है।

आकाश माथुर- सोशल मीडिया पर साहित्य विशेषकर कविता के नाम पर बहुतायत जो खरपतवार पैदा हो रही है। उससे कविता की मूल फ़सल ख़त्म हो रही हैं। इससे आप कविताओं को आने वाले समय में कहाँ देखते हैं।

वसंत सकरगाए- देखिए! हर दौर में हर तरह का लेखन हुआ है। मेरा तात्पर्य स्तर से है। जो स्तरीय है हमेशा साथ रहेगा। फिर मूल्यांकन समग्र के बीच से ही तो होगा न! मूल्यांकन की अपनी कसौटी होती है। और यह किसी एक व्यक्ति द्वारा तय नहीं हो सकती। सब ख़राब लिखा जा रहा है इससे मैं सहमत नहीं हूँ। कविता का आने वाला समय निश्चित ही बेहतर है। समय के बदलाव के साथ हर कवि का अपना अनुभव संसार है। जो कविता में दर्ज हो रहा है। हाँ, अभिव्यक्ति की अपनी सामर्थ्य है।

आकाश माथुर- एंटर कविताओं का जन्म कंप्यूटर युग के बाद हुआ है, एक पैराग्राफ लिखो और उसमें एंटर मार-मार के उसे कविता बना दो, आप इस पर क्या कहना चाहेंगे।

वसंत सकरगाए- कविता का कोई अनुशासन नहीं होता। कविता का कोई पैमाना तय नहीं किया जा सकता। एक नदी की भाँति कविता का सोता स्वयं प्रकट होता है। अपना प्रवाह, वेग और मार्ग का निर्धारण कविता स्वयं करती है। इसमें कवि का कोई वश नहीं चलता। इसलिए मेरा मानना है कि कविता पहले है और कवि बाद में होता है। कविता कवि को जन्म देती है। कवि कविता को जन्म नहीं देता।

जहाँ तक एंटर अथवा कट-पेस्ट की बात है तो इतना ही कहना चाहूँगा कि किसी एक शब्द की कौंध से एक बड़ी कविता की यात्रा हो सकती है लेकिन हज़ार शब्द मिलकर भी एक कविता संभव कर सकें, ज़रूरी नहीं है।

आकाश माथुर- जो कविताएँ प्रतिरोध पैदा करती थीं वे अवार्ड के बोझ तले दब रही हैं। तो इससे कविताओं का आगे का भविष्य किस तरह का दिखाई देता है।

वसंत सकरगाए- अवॉर्ड या सम्मान-पुरस्कार से कोई अंतर नहीं पड़ता। प्रतिरोध एक प्रतिक्रिया है। और ज़बरदस्त प्रतिक्रिया है, जो हमेशा मुखर होती है। यह मान लेना कि अवॉर्ड इत्यादि देकर कवि को चुप करा दिया गया और इससे प्रतिरोध का स्वर भोथरा, कुंद या ख़त्म हो जाता है इससे मैं कत्तई इत्तेफ़ाक़ नहीं रखता हूँ। फिर यह कवि के लिए आत्मविश्लेषण का विषय है कि वह लोकतांत्रिक मूल्यों के पक्ष में, क़तार के अंतिम व्यक्ति के साथ खड़ा है याकि ठकुरसुहाती, सत्ता की प्रशस्ति कर रहा है। निस्संदेह कुछ लोग ऐसा करते हैं लेक़िन, इससे प्रतिरोध की कविता समाप्त हो जाएगी यह सोचना सरासर ग़लत होगा।

आकाश माथुर- भविष्य की योजनाओं के बारे में कुछ बताइए। कोई विशेष कार्ययोजना? और यह भी कि क्या भविष्य में आपके पाठकों को आपके गद्य से भी रू-ब-रू होने का कोई अवसर मिल सकता है?

वसंत सकरगाए- तीसरा कविता-संग्रह (चयनित कविताओं को छोड़कर) एक प्रकाशक को भेजा है। अभी तक स्वीकृति/अस्वीकृति नहीं मिली है। देखिए क्या होता है! इसके अलावा अपनी जन्मभूमि हरसूद की यादों और उससे जुड़ी क़िस्सागोई की पुस्तक पर दो साल से काम कर रहा हूँ। चूँकि इस तरह के गद्य में हाथ तंग है और लंबी सीटिंग मेरे वश से बाहर की चीज़ है इसलिए लेटलतीफी हो रही है। फिर अधिकतर यह भी होता है कि उस पर काम करते-करते कोई कविता कौंध जाती है, तो वह काम एक तरफ रह जाता है और एक नई कविता-यात्रा शुरू हो जाती है। यह भी होता है कि कोई उपन्यास-कहानी पढ़ने में मन लग जाता है। अब क्या कहूँ! बेहद मूडी, नॉन-सीरियस, आलसी और ठहरा हुआ पाठक क़िस्म का जो हूँ।

000

किस्सा, किस्सों और उसके पीछे- पीछे मैं

गीताश्री

मैं घोर सामंती परिवार में पैदा हुई थी, माता-पिता की आख़िरी बेटी। बच्चों की भीड़ में एक बेटी और रिश्तेदार परेशान कि इतनी बेटियाँ क्यों हुई जा रही हैं। मेरे बाबूजी ने सबको अचंभे में डाल दिया जब मेरे पैदा होने की ख़ुशी धूमधाम से मनाई गई। पर मुश्किलें तो अभी और थीं, राह में। संकीर्ण मानसिकता वाले परिवार में एक आज़ाद ख़याल लड़की होना, कैसा होता है, जैसे नाज़ियों के कैंप में मिलेना का होना। विद्रोह के बीज मन में पनपते रहे। बचपन में पत्रिकाएँ और सिनेमा, दो ही मनोरंजन के साधन थे। भली लड़कियों की तरह स्कूल और घर के बीच ख़ुद को क़ैद पाती थी। क़दम-क़दम पर लड़की होने का अहसास। लड़की ज़ात ऐसे नहीं करती, तेज़ आवाज़ में नहीं बोलती..तेरा ससुराल में गुज़ारा नहीं होगा, सास मार के भगा देगी..आदि आदि ताने उलाहने। हम तो पैदायशी शैतान थे। तेज़ रौशनी की तरह भभकते रहते थे और बार-बार क़ैद किए जाते रहे। मैं लालटेन की बत्ती थी। शीशे के भीतर क़ैद जलती हुई। नानी-दादी विहीन बचपन में कमी थी तो उन क़िस्सों की, जो हमें सुलाते या सपनों में रंगीन परियाँ आमंत्रित करते। घरेलू कामों में उलझी मेरी माई को इतनी फ़ुरसत कहाँ कि वह अपने आख़िरी दौर की संतान की भावनात्मक ज़रूरतों पर ध्यान दें। बहुत छोटी उम्र में मैं बुआ और मौसी बन गई थी। दीदी और भइया के छोटे बच्चों के साथ क़िस्सागोई करना भाने लगा। उन्हें तुकबंदियाँ सुनाती, राजा, रानी और परियों की कहानियाँ सुनाती, जो मैं कभी अपने लिए सुनना चाहती थी। उन्हें रोज़ कहानी बदल-बदल कर सुनाना पड़ता था, नहीं तो वे चालाक बच्चे सारे किरदार और सिचुएशन पकड़ लेते थे। दिमाग़ी कसरत के दौर में कल्पना के घोड़े खोल-खोल मैं बावली होने लगी थी। भीतर सूनापन था पर कहानियाँ बुलबुले की तरह फूटा करतीं। न जाने कहाँ-कहाँ से चली आती थीं, झेलम (नदी) बेहाल की तरह तोड़-फोड़ करती हुई। एक नोटबुक हाथ लगा, रजिस्टर टाइप। सारी कहानियाँ लिख डालीं। वह ख़ज़ाना लुट चुका। इतना तो तय है कि वे सारे राजा-रानी ओरिजनल थे। मेरी आकांक्षाओं के चेहरे सरीखे। परी कथाएँ थीं। जिन्हें आगे चल कर घटित होना था। एक पंडित जी ने मेरा हाथ देखा, उनकी पेशानी पर बल पड़ गए। मुँह बिचकाते हुए, कुछ कुछ हिकारत भरे भाव से, माँ की तरफ मुँह कर कहा...

"इस लड़की का हाथ विदेसी है..ग़लती से ईहाँ पैदा हो गई है। किसी के कंट्रोल में नहीं रहेगी।

नामे नाम न तो अकरवले नाम...(नाम करेगी या बदनाम, पर कुछ अलग करेगी ज़रूर)।"

मैं तो सुन कर मस्त...कि मुझे कुछ अलग हट कर करना है...पर क्या..हीरोइन बनूँ, नौटंकी में जाऊँ। सोनपुर मेला का बिंब दिमाग़ में घूमता रहता था। बनियापुर मेले में कई नाटक देखे। किताब से अपनी छातियों को दबाए लड़कियाँ, साइकिल पर पीछा करते हीरो...और बीच में अमीरी-ग़रीबी की दीवार...। मुझे कुछ करना था। मैं भीतर के बीजों को टटोल रही थी।

पर समझ नहीं पा रही थी कि क्या...बेचैनी को न नाम दे पा रही थी न पहचान पा रही थी। मैं बड़ी हो रही थी।

मुझे लगने लगा था कि मैं उन औरतो में कभी शामिल नहीं हो पाऊँगी, जो इतिहास रचती हैं। पढ़ना और शादी करके किसी गाँव, क़स्बे में गोबर पाथती, चूल्हा लीपती, तसली में लेवा लगाती ख़ुद को देखती। मुझे अपना भविष्य दिखने लगा था। भीतर में कहीं मौन विकलता पैठ रही थी।

मैं अपने भीड़ भरे घर में तन्हा थी। कुछ क़िस्से थे, बड़की चाची के सुनाए हुए या चौकीदारों

गीताश्री
फ़्लैट नं. सी-1339, गौर ग्रीन एवेन्यू,
अभय खण्ड, इंदिरापुरम, ग़ाज़ियाबाद,
उत्तर प्रदेश- 201014
मोबाइल- 9818246059
ईमेल- geetashri31@gmail.com

के सुनाए हुए, जो वे जाड़े की सर्द शामों को घूरे के आसपास बैठते और सुना जाते। मैं क़िस्सों की खोज में थी, जो मेरे उदास और क़ैदी मन को बहला सकते थे। उन्हीं दिनों गुलशन नंदा, इब्ने सफी, कर्नल रंजीत के उपन्यासों ने जीवन में प्रवेश किया और फिर तो ज़िंदगी में रंग और नूर आ गया। मोटे-मोटे गेस पेपर के बीच में जासूसी और सामाजिक उपन्यास पनाह लेने लगे। उन पन्नों के शब्दों से निकल-निकल कर मेरी रूह में धँसने लगे। घर में बाबूजी ऐसे उपन्यास लाते, कभी बड़े भइया और बड़ी दीदी चाव से पढ़तीं। मैं चुरा-चुरा कर। किसी न किसी के सिरहाने मुड़ी-तुड़ी यह किताबें मिल ही जातीं। फिर तो मेरी कल्पनाओं और सपनों को पंख मिल जाते। पराग, चंदा मामा, फैंटम, राजन-इकबाल सीरीज़ हम ख़रीद कर लाते और शाम को पढ़ा करते। पता नहीं कितने केस मैंने राजन इकबाल से साथ हल किए होंगे..फैंटम के साथ कितने जंगलों में घूमी होऊँगी..यही दुनिया थी मेरे लिए। मैं बंद दुनिया की आज़ाद लड़की थी। पृथ्वी का ग्लोब मेरी आँखों में था..भूरा-कत्थई। मैं उसका चक्कर काट रही थी। मैं अपने भीतर भटक रही थी अपनी तलाश में। और एक दिन...

समझ में आ गया कि एक दिन भली लड़की को अपने लिए एक दुनिया बनानी होगी। वह मरने के बाद ज़िंदा रहने के लिए पैदा हुई है। वह गुमनाम नहीं मरेगी। वह उन औरतों में शामिल होगी जो इतिहास में दाखिल होती हैं। किताबें थीं या कुछ सपने थे। पहले सख़्त भाइयों की क़ैद और बाद में होस्टल की दीवारें..

मन के भीतर कुछ खौल रहा था। एक ज़मीन पक रही थी। कुछ फूल खिल रहे थे। एक नया आसमान बन रहा था। कुछ इंद्रधुनष टूट गए थे और निहत्थी मैं रचनात्मकता के द्वार पर खड़ी थी। मुझे उसके घर में घुसना था। कुछ ख़ौफ़, कुछ संशय, कुछ उछाह के साथ। कुछ था जिसे कहना था। एक दुनिया थी, जिसे बसाना था। कुछ स्मृतियाँ थीं, कुछ अनुभव थे, जिन्हें सँजोना था। एक दिन मैंने पाया कि मेरी दृष्टि कुछ बदल सी गई है। मैं चीज़ों को अलग तरह से नोट कर पा रही थी। मेरे भीतरी ग्रह में बहुत कुछ बदल गया था। एक बड़े वंचित वर्ग समूह को अपने भीतर कलपता पा रही थी। वे तमाम आत्माएँ कोरस गा रही थीं, जिनके हक़ उनसे छीन लिए गए थे। मैं उनके बीच अकेली निहत्थी खड़ी थी। मैं फिर तन्हा नहीं रह गई। नवगीतकार राजेंद्र प्रसाद सिंह की काव्य पंक्तियाँ गूँजने लगीं..."साथ मेरे चल रही है, इत्र में डूबी हवा, तू अकेला, मैं नहीं हूँ, मैं नहीं हूँ..।" और मैं अकेली नहीं रह गई। भीतरी दुनिया में उमड़ती हुई भीड़ और उसकी आवाज़ें थीं।

मेरे भीतर बेचैनी इतनी बढ़ी कि ईसा मसीह का कथन बार- बार गूँजने लगा..."तुम्हारे भीतर जो भी है, तुम उसे बाहर लाते हो, तो वह तुम्हें बचा लेगा। अगर तुम उसे बाहर नहीं लाते तो वह अंदर ही अंदर तुम्हें ख़त्म कर देगा।"

रौशनी कौंधी थी मन के आकाश में। मुझे परकाया प्रवेश की क्षमता का अनुभव कुछ कुछ होने लगा था। कोई जगह मिली जहाँ मैं जीवन के बाकी दिन ठहर कर बिता सकूँ..जानती हूँ, बहुत-बहुत मुश्किलों और बाधाओं से भरी हुई राहें हैं ये। यहाँ पहले से अजगरी माया मौजूद है और टेलरमेड संस्कृति का बोलबाला है। ऐसे में मेरा प्रवेश। मैं चाहती थी लोग इस दुनिया में झाँकें। इतालो कल्वीनो की तरह मैं भी रचना के जरिए उन गुप्त एवं अज्ञात स्थानों की तलाश करती हूँ जो ज्ञात स्थिति को बदल दे।

एडविन स्कोल्सबर्ग ने कहा है न कि लेखन का मक़सद वह संदर्भ तैयार करना है जिसमें दूसरे लोग झाँक सके। पत्रकारिता करते-करते समझ में आया था कि हड़बड़ी का साहित्य इतिहास के लिए सिर्फ संदर्भ जुटा सकता है, मुक्म्मल जगह नहीं बना सकता।

मेरे लिए लिखना, ख़ुद को मुक्त करना है। अपने ज़िंदा होने का जस्टिफिकेशन है। मेरे ज़िंदा होने की गवाही है। मेरे लिए यही परम आनंद की राह है। इसमें किसी भी अनुष्ठान से ज़्यादा शक्ति महसूस करती हूँ। मैंने लेखन को नहीं चुना, लेखन ने मुझे चुना है। मेरे पास उसके लिए बहुत सी जगहें बची हैं।

अब मैं उचारती हूँ ऋग्वेद के उस श्लोक को---मैं पीठ पर / उजाला लाद कर निकला हूँ / बंधु, मुझे अकेला मत समझना / मेरे साथ विचारों के दिव्य अश्व / आगे-आगे दौड़ रहे हैं / कोई आवेग उनके पाँवों में है....(आ देवान्त्सोमपीयते ऋग्वेद 1.14.6)

मेरी कहानियों के किरदार वैसे तो वास्तविक ज़िंदगी से आते हैं...वे लोग जिन्हें रोज़ अपने आसपास देखते हैं। जिनके साथ साथ चलते हैं, साँसें लेते हैं, हँसते रोते हैं..कभी-कभी दूर से देखते हैं, तटस्थता से। कुछ वे लोग जो आपकी ज़िंदगी को झकझोर देते हैं। सन्न कर देते हैं। किसी-किसी की ज़िंदगी इतनी औपन्यासिक होती है कि भ्रम होने लगता है, किताब जी उठी है या ज़िंदगी किताब बन गई थी। मैं यथार्थ को ज्यों का त्यों उठाती ज़रूर हूँ लेकिन उन्हें वैसा बिल्कुल नहीं परोसती। आप वैसे परोस भी नहीं सकते। जॉन लेनन के शब्दों में कहें तो यथार्थ अद्भुत होता है। वह हमारी कल्पना के लिए बहुत गुंजाइश छोड़ जाता है। उस यथार्थ की कल्पनाशीलता मेरे भीतरी दुनिया की संपन्नता से निकलती है। एलिजाबेथ बेरेट ब्राउनिंग प्रेम के बारे में जो कहती हैं वहीं मैं अपनी कल्पना के बारे में कहती हूँ कि..जितनी ऊँचाई, गहराई और विस्तार तक मेरी आत्मा जा सकती है, वहाँ तक मैं कल्पना करती हूँ, मेरी कल्पनाशीलता जाती है...प्रेम की उस ऊँचाई तक। बहुत महान् बात नहीं कह रही हूँ।

यह मेरा सच है, मेरी रचनाशीलता का सच है, मेरे पात्रों का सच है..जिन्हें मैं वैसे गढ़ती हूँ जैसी गढ़ने की मैं ईश्वर से अपेक्षा कई बार रखती और कई बार नहीं रखती हूँ।

मेरे सामने कुछ भी घटित होता है, मुझे उसमें एक विचार दिखाई देते हैं। विचार का सूत्र पकड़ कर मैं पात्रों के साथ-साथ आगे बढ़ती हूँ। मैं वीडियो गेम की उस योद्धा की तरह होती हूँ जिसे रास्ते में लड़ते-भिड़ते अपनी कार को स्पीड में चलाना होता है। चाहे रास्ते में जितनी बाधाएँ आएँ। यूँ कहूँ तो मार्खेज की तरह कोई एक छोटा-सा दृश्य भी मेरी रचना का प्रस्थान बिंदु बन सकता है। मैं मार्खेज की ज़बरदस्त फैन हूँ। उनकी

रचनाओं के साथ-साथ उनकी मान्यताओं को लेकर, जो शायद मुझे बेहद सूट करती हैं।

एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था कि कल्पना यथार्थ पैदा करने का एक साधन मात्र होती है। और अंतत: सृजन का उत्स हमेशा यथार्थ से ही होता है। मार्खेज अपने बारे में दावा करते थे कि मेरे उपन्यासों में एक भी पंक्ति आपको ऐसी नहीं मिलगी जो वास्तविकता पर आधारित न हो। मैं तो अभी रचने के दौर में हूँ, अभी तक के आधार पर यह दावा मेरा भी है। शायद अंतिम दौर में भी यही होगा।

मेरे कुछ पात्र मेरी स्मृतियों की सुरंग में छिपे हैं। वहाँ की जब-जब मैंने अदृश्य यात्राएँ की, वे वहाँ से बाहर आए। कल्पना ने उनमें रंग भरे और पंख दिए। मेरी स्मृतियाँ मेरे लिए ऊर्वर प्रदेश का काम करती हैं। वह मेरी भोगी और भागी हुई दुनिया का हिस्सा है।

सिर्फ कल्पनालोक का सहारा लेकर आप कोई महान् किरदार नहीं रच सकते। आपको बार-बार यथार्थ की यात्रा करनी होगी। उसके पास जाना होगा। जैसे मैं जाती हूँ.. मैं यात्राओं में होती हूँ, मैं बाज़ार में होती हूँ, मैं पार्टी में होती हूँ, मैं जहाँ भी हूँ.. कहीं कुछ घट रहा होता है, कहीं कोई कह रहा होता है.. ये सारी चीज़ें दिमाग़ में फ्रीज़ हो जाती हैं। पात्र आते हैं, आकार लेते हैं, और दर्ज हो जाते हैं। और अगर एक बार रच दूँ तो हेमिंग्वे की तरह मेरी रुचि उनमें ख़त्म हो जाती है।

मैं रच देने के बाद किसी पात्र से कोई लगाव नहीं रखती। उसे छोड़ देती हूँ। उसे मुक्त कर देती हूँ। आप मेरी कहानियों में एक बात ग़ौर करेंगे कि महिला पात्र केंद्र में हैं और रहेंगी। मैं मौन को मुखर करने की हिमायती हूँ। सो उनकी आवाज़ बन रही हूँ। मेरी नायिकाएँ कायर नहीं हैं, कमज़ोर नहीं हैं, लाचार हैं। उनके सामने वे सारे सवाल खड़े हैं जो ज़िंदगी में किसी भी महिला के सामने खड़े होते हैं। बाद में ये सारे सवाल विमर्श में बदल जाते हैं। पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री जहाँ खड़ी है वह जगह बेहद भयावह है, आज भी। विनर है तो भी लूजर है तो भी। जिस संकट के दौर से स्त्री अस्मिता आज गुज़र रही है, उसे चिह्नित करने का काम कर रही हूँ। मैं अपनी तपती उँगली रख रही हूँ, कोई झुलस जाए तो मैं क्या करूँ। मैं असूर्यमपश्या महिलाओं को बाहर ला रही हूँ। भले आपकी नज़र में वे अश्लील लगें। मैं ऐसे निंदकों की परवाह नहीं करती। मेरे प्रिय लेखक ख़लील जिब्रान की एक कहानी तूफ़ान याद आती है जिसमें एक किरदार कहता है, कई मनुष्य ऐसे हैं जो सागर की गर्जन के समान चीखते रहते हैं, किंतु उनका जीवन खोखला और प्रवाहहीन होता है जैसे सड़ती हुई दलदल। कई ऐसे होते हैं जो अपने सिरों को पर्वत की चोटी से भी ऊपर उठाए चलते हैं किंतु उनकी आत्माएँ कंदराओं के अंधकार में सोयी पड़ी रहती हैं।

मेरी सभी पात्र 'प्रार्थना के बाहर' (हंस पत्रिका) की रचना हो या प्रार्थना, उर्फ देवी जी (इंडिया न्यूज़) की लाली यानी दिशा हो या ख़ुद देवी जी, इंद्रधुनष के पार (हंस पत्रिका) की आँचल हो या आशा, उदास पानी (इंडिया टुडे) की सोनल हो या दो पन्नों की औरत (निकट पत्रिका) की आसावरी हो या चौपाल (नया ज्ञानोदय) की शिवांगी...ये सब की सब ऐसे मनुष्यों की परवाह नहीं करतीं जिनकी आत्माएँ कंदराओं में सोई पड़ी हों। जो कहानी में भी में स्त्री का नग्न होना सहन नहीं कर पाते।

मेरी सभी नायिकाएँ मुझे पसंद है.. ख़ासकर "आँचल" जो ऐसी आत्माओं का इलाज अच्छे से करती है। जहाँ कहानी ख़त्म होती है, वहाँ उसका काम ख़त्म नहीं होता। वह उसके मुक्ति अभियान का पहला चरण है। उसके बाद की चीज़ें पाठकों के दिमाग़ में जब घटती हैं, तो वे बिलबिला उठे और पत्थर दे मारा मेरे ऊपर। इससे मेरी नायिकाएँ डरने वाली नहीं हैं। वे कोई सोशलाइट (सामाजिकाएँ) नहीं है कि अनचाहे आँसू की तरह इधर-उधर लुढ़क जाएँ।

सारी नायिकाएँ अलग-अलग पृष्ठभूमि से आती हैं। कुछ शहरी हैं तो कुछ गाँवो, क़स्बों से आई हैं। रचना छोटे शहर से आई है उसे शहरी मूल्य परेशान करते हैं। उसकी मुठभेड़ जब प्रार्थना से होती है, तो उसके होश उड़ जाते हैं। मूल्य बोध से टकराती हुई नायिकाएँ मुझे पसंद हैं। नैतिकता की धज्जी उड़ाती हुई स्त्रियाँ मुझे पसंद हैं। "आँचल" मुझे औरों की तुलना में ज़्यादा पसंद है क्योकि उसका साहस अनूठा है। किसी भी स्त्री के लिए अचंभे की तरह। वह जिस तरह ड्रेसकोड के ख़िलाफ़ खड़ी होती है, वह देखने लायक है। जब मेरी नायिका नैतिकता के पाखंडियों से टकरा रही होती है, ठीक उसी वक्त देश में महिलाएँ ड्रेसकोड के ख़िलाफ़ स्लटवाक करती हैं। एक स्त्री का साहस दुनिया भर की महिलाओं के एक ख़ास आंदोलन से कैसे जुड़ता है, यह देखिए। गाँव से शहर में आई एक लड़की का शहरी मोह भंग भी इस कहानी के पीछे है। अपना चुना हुआ आकाश भी उसके लिए एक धोखा साबित होता है।

मर्दों की बनाई हुई दुनिया में एक आज़ाद औरत वैसे भी एक चुनौती से कम नहीं होती। मेरी हर महिला पात्र एक चुनौती की तरह है। जीत कर भी, हार कर भी। पाकर भी, खोकर भी। वह अपने हिस्से का सुख ले ही लेती है। अपनी शर्तों पर ज़िंदगी जी ही लेती है। यह ज़िंदगी कुछ पल की भी हो सकती है। "इंद्रधनुष के पार" की नायिका आँचल बहुत चैलेंजिंग हैं मेरे लिए। समाज के लिए भी। इस कहानी के "हंस" में छपने के बाद मैंने और संपादक राजेन्द्र यादव जी ने कितनी गालियाँ सुनी हैं, इसका सबूत वहाँ छपी कई चिट्ठियाँ हैं। पाठकों की प्रतिक्रियाएँ हैं। हालाँकि जब प्रतिक्रियाएँ आनी शुरू हुईं तो राजेंद्र जी दुखी हुए। कहा- "बड़ी तारीफ़ आ रही है, तेरी कहानी की। बात क्या है.. यह अच्छी बात नहीं है।"

मैं भी तारीफ़ पर खुश हो रही थी। मुझे लगा कि हिन्दी समाज बदल गया है। उसमें एक साहसी कहानी समझने स्वीकारने की समझ और हिम्मत दोनों आ गई है। राजेंद्र जी ने कहा– "ज़्यादा खुश मत हो। यह अच्छी बात नहीं है। अगर आपकी रचना ने आपके समय को पाठकों को झकझोरा नहीं, उन्हें डिस्टर्ब नहीं किया, तो तेरा लिखना बेकार। मुझे उम्मीद नहीं थी कि तारीफ़ में इतने पत्र आएँगे।"

मगर ये ख़ुशियाँ जल्दी ही हवा हो गईं। मेरे

घर के पते पर, हंस के ऑफ़िस में, फेसबुक पर और ईमेल से मुझ पर जो गालियाँ बरसी कि पूछो मत। लोगों ने नाम छुपा-छुपा कर गालियाँ दीं। मेरी समझ में आया कि कुछ तो अनजान पाठक और कुछ वे अपने जो मेरी तारीफ़ मुँह पर करते हैं और पीछे से मेरे लिए तरह-तरह के विशेषणों का प्रयोग करते हैं। उनका भला हो। बीमार मानसिकता पर आप सिर्फ दया ही कर सकते हैं। सो उनकी गालियाँ सिर माथे। उनकी समझ ही इतनी है कि क्या करूँ। मेरी उस वक्त की अनजान दोस्त, कहानीकार प्रज्ञा पांडे ने जिस तरह से मुझे मेरी कहानी के विस्तृत फ़लक के बारे में बताया, वहाँ तक शायद मैंने सोचा नहीं था। उन्होंने मेरी कहानी को उस दौर में दुनिया भर में चल रहे ड्रेसकोड के ख़िलाफ़ आंदोलन से जोड़ दिया।

इसके अलावा कहानी की नायिका आँचल को लोगों ने अलग-अलग तरीक़े से देखने की कोशिश की.. सोचिए, जिस किरदार को पाठकों ने इतनी गालियाँ दीं, क्या उसे रचते हुए मुझे इसका अंदाज़ा नहीं रहा होगा ? अंदाज़ा था..और यही मेरी ज़िद है। मैं "गुडी गुडी" लिखने के लिए नहीं हूँ। आपके समाज में जो हो रहा है उसे देखिए। एक स्त्री के आइने में ज़्यादा साफ शफ़्फ़ाफ़ दिखाई देगा। स्त्री के जरिए जब पोल खुलती है तो लोगों को मिर्ची लगती है। एक पाठक जो जिला अदालत में जज हैं, वे अपने पत्रों में साफ-साफ स्वीकारते हैं कि समाज में ऐसा हो रहा है और हम आज भी स्त्री को देह से अलग देख पाने को तैयार नहीं हैं।

एक स्त्री का नग्न होना या नग्न कर देना मेरे लिए कठिन था। नायिका के न्यूड पार्टी में जाने से पहले मैंने बहुत सोचा कि वह भाग खड़ी हो... एक बार वह भागती भी है... उसके भीतर पलायन का ख़याल आता है.. उसकी कायरता थी, ऐसा सोचना... लेकिन लगा कि क्या स्त्रियाँ हमेशा भागती ही रहेंगी... मुकाबला नहीं करेंगी। नहीं.. वह नहीं भागेगी...वह एक नंगे पुरुष की आँख में आँख डाल कर बात करेगी.. शर्म स्त्री की आँखों में नहीं, पुरुष की आँखों में हो... यही तो चुनौती है।

मेरी कठिनाईयाँ और भी थीं.. रचने के बाद, छपने की। हर मोड़ पर। "हंस" बोल्ड कहानियों को छापने का दावा करता रहा है.. उनकी भी हिम्मत नहीं हो रही थी। लटकी रही कहानी। वहाँ भी कुछ संपादकीय साथियों को मेरी कहानी अश्लील लगी। मेरी कहानी का मर्म कोई नहीं पकड़ पा रहा था। मेरे लिए एक स्त्री को भरी महफिल में नग्न कर देना जितना मुश्किल था, इसका अंदाज़ा उन्हें नहीं था। उन्हें यकीन ही नहीं था कि कोई स्त्री ऐसा कर सकती है या समाज में न्यूड पार्टी का कोई अस्तित्व है। उन्हें यह गढ़ा हुआ संसार लग रहा था। बाद में टाइम्स आफ इंडिया में इस तरह की पार्टी के बारे में डिटेल छपा था। मज़ेदार बात यह कि मध्यप्रदेश के मेरे एक पाठक ने छोटे शहर में न्यूड पार्टी की एक ख़बर की कटिंग के साथ पत्र भेजा, जिसमें लिखा था कि हमने तो अख़बार में पढ़कर अब जाना कि समाज में ऐसा हो रहा है, आपने तो बहुत पहले ही इसका अनुसंधान कैसे कर डाला...। वह चकित होकर सवाल पूछ रहे थे।

मुझे याद है, मेरे प्रिय लेखक मित्र पंकज सुबीर ने कहा था- "दरअसल आपने समय से बहुत पहले यह कहानी लिख दी। पत्थर तो बरसेंगे हीं। हमारा साहित्य समाज अभी इतना मैच्योर नहीं हुआ कि आसानी से स्वीकार ले। इसका मूल्यांकन होगा.. कुछ साल बाद।"

मैंने कभी सायास पात्र नहीं चुने। सब आते चले गए, मिलते चले गए। पात्र तो ख़ुद लेखक को चुनते हैं। वह आपको गढ़ते हैं। पता नहीं कब, क्या, कौन पात्र मुझे अपने नियंत्रण में ले ले। अभी कुछ सोचूँ और बाद में वह बदल जाए तो। पात्रों को लेकर समयानुकूल घोर आशंका बनी रहती है। एक बात ज़रूर है कि मैं अपने पात्रों में एकरसता से बचना चाहती हूँ। उनमें वैविध्य देखना चाहती हूँ। रेंज हो उनमें। वे जादुई भी हों और यथार्थवादी भी। मैं निराश पात्रों से या कहें बहुत ज़्यादा निगेटिव पात्रों से बचना चाहती हूँ। लेकिन क्या पता, कब कौन आ जाए और अपनी जगह ले ले आपकी रचनाओं में। सब अपनी जगह छेंक लेते हैं। मेरे लिए लिखना ख़ुद को मुक्त करना है। अब यह मुक्ति कैसी है, इस पर मैं अपनी रचना प्रक्रिया में बहुत बात कर चुकी हूँ। इस मुक्ति की चाहत ने पात्रों की तलाश में हकासल-पियासल जैसी हालत कर दी है। पहले से ज़्यादा चौकन्ना हूँ। पात्र और मैं दोनों एक दूसरे की तलाश में हैं शायद।

मेरे ऊपर पूर्ववर्ती साहित्यिक किरदारों का गहरा असर है। जैसे कुछ प्रभावशाली पात्र। मार्खेज के उपन्यास एकाकीपन के सौ साल की उर्सूला ने हमें बहुत प्रभावित किया है। अपनी शर्तों पर जीने वाली औरत जिसने रिश्ते में अपने भाई से प्रेम किया और शादी की। समाज की हदें नहीं मानीं। जिसने अपना मिठाइयों का व्यवसाय करके ख़ुद खेतीबाड़ी करके अपनी गृहस्थी चलाई, बच्चे पाले, उन्हें ज़िंदगी भर सँभाला, बच्चों के बच्चे और उनके बच्चे को भी सँभाला। बुढ़ापे में अंधी होने के बावजूद अपनी ज़िंदगी ऐसे जीती रही कि किसी को पता भी नहीं चला कि वह देख नहीं सकती। यह सब एक स्वभाविकता से किया।

औरत की स्वभाविक शक्ति और समझदारी से। न कोई शिकायत और न ही ग़ुरूर। यह पात्र कभी लाइम लाइट में नहीं रहा। इसपर कोई चर्चा भी नहीं हुई है। लेकिन हमें बहुत शानदार और जानदार लगी है वह। इसके अलावा गोर्की की माँ की माँ ने बहुत इंप्रेस किया है। यह माँ साधारण माँ नहीं है, क्रांतिकारियों की माँ है। यह किताब का चरित्र नहीं हमारी साथी है। यह चरित्र न केवल एक क्रांतिकारी पात्र को हाड़माँस का बना देता है बल्कि उसके आगे जलती हुई मशाल प्रतीत होता है। यह माँ हमारे लड़ने वाले पुरखों की भी माँ है।

रवींद्रनाथ टैगोर के गोरा उपन्यास में केंद्रीय पात्र गोरा यानी गौर मोहन बाबू आँखें खोलने वाला पात्र है। गोरा आभिजात्य की माँग से भरा हुआ ऐसा चरित्र है, जो बिना राष्ट्रीय आधार के जीता है। जिसकी अपनी कोई पहचान नहीं। इस पात्र को आज के भारतीय संदर्भ में देख सकते हैं। गौर बाबू अपने माता-पिता की फुसफुसाहटें जब सुनते हैं तो उनके पैरों तले की ज़मीन खिसक जाती

है। जिस सवर्ण जातीयता की अस्मिता को लेकर वे जीवन भर लड़ते हैं वह उनका आधार नहीं निकलता है। जिस सर्वण पिता के वे दत्तक पुत्र हैं वही पिता उन्हें अपनी मृत्यु के बाद मुखाग्नि देने से वंचित कर देता है। वह दंग रह जाता है कि जिस वर्ग के लिए वह लड़ रहा है, वह तो उसका है ही नहीं। वह किसी आधारहीन भविष्य के लिए मर-खप रहा है।

हमारे देश में हिंदुत्ववादियों का जो उभार हुआ है उसकी जड़ में कुछ नहीं है, कोई आधार नहीं, कोई मिट्टी तक नहीं। उसे सिर्फ घृणा, अलगाववाद से पोषण मिलता है। गौर बाबू अपने जीवन के पूर्वाद्ध में सांस्कृतिक राष्ट्रवादी और पुनरुत्थानवादियों का प्रतिनिधित्व करता दिखाई देता है, अपनी जातीय श्रेष्ठताओं के आधार पर।

हमारे भीतर कुछ श्रेष्ठताएँ होती हैं। कोई आदमी किसी श्रेष्ठता में जीने लगे और उसके आधार पर विश्व की कल्पना करने लगता है। बाद में यह वायवीय शुद्धता, शुचिता ऐसी राष्ट्रीय सोच को जन्म देती है जिसका कोई वजूद नहीं है। इस बारे में मार्क्स का कथन याद आता है। मार्क्स कहते हैं कि जो कूपमंडूक होता है वह अपने आप को सबसे अधिक चरित्रवान् मानता है। अपने देश को सबसे महान् और अपने धर्म को सबसे महान् समझता है। कूपमंडूक दूसरे को चरित्रवान् बनने की सलाह अनिवार्य रूप से देता है।

मेरी नज़र में गोरा पुर्नपाठ की माँग करता है। इसे हिंदुत्वादियों को पढ़ना चाहिए तसलीमा की लज्जा से ज़्यादा। कम से कम इतना तो समझ में आएगा कि आधारहीन भविष्य की तरफ बढ़ने के क्या मायने होंगे।

और भी पात्र हैं जो मेरे ज़ेहन में जमे हुए हैं। समय-समय पर वे मुझे जीने में मदद करते हैं। अल्केमिस्ट के गड़ेरिया सेंटियागो को कैसे भूला जा सकता है। वैसे तो मुझे पाउलो कोएल्हो के हर उपन्यास का पात्र बहुत पसंद आता है। वे सब मुझे कुछ न कुछ सिखा जाते हैं। एक मामूली गड़ेरिया एक अकूत और भव्य सांसारिक ख़ज़ाने को प्राप्त करने की इच्छा रखता है। उसकी यह यात्रा सिखाती है कि हमें अपने दिल की आवाज़ सुननी चाहिए, जो मैं हमेशा सुनती हूँ। हममें सपने देखने का साहस होना चाहिए तभी सारी कायनात उसे पूरा करने में जुट जाती है। सपनों और प्रयत्नशीलता की ताक़त की कहानी है यह।

पहली कहानी प्रार्थना के बाहर का आना

इस कहानी की नींव उसी दिन पड़ गई थी जिस दिन लक्ष्मीनगर की उस बंद गली के आख़िरी मकान में छोटे शहरों की कई लड़कियों ने अपना ठिकाना बनाया था। बहुत तंग सी गली थी जिसमें कोई गाड़ी नहीं घुस सकती थी। सिर्फ पैदल जा सकते थे या आपके अरमान वहाँ घुस सकते थे। सपनों और ख़्वाहिशों से लदे हुए अरमानों को हमने रोज़ गुज़रते देखते और गली के किनारे बह रहे उस गंदे नाले में बजबजाते संड़ांध को अपने जिस्म में महसूस करते। उस बंद से तिलिस्मनुमा मकान में अँधेरी सीढ़ियाँ चढ़ते ही जान में जान आती। समूचे शहर का शोर बहुत पीछे छूट जाता और नाली की सड़ांध भी नीचे ही छूट जाती। वह छोटा सा कमरा बहुत सुकूनदायक था। उस छोटे से कमरे में बहुत बड़े सपने, ख़्वाहिशें सँजोने सँभालने की अपार क्षमता थी। वे दिन न होते तो यह कहानी भी न होती। पत्रकारिता के वे अनगढ़ दिन अगर न होते तो बहुत सी कहानियाँ न होतीं। कितनी कहानियाँ उस गली, उस मकान उस मुहल्ले में घटते दिन रात देखती और वे कहीं न कहीं ज़ेहन में दर्ज होती रहतीं। जब कहानियाँ वहाँ घट रही थीं, तब क्या पता था कि मुझ पर इतनी हावी रहेंगी कि बिना इन्हें लिखे, मेरी मुक्ति संभव न होगी।

वे कहानियाँ मेरे दिलोजान को इतनी लग जाएँगी, तब कहाँ सोचा था। न जाने कितनी रचनाएँ और प्रार्थनाएँ उन गलियों में फैली हुई थीं, जिनकी संघर्ष गाथाएँ कभी-कभी चौंका देती थी। छोटे शहर से बड़े शहर में आई लड़कियों को ठिकाने की इतनी मुश्किलें होती थीं कि उन्हें कैसे-कैसे झूठ बोल कर आशियाना तलाशना पड़ता था। पहले छोटा सा कमरा मिल जाए फिर नौकरी की तलाश शुरू होती थी। शुरूआती कई महीने तो ज़िंदगी डीटीसी बसों में घिटसती और कंडक्टर उन्हें घिसटता देख कर हाथ बढ़ा कर ऊपर चढ़ा लेने के बजाय कहता कि दिल्ली में रहना है तो पीटी उषा बनना पड़ेगा....।

बसो में धक्के खाते हुए हर चीज़ चुभती थी, हर तरफ़ चुभती थी। चाहे आँखें हो या मर्दाना घमंड से उभरे हुए अंग। वे आपको उसी भीड़ में चटनी बना कर खा जाने पर आमादा दिखते थे। सपनों से भरी झोली लेकर जब कोई लड़की बस स्टाप पर उतरती तो कोई न कोई साया ज़रूर पीछे लग जाता। कुछ साये स्थाई हो जाते। निर्धारित बस स्टाप पर चढ़ते और मंज़िल तक साथ बने रहते। मनचलों और निठल्लों से भरी हुई दिल्ली में ऐसे सायों की कमी नहीं थी, जिनका काम सिर्फ पीछा करना और मौके की ताक में रहना कि कब मौका मिले और थोड़ी छेड़छाड़ हो जाए।

नब्बे के दशक में बेरोज़गारी इतनी बढ़ी नहीं थी। भूमंडलीकरण से ठीक पहले का समाज न इतना खुला था न ही इतना निडर हुआ था कि सरेआम राह चलते किसी लड़की को उठा ले। जब तक कि किसी लड़की से दुश्मनी न हो। उसके खानदान से मोटी रकम न वसूलना हो।

तब पूर्वी दिल्ली बस ही रही थी। बिहार उत्तर प्रदेश से पलायन करके परिवारों का आना और यहाँ बसने का अबाध सिलसिला जारी था। हर किस्म के लोग आ रहे थे। दिल्ली के आकाश में उड़ान भरने के लिए बड़े-बड़े डैने लिए रचनाएँ और प्रार्थनाएँ उसी दौर में सर्वाधिक आईं। सबके लिए छोटे-मोटे काम थे। उच्च शिक्षा भी थी। कलक्टरी के सपने थे, कॉम्पिटीशन की तैयारियाँ थीं। लड़के मुखर्जी नगर में डेरा जमाते थे। अकेली लड़कियाँ अपने परिचितों के सहारे घर ढूँढ़ कर स्वतंत्र रहना पसंद करती थीं। यह क़स्बाई लड़की को मिली नई-नई आज़ादी थी। कुछ सँभाल नहीं पा रही थीं, तो कुछ अचकचाई हुई थीं कि आज़ादी के मायने क्या है। कुछ के बाँध टूट रहे थे तो कुछ सँवर रही थीं। कुछ ने समझौते की राह पकड़ी तो कुछ ने कछुआ गति को ही अपना भाग्य मान लिया। कुछ को गॉड फादर की तलाश थी तो कुछ को गॉड फादर जैसे दोस्त मिले। कुछ ने प्रेम किया और साथी के

साथ साथ संघर्ष का मज़ा लेने लगीं।

कुछ न कुछ सबके साथ घट रहा था। जो अच्छा और बुरा दोनों था। सबके पैमाने थे। घटते हुए वक्त में अच्छे-बुरे की तमीज़ कहाँ होती है। एक दौड़ थी ज़िंदगी उस वक्त, ख़ुद को पाने, खोजने और पहचानने की। सब दौड़ रहे थे। रचना भी दौड़ रही थी। प्रार्थना भी दौड़ रही थी। दोनों के सपने अलग थे, ज़ाहिर है रास्ते भी अलग होंगे। अलग रंग वाले सपनों के दो राही एक साथ दौड़ते हैं तो उनकी चालें भी अलग होती हैं। सब उन सपनों में समाने की जद्दोजहद में थे। सपने थे कि छलावा साबित हो रहे थे। लड़कियाँ अपने को टटोलने में लगी थीं। एकांतवास कुछ लंबा खींच रहा था। कॅरियर बनाने की ज़िद ज़्यादा ही लंबी खींच रही थी। पर लगन और धुन में कोई कमी नहीं थी।

रचना मिली थी कुछ कुछ सकुचाई-सी, घबराई-सी, प्रार्थना तब भी बेख़ौफ़ थी, आज भी बेख़ौफ़ है। तब साहसी नहीं थी, अपने कृत्यों का खुलेआम ऐलान करने का साहस नहीं था। अब तो रचना का तेवर भी बदला हुआ है और प्रार्थना कुछ ज़्यादा खुल कर जीने लगी है। दोनों को अपना यह रूप प्राप्त करने में इतने साल लग गए। रचना के होठों पर तब भी शिकायतें थीं, भली लड़की बनने की ज़िद ने उसे शिकायती पुलिंदे में बदल दिया था। प्रार्थना को उसकी बिंदास अदाओं ने बैडगर्ल के खिताब से नवाज़ कर अमर कर दिया है।

यह कहानी मुझे इसलिए नहीं प्रिय है कि यह मेरी पहली कहानी है या बोल्ड कहानी के खाँचे में फिट बैठती है। मैं कहानी को बोल्ड या कोल्ड जैसे खाँचे में डाल कर देखने की पक्षधर नहीं हूँ। यह जिनका काम है वे जानें। इस कहानी को 15 साल बाद लिखने के पीछे कोई बड़ी वजह होगी। यह कहानी साहित्य के किसी भी विमर्श से प्राभावित नहीं है। इसे जिस तरह विमर्श से जोड़ कर देखा जा रहा है, वह तंग नज़रिये का परिचायक है। इस कहानी पर बात जिस तरह होनी चाहिए, नहीं हुई। अगर किसी जंग में अच्छाई पर बुराई की जीत होती है, इसका मतलब यह नहीं कि पूरा समाज उसके पक्ष में खड़ा है। जिस भूमंडलीकरण से जोड़ कर इस कहानी को देखा गया, उन्हें यह बात समझ में नहीं आई कि जिस दौर में यह कहानी घट रही थी, उस वक्त उदारवाद का "उ" तक किसी ने नहीं सुना था। तब तक समाज के चेहरे से मुखौटा उतरा नहीं था। शुचिता का मुलम्मा चढ़ा हुआ था। उसी वक्त नई लड़की ने समाज में जन्म ले लिया था जो बाद में चल कर उत्तर आधुनिक समाज की रचना करने वाली थी और जो आगे आने वाली पीढ़ियों को रूढ़ियों से मुक्ति देने वाली थी। इसमें स्त्री-पुरुष दोनों शामिल थे।

भले यह कहानी भूमंडलीकृत समाज के दौर में लिखी गई। यहाँ स्पष्ट करना ज़रूरी है कि यह कहानी किसी भी अराजकता पक्ष में नहीं खड़ी है पर साथ साथ यह भी समझ लें कि यह कहानी किसी लड़की की यौनशुचिता पर सवाल खडे करने के पक्ष में भी नहीं खड़ी है। स्त्री की जिस आज़ादी को मैंने उस दौर में देखा था, वह तब ढँकी-छुपी थी। इसीलिए रचना जैसी भली लड़की अचरज में पड़ी रहती है। प्रार्थना अपने समय से बहुत आगे की लड़की है। उसके लिए अपना लक्ष्य भी उतना ही इंपॉरटेंट हैं जितना उसका आनंद। पाउलो के उपन्यास ब्रीडा में एक जगह लिखा है...ईश्वर तक जाने वाली पहली राह है प्रार्थना और दूसरी आनंद।

प्रार्थना के लिए उसकी पढ़ाई और उसकी दैहिक मस्ती, दोनों परमानंद की तरफ़ ले जाने वाली राहे हैं। वह लड़कियों के लिए वर्जित क्षेत्र में प्रवेश करती है तो हंगामा हो जाता है। सेक्स उसके लिए कोई टैबू नहीं है। वह ऐसे प्रतीक के तौर पर उभरती है जो सारी वर्जनाओं को तोड़ देती है। वह रूढ़ियों को छिन्न-भिन्न करती है और नैतिकता के पाठ की धज्जियाँ उड़ा देती है। आप उसके आचरण की निंदा करते हैं, करिए, पर क्या ऐसा करते समय आप किसी की व्यक्तिगत आज़ादी का हनन नहीं करते। आप किस मुँह से मॉरल पुलिसिंग करते हैं ? शादी से पहले अनेक पुरुषों से संसर्ग करने वाली लड़की कैसे धिक्कार का पात्र बन जाती है। सोचा है कभी, अपनी आत्मा में धँस कर कि यौन शुचिता का पाठ किसने सिर्फ स्त्रियों को पढ़ाया और मर्दवादी सत्ता ख़ुद को उससे बाहर रख कर नैतिक ठेकेदार बन गई ? प्रार्थना चुनौती देती है इस पाठ को और नैतिक ठेकेदारों को। यह ठीक है कि प्रार्थना की स्थापनाओं से हमारी सहमति, असहमति हो सकती है, पर बिना अपने भीतर झाँके, दूसरों को अच्छा और बुरा साबित करने की हिम्मत किस ग्रह से आती है, हैरान होती हूँ, सोच कर। क्यों हम नैतिकता का सारा बोझ कहानी पर डालना चाहते हैं, समाज को क्यों बाहर रखना चाहते हैं। कहानी या कहानीकार को क्यों कटघरे में खड़ा करते हैं, अपने समाज की विद्रूप सच्चाईयों से आँखें क्यों बंद करते हैं। कहानी क्या किसी और ग्रह से निकल कर आती है। समाज के अँधेरे कोनों में भी झाँकने की ज़रूरत नहीं है क्या। उन बंद गलियों में जाइए, जहाँ ज़िंदगी की सच्चाईयाँ दफ़्न हैं। आप इन सच्चाईयों को प्रतिशत में आँकने चले हैं और कुतर्क करते हैं-"समाज में कितने प्रतिशत हैं ऐसे लोग ?" कैसा अजीब सा तर्क है न। प्रार्थना जैसी लड़की मनुष्य नहीं है क्या ? उसकी इच्छाएँ क्या निर्वासित ही रहेंगी ? क्यों गणित की तर्ज पर हम कहानी को आँकने चले हैं। क्यों एक लड़की के कौमार्य भंग से हम इतना डरने लगे हैं कि उम्रदराज स्त्रियाँ भी प्रार्थना की ख़्वाहिशों को दुरदुराती हुई कहती हैं..."ब्वायफ्रेंड से सेक्स का रिफ्रेशमेंट... यह कैसा स्त्री विमर्श है।" ऐसे सवाल उठाने वालों को अपने पुरखों से पूछना चाहिए, जिन्होंने अब तक कोठे आबाद कर रखे हैं और घर में बीवियों के रहते कोठे पर अपना "रिफ्रेशमेंट" खोजने जाते रहे हैं। उस रिफ्रेशमेंट को पुरुष लेखकों ने समय-समय पर ग्लोरीफाई भी किया है। तब कोई सवाल नहीं उठे। चेहरे से मुखौटा उतरता है, तो तकलीफ़ होती है।

आख़िर प्रार्थना जैसी लड़कियाँ कब तक अपने आनंद को अँधेरे का हिस्सा मानती रहेंगी। मुझे तो फील्ड रिपोर्टिंग करते समय बहुत प्रार्थनाएँ दिखीं, वे भले खुल कर न मानें, पर हमने बहुतायत में देखा समझा है।

भूमंडलीकरण के बाद क्या समाज नहीं बदला, दिल पर हाथ रख कर कोई इनकार

कर दे। फिर बदलते हुए समाज को, उसके पतन को चिह्नित करना क्या ग़लत है।

हाल ही में इस कहानी को पढ़ने के बाद एक परिचित पाठक, नई लड़की ने खुल कर स्वीकार कर मुझे चौंका दिया।

"दी...मैं आपकी प्रार्थना हूँ। आपने मेरे ऊपर कहानी लिख दी। कैसे आप बिना मिले मेरे बारे में इतना स्पष्ट लिख पाईं....?"

मैं यह सब सुन कर शॉक्ड थी। वह पाठिका खुल कर अपने महाआनंद के बारे में बात कर रही थी। कहीं कोई संकोच नहीं...वह ऐलान कर रही थी कि "हाँ मैं हूँ प्रार्थना...जिससे चाहे कह डालिए, बता दें...। मुझे कोई संकोच नहीं। किसी से भय नहीं...मैं जो हूँ सो हूँ...। किसी की दया पर ज़िंदा नहीं हूँ..ख़ुद कमाती हूँ, अपनी शर्तों पर ज़िंदगी जीती हूँ...।"

यानी कहानी लिखने के चार साल बाद, कहानी घटित होने के 20 साल के बाद...मुझे प्रार्थना मिल गई और रचना। रचना अच्छाई का प्रतीक है, सीधी सादी लड़की, जो किसी भी घर, क़स्बे में पाई जाती है। वह भली लड़की बनने के चक्कर में लगातार पिछड़ रही है। वह नहीं जानती कि भली औरतें इतिहास नहीं रचतीं। जानती तो क्या वे भली बनी रह पाती ?

यह कहानी मेरी प्रिय कहानी नहीं है पर मेरी पसंदीदा कहानी ज़रूर है। सबसे पसंदीदा...। अपनी कहानियों में से कोई प्रिय चुनना मेरे लिए संभव नहीं है, किसी के लिए हो तो हो। शायद मैंने अब तक अपना बेस्ट लिखा ही नहीं...लिखा जाना बाक़ी हो। यह कहानी जिस बहस को जन्म देती है, और जिस यातना से गुज़र कर लिखी गई, लिखने के बाद जितनी आलोचना और पीड़ा मैंने झेली, उस वजह से यह कहानी मुझे पसंद आई। जिस दौर की कहानी है, वह परिवेश एकदम अलग था। बिल्कुल भिन्न...यह कहानी भूमंडलीकरण के बदलाव की आहट से उपजी है। यानी भारतीय मध्यवर्ग में बदलाव शुरू हो चुका था, गति आई, उदारीकरण के बाद। यह कहानी उसी बदलाव की पृष्ठभूमि तैयार करती है। अच्छी और बुरी प्रवृत्तियाँ हर दौर में रही हैं... हम उन्हें राम रावण की तर्ज पर देखने के आदी रहे हैं। बुराई का स्वरूप हमेशा विराट् होता है। इसका यह मतलब नहीं कि हम उस विराटता को दिखाते-दिखाते उसके पक्ष में खड़े हो जाते हैं।

हम इस कहानी को भारतीय पौराणिक मिथकों के तर्ज पर क्यों न देखें, बजाए इसके कि कहानीकार को यह कह कर लताड़ते रहें कि कहानीकार ने सेक्स को ग्लोरीफाई किया है। प्रार्थना ने सेक्स के जरिए पढ़ाई नहीं की... इस बात को तो समझने की ज़रूरत है। सेक्स उसके लक्ष्य के लिए न साधन था न साध्य। बस वहाँ तक पहुँचने की राह को आनंद से भर देने वाला तत्व भर था। जैसे कुछ लोग अपना आनंद अलग-अलग साधनों-प्रसाधनों में ढूँढ़ते हैं।

अपनी पहली कहानी से भी मैं बहुत दूर निकल आई हूँ। अब अनेक कहानियाँ हैं, हर कहानी के पीछे कोई न कोई कहानी है। अब जबकि मैं लेखन में बहुत दूरी तय कर चुकी हूँ, पीछे मुड़कर देखती हूँ तो एक हाँफती-काँपती, सकुचाती अधेड़ावस्था की दहलीज़ पर खड़ी एक स्त्री नज़र आती है। पत्रकार से लेखक में बदलते हुए उसे देखना, ख़ुद उसके लिए भी अचरज है। जैसे खोई हुई ज़मीन को वापस पा लेना। हालाँकि वह अब भी चोला नहीं पहनती है, आंतरिक ताना-बाना लेखन का है। लेखन में देर से आई। उसे जल्दी थी, अपने समकालीनों के साथ क़दमताल के लिए। उन तक पहुँच कर उनकी बाँहें थामना चाहती थी। वे एक साथी को पहचानें जो एक दुनिया छोड़ कर उनकी दुनिया में आई है।

हुआ उल्टा। स्वागत करने वाले कम, दुत्कारने वाले, संदेह से देखने वाले ज़्यादा। जो कम थे, उनमें इतनी ताक़त थी कि चिराग़ बुझ न पाए। उसने बहुत मेहनत की, बहुत काम किया। ख़ुद को झोंक दिया। डूब गई पढ़ने और लिखने में। यह अलग बात है, और बेहतर लेखन अभी बाक़ी है। उसी रास्ते पर है वह। वह भी होगा एक न एक दिन। ये चिराग़ जल रहे हैं।

अब उसे लोग कहते हैं बहुत हड़बड़ी में है और वह हर जगह दिखाई देने, उपस्थित रहने की उतावली रहती है। अब इस जजमेंट पर किस तरह रिएक्ट करें वह। भारतीय समाज बहुत जजमेंटल है।

इस बात को इस तरह समझाना चाहती हूँ।

हम जब कहीं से चलना शुरू करते हैं तब तेज़ -तेज़ कदम उठाते हैं, रास्ते में किसी स्टेशन पर रुकना नहीं चाहते। हर राहगीर को पीछे छोड़ना चाहते हैं और जो आगे चल रहा है, उसके साथ क़दम मिलाना चाहते हैं। फिर बीच में पहुँच कर अहसास होता है कि हड़बड़ी क्यों थी? मंज़िल वही रुकी है, चलते तो रास्ते हैं। मंज़िल कहीं चल कर नहीं जाएगी। इधर-उधर जाते हैं रास्ते। किसी भी मोड़ से फूट लेती हैं राहें।

मंज़िल स्थिर हो, दूर भले, तो यात्रा गंगा की तरह करनी चाहिए। बाधाएँ पार करते, चट्टानों से लड़ते -भिड़ते, उनको रगड़ते, उनको रेत करते हुए, मंज़िल है समंदर, गंगा की यात्रा मुझे मोहती है, वही प्रेरणा भी !

फिर भी गंगा अपने उद्गम स्थल पर हाहाकारी है न ! हर शुरूआत ऐसे ही होती है प्रचंड आवेग से।

उस पर सवाल उठाने वाले प्रकृति के नियमों को नहीं जानते।

काम की हड़बड़ी या हर जगह दिखने, पहुँचने की लालसा कोई बुराई तो नहीं ? यह कोई जघन्य अपराध या चुटकुला तो नहीं कि हँसा जाए इस पर ? या आरोप लगाएँ। यह किसी और की चिंता का विषय क्यों हो?

सबकी अपनी क्षमता, कार्य प्रणाली और अपना तौर-तरीक़ा है, जिन्हें आपत्ति होती है, उनके लिए निदा फ़ाज़ली साब की ग़ज़ल का शेर पेश करती हूँ- "जब किसी से कोई गिला रखना, सामने अपने आईना रखना"

मैं भीतर के पानियों में थिर हुआ अपना चेहरा देखती हूँ, और गहरे संतोष से भर उठती हूँ। मुझे लेखन के सत्य का पता चल चुका है कि लेखक का एक जीवन उसकी मृत्यु के बाद शुरू होता है।

इस जीवन के बाकी समय में तय है कि अब मुर्दा पौधों को पानी नहीं देना है।

000

बाइज़्ज़त बरी

रेनू यादव

"आसमान कभी नहीं कहता कि वह धरा से प्रेम करता है लेकिन वह धरा के तपन को महसूस कर बरसने लगता है। वह तब तक बरसता है जब तक कि धरा का मन शांत न हो जाए। इसी तरह धरा कभी नहीं कहती कि वह आसमान से प्रेम करती है लेकिन कभी समुद्र में उठे ज्वार-भाटा से तो कभी उसके तल से उठते जलवाष्प से, कभी हरीतिमा को लहरा कर तो कभी सूर्य की सारी तपन स्वयं में जज़्ब कर अकथ कहानी से परिचित करवा देती है। आसमान महमह हो उठता है। लेकिन एक स्थिति ऐसी आती है कि जहाँ हवा, पानी, जल सब कुछ समाप्त हो जाता है, मात्र शून्य बचता है। उस शून्य को महसूस करना ही प्रेम है।" शून्य में गहरे डूबते हुए स्वरा ने नीरव से कहा।

क्राउन होटल के दसवें तल के कमरा नंबर 1011 की शीशे की बड़ी-बड़ी खिड़कियों से बाहर की ओर देखते हुए स्वरा शून्य में डूब चुकी थी। नीरव उस शून्य को विस्तार देना जानता था। किंतु इस समय ज़रूरी था स्वरा का ध्यान भंग करना। वह देख रहा था ढलती शाम के सिन्दूरी रंग में पूरा शहर डूब चुका है। बादल भी कहीं-कहीं सिन्दूर की रेखाओं से बिंध चुके हैं तो कहीं-कहीं नीले आसमान में सफेद बगपंक्तियों की तरह तैर रहे हैं। वह चाहता था स्वरा की उँगलियों में अपनी उँगलियाँ फँसा कर उन सफेद बगपंक्तियों के साथ तैरना शुरू कर दे। उसने अपने हाथों को स्वरा के हाथों से इस तरह से छुआ दिया जैसे अन्जाने में ही छू गई हों। स्वरा के हाथों से लेकर शरीर तक एक लहर-सी दौड़ उठी पर उसने उसे वहीं मन के अंदर दबा दिया और दृढ़ बनी रही ताकि नीरव को कुछ पता न चल सके।

'शून्य के भीतर लगातार चलने वाले शोर को क्या कहोगी ?'

'जब तक शोर है तब तक अंतर्द्वंद्व है, अपेक्षाएँ हैं, वासना है। शोर को शांत होने दो। महसूस करो ख़ुद को। लीन हो जाओ असीम विराट् में जहाँ पा सको ख़ुद को। यदि ख़ुद को ढूँढ़ लिया तब समझना तुम प्रेम में हो'।

'इतने गहरे उतरने के बाद कहीं ख़ुद को खो दिया तो ?'

'ख़ुद को नहीं ढूँढ़ पाए तो समझना तुम्हारी तलाश अभी ज़ारी है। सालों-साल भटकने रहने के बाद ऐसी स्थिरता आती है'।

वैसे तो स्वरा आसानी से कभी भी अपनी भावनाओं को स्वर नहीं देती लेकिन आज न जाने ऐसा क्या था कि वह बहे जा रही थी। इतना गूढ़ रहस्य नीरव की समझ से परे था। उसके लिए संवेदनशील होना, केयरिंग होना, एक-दूसरे को समझना ही प्रेम है। स्वरा की बातों का उसके पास कोई जवाब नहीं था। उसने मुस्कराती आँखों से पूछा, 'यहाँ अच्छा लग रहा है ?'

नीरव की आँखों की लालिमा स्वरा के गालों पर उतर आई, लेकिन अपनी नज़रें खिड़की से बाहर टिकाते हुए उसने कहा, 'मुझे बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ बहुत पसन्द हैं और...'

'और...?'

'कुछ नहीं'

डॉ. रेनू यादव
फेकल्टी असोसिएट,भारतीय भाषा एवं साहित्य विभाग (हिन्दी) गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, यमुना एक्सप्रेस-वे, गौतम बुद्ध नगर, ग्रेटर नोएडा, पिन – 201312
मोबाइल- 9810703368
ईमेल– renuyadav0584@gmail.com

'काश ! तुम अपने मन की खिड़की से मेरे मन को भी देख पाती'... नीरव ने मन ही मन सोचते हुए स्वरा की ओर देखते हुए बोला, 'अपनी पसंद को पसंद कहने में बुराई क्या है? क्यों कदम-कदम पर ख़ुद को रोक लेती हो? बहने दो ख़ुद को'

'नदी बह तो जाए पर बह कर जाएगी कहाँ? जिसका कोई साहिल नहीं उस नदी की विह्वलता के अंत से डर लगता है' ? स्वरा के होंठ काँपे लेकिन रुक गए। वह ख़ामोशी के दामन में अपनी भावनाओं को जज़्ब कर लेना चाहती थी। वह महसूस कर रही थी नीरव के कंधे पर अपना सर और उसके बाज़ू को अपने दोनों हाथों से मज़बूती के साथ पकड़े हुए। लेकिन बड़ी ही मज़बूती से अपने सिर को अपनी गर्दन पर टिकाए खिड़की से हट गई।

अब दोनों होटल के गार्डेन में आ गए। वसंत ऋतु अपनी यौवनावस्था के चरम पर है। स्ट्रीट लाइट की मद्धम रोशनी में उनका मचलना साफ दिख रहा है कि गुलाब, डहेलिया, रोज़ गेरेनियम, गार्डेन गेरेनियम, मैक्सिकन मेरीगोल्ड झूम-झूम कर प्रेमोत्सव मना रहे हैं। स्वरा और नीरव के धीमी गति से पड़ने वाले कदम सूनसान गार्डन में कँपकँपी पैदा कर रहे हैं, फूलों को छूकर आने वाली शीतल हवाओं को स्वरा और नीरव अपने में सोख रहे थे। कितनी तो बातें हैं कहने के लिए पर समझ नहीं आ रहा कि क्या कहें और ख़ामोश होकर आगे बढ़ते रहे, मानों दोनों एक दूसरे की आँखों में झाँकते हुए एक साथ महसूस कर रहे हों – 'पढ़ना है तो ख़ामोशी को पढ़ना, जो शब्दों का मोहताज़ नहीं'। एक दूसरे की ख़ामोशी को पीते हुए बातों के बीच-बीच में आए अन्तराल को पी रहे थे। उस अन्तराल में न हवा है, न पानी है, न जल है और न ही कोई रव...

आख़िरकार उन्हें गार्डन की मखमली घास ने कुछ और देर वक़्त गुज़ारने के लिए विवश कर दिया। नीरव ने बैठे-बैठे डहेलिया की लटकती फूलों की कोमल बैंगनी पँखुड़ियों को छुआ और सहम कर अपना हाथ हटा लिया। फिर उसे एहसास हुआ कि वह स्वरा के होठ नहीं बल्कि डहेलिया की कोमल पंखुड़ियाँ हैं। उसने पुन: पँखुडियों पर हाथ फेरा और मुस्करा दिया। अब अपना ध्यान डहेलिया से हटाकर स्वरा से पूछा, 'आज की मीटिंग कैसी रही'

'कुछ ख़ास नहीं, इन ब्यूटी प्रोडक्ट्स के नए-नए प्रपोज़ल से ऊब चुकी हूँ'।

'क्यों'

'ख़ूबसूरती नैसर्गिक होती है, उसे महसूस किया जाता है। रंग-रोगन तो मन को तुष्ट करने का साधन मात्र हैं।'

'अच्छा ! इसका मतलब अपने प्रोफ़ेशन से धोखा' !

'सच बताऊँ तो ये ब्यूटी प्रोडक्ट्स की कंपनियाँ औरतों के अंदर सुंदर होने का ख़्वाब जगाती हैं। वे उन्हें महसूस करवाती हैं कि इन क्रीम आदि के माध्यम से तुम सुन्दर लगने लगोगी, तुम्हारे आत्मविश्वास को बल मिलेगा आदि आदि। लेकिन हमें पता है कि यह कुछ घंटों का धोखा है और उसके बाद वही असल ज़िंदगी और वही ज़मीनी एहसास।... हर औरत काजोल या गौरी ख़ान तो हो नहीं सकती जिनकी ओवर-ऑल पर्सनॉलिटी ही चेंज हो जाए।... भारतीय मीडिल क्लास के साथ एक बड़ा छद्मी खेल खेलती हैं ये कंपनियाँ।... और हम जैसे लोग पहले बड़े उत्साहित होकर भाग लेते हैं और धीरे-धीरे हम भी उन कंपनियों का एक हिस्सा बन जाते हैं और सबको धोखा देने में माहिर हो जाते हैं"।

'ब्युटी-मिथ बाज़ारवाद का सशक्त हिस्सा है, जिसे तोड़ना आसान नहीं। लेकिन अगर तुम इस जॉब से संतुष्ट नहीं हो तो छोड़ दो'।

'न छोड़ पाना मजबूरी भी तो हो सकती है'। स्वरा ने कहते हुए मखमली घास पर अपनी उँगलियाँ फिराईं और नीरव के बालों को महसूस कर सिहर उठी।

'हाँ क्यों नहीं। छोड़ दोगी तो ब्यूटी पर ख़ूबसूरत कहानियाँ और लेख कैसे लिखोगी, आख़िर इससे भी तो शोहरत मिल ही रही है' ? चुटकी लेते हुए नीरव ने कहा।

'असंतुष्ट आत्माएँ ही कुछ बड़ा रचती हैं जनाब' हँसते हुए स्वरा की गूँज सूनसान वातावरण में फैल गई।

'रचो रचो' नीरव के ठहाके भी स्वरा की हँसी में घुल गए।

स्वरा को छूकर आने वाली पुरवाई नीरव में सिहरन पैदा कर देती है और सुकून भी। स्वरा न सही उसे स्पर्श करने वाली कोमल शीतल मंद बयार ही सही...

बहुत बार तो एक-दूसरे से मिलना हुआ था किसी सेमिनार में, मीटिंग में या किसी कंपनी में या फिर ख़ुद कभी अहमदाबाद से गुज़रते हुए किसी रेस्टोरेंट में चाय पीने के बहाने। नीरव स्मार्ट टेक्नो कंपनी में सेल्स एग्ज़ीक्यूटिव पद पर है और स्वरा सौन्दर्या ब्यूटी प्रोडक्ट्स कंपनी में एक रिसर्चर। वह गुणवत्ता की जाँच करती है और स्वान्त: सुखाय के लिए कहानियाँ, कविताएँ भी लिखती है। लेकिन अक्सर आदर्श और यथार्थ के बीच उलझी स्वरा यथार्थवादी नीरव के साथ फ़ोन पर घंटों प्रोडक्ट्स पर बहस करती हुई पाई जाती है। दोनों के दोस्तों को अब इनकी बहस फालतू लगने लगी थी, इसलिए दोनों में से किसी एक के फ़ोन पर घंटी बजते ही उनके दोस्त उनसे कन्नी काटने लगते। यह पहली बार है जब दोनों एक ही होटल में अगल-बगल ठहरे हुए हैं और दोनों एक दूसरे को इतने करीब से देखते हुए बोल बतिया पा रहे हैं। पर यह आकर्षण पहले से रहा है या अब अचानक से... कहना मुश्किल है। दोनों डिनर के बाद वापस अपने-अपने कमरे में चले गए, जहाँ शून्य तो था पर अपने खालीपन के साथ।

सुबह चाय पीने के लिए नीरव स्वरा के कमरे में आ गया। खिड़की के सामने चाय की चुस्कियों के साथ नीरव ने स्वरा की आँखों में झाँका, "कह भी दो जो कहना चाहती हो।"

"कहना तो बहुत कुछ है पर कैसे" ?

"वैसे ही जैसे मन में कहे जा रही हो।"

"डर लगता है... नग्नता चाहे मन की हो, तन की हो अथवा विचारों की, आवरण हटने के बाद अपना मूल्य खो देती हैं।"

'पर नग्नता में भी एक ख़ूबसूरती होती है।'

'वह तब तक जब तक कि उसका उपभोग न किया गया हो।'

'तो फिर उपभोग के बाद किस आकर्षण

से लोग वर्षों-बरस खिंचे रहते हैं।'

'जब तक कि कुछ और नया पा जाने की तलाश ख़त्म न हो जाए।'

'उसके बाद'

'नीरसता के साथ रस का दिखावा ही रह जाता है अथवा उच्छिष्ट।'

'ऐसा नहीं है, वह वजूद का हिस्सा बन जाता है।'

'ऐसा ही है, वजूद का हिस्सा लेकर पुरुष साफ सुथरा वहाँ से निकल जाता है और औरतें उसे हिस्सा नहीं बल्कि पूरा का पूरा वजूद मान लेती हैं, उनका तो पूरा अस्तित्व हिल जाता है, वह वहीं वर्षों बैठी रहती हैं और वियोग में डूब जाती हैं। स्त्री का यूँ वियोग में डूबे रहना पुरुष को कभी समझ नहीं आता और यदि स्त्री भावुक होकर अधिकार जमाए तो पुरुष के लिए अग्राह्य और असहनीय हो जाता है।'

दोनों ने मन ही मन संवाद करते हुए एक दूसरे की ओर देखा और मुस्करा कर चाय की चुस्कियाँ समाप्त कीं।

स्वरा ने पूछा,'तुम यहाँ से कब निकलने वाले हो?'

'शाम में ट्रेन है, और तुम ?'

'बस अभी।'

'तुमने बताया नहीं।'

'तुमने पूछा नहीं।'

होटल के नीचे रोड पर स्वरा के पति की कार आकर रुकी। उसके दोनों बच्चे पीछे सीट की खिड़की से मुँह निकाल कर झाँक रहे थे। स्वरा ने ऊपर से झाँकते हुए पहचान लिया, 'मेरे जाने का वक़्त आ गया।'

उसने जल्दी-जल्दी अपने सूटकेस को बंद किया और पर्स उठा कर जाने के लिए तैयार हो गई।

मुस्कराते हुए स्वरा रूम का दरवाज़ा खोल बाहर आ गई, दोनों की नज़रें मिली और नज़रों में शून्य तिलमिला उठा, बादलों में बिजली कड़की और वापस बादलों में ही समा गई। कदमों ने चमकते फर्श के भीतर की धूसर धरती को पहचाना था। धरती झनक उठी, कदम लिफ्ट की ओर बढ़ गए और नीरव की नज़रें उसके कदमों पर टिकी रह गईं।

स्वरा के लिफ्ट से उतर कर रिसेप्शन तक पहुँचते-पहुँचते अंकिता और विशाल दोनों आकर लिपट जाते हैं, 'मम्मा'

स्वरा ने झुककर दोनों को अपने बाँहों में भींच कर सीने से लगा लिया, 'मेरे प्यारे बच्चे'। बच्चों की माँ भूल गई कि थोड़ी देर पहले कड़कती बिजली को इसी कलेजे पर बड़ी ही बेदर्दी से झेल गई थी।

'मम्मा, पता है हम लोगों ने गोवा में ख़ूब एन्जॉय किया' विशाल ने कहा।

'और मम्मा अगली बार से आप जब भी ऑफ़िस के काम से बाहर जाओगी तब हम यूँ ही डैड के साथ घूमने जाया करेंगे, आप जल्दी-जल्दी ऑफ़िस के काम से बाहर जाया करो' अंकिता ने अपने बाल-मन को खोल दिया।

छह साल की अंकिता की बात सुनकर स्वरा और रिसेप्शनिस्ट हँस पड़े। स्वरा ने हँसते हुए कहा, 'अच्छा, मम्मा को मिस किया' ?

'किया, पर थोड़ा थोड़ा'... कुछ सोचते हुए अंकिता की बात सुनकर सब हँसने लगे। सामने खड़े विश्वास का विश्वास स्वरा को भेद रहा था वह सकुचा गई। चेहरा मन का आईना होता है या वर्षों संगत का अनुभव जो मन के सात पर्दों में छुपे गठरी को भी ताड़ लेता है। बादल में बिजली फिर से तड़की और लपलपा कर काले बादलों में समा गई। ठिठकी स्वरा को धीरे से गले लगाता हुआ विश्वास गाड़ी की ओर बढ़ गया।

बादलों के घने जंगल में बिजली राह ढूँढ़ रही थी लेकिन अँधकार को चीर पाना उसके वश में नहीं था। वह पलकों के कोटर से निकलने के लिए छटपटाने लगी। प्रेम दो व्यक्तियों के बीच का संप्रेषण हो सकता है किंतु पीड़ा एकांगी होती है। आधी रात में धरती के भीतर छिपी झिल्लियों की झन-झन मन को झंकृत कर देती और अचानक से स्वरा की आँखें खुल जातीं। पति और बच्चों को सोते हुए देख मन शांत हो जाता कि वे सुकून से सो रहे हैं। मन होता कि विश्वास को जगा सब कह दे पर कैसे ? दूसरे के दिए दुःख को कहना आसान है पर ख़ुद की मोल ली हुई पीड़ा कैसे कहें ? आदर्श और नैतिकता की कटघरे से बाहर निकल कर विवाहेत्तर प्रेम को स्वीकार करने मात्र से ख़ुद ही रूह काँप जाती है फिर जिनके साथ रूह जोड़े बैठे हों उनसे कैसे कहा जा सकता है ? स्वीकृति-अस्वीकृति के बीच झूलते मन और तन का भार होठों की कँपकँपी के नीचे ही सहना नियति बन गई। मन में चल रहे अंतर्द्वंद्व का तूफ़ान जीवन को प्रयोगशाला बना देता। सुबह उठकर रसोईघर से लेकर रात सोने तक स्वरा तूफ़ान को दबाने के लिए उस प्रयोगशाला में नए–नए प्रयोग करती। दिल और दिमाग़ की लड़ाई में दिमाग हारता हुआ-सा लगता लेकिन दिमाग का जीतना ही विवाह की भित्ति को गिरने से बचा सकता था। चालीस-बयालीस की उम्र में प्रेम दिल से नहीं दिमाग़ से करना चाहिए। स्वरा ने दिमाग़ को स्थिर किया और भरे-पूरे परिवार के बीच ख़ुद को बहकने से बचाने के लिए ख़ुद से ही तर्क करना शुरू किया।

प्रेम कोरी भावुकता नहीं बल्कि यथार्थ के काँटों पर बिछी मनोभावों के स्थिरता की चाह है। कोरी भावुकता कोई सार्थक परिणाम नहीं देती। बिना मंज़िल के राही बन जाना भी प्रेम है किंतु ऐसी राह मात्र पीड़ा के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

लगातार तर्क कुतर्क को जन्म देता और कुतर्क शक्ति को क्षीण कर देता। स्वरा निढाल हो जाती। मन के खेल में मन से मन का मेल न होने पर आलस्य चरम पर पहुँच जाता। वह नीरव को मन से निकाल कर भी नहीं निकाल पाती और तन से झुलसती जाती। वह मन ही मन प्रतिज्ञा करती कि बस, अब और नहीं। नहीं नहीं में वह और आत्मीय बन जाता।

क्या सांसारिक प्रेम में पारलौकिक प्रेम का गोपन एक यूटोपिया नहीं ? यूटोपिया पर बातें करना, सुनना-सुनाना कितना मनभावन होता है, लेकिन यूटोपिया जीना ? जहाँ हवा, पानी, जल सब कुछ समाप्त हो जाता है, मात्र शून्य बचता है। उस शून्य को महसूस करना ही प्रेम है। यह एक यूटोपिया ही तो है। तो क्या यूटोपिया भी भावनाओं में विगलित हो जाता है। चित्त की स्थिरता को सांसारिकता हिला देती है। क्या तन और मन यूटोपिया जैसी

अवधारणा को खारिज कर देते हैं और बदले में संसर्ग चाहने लगते हैं ?

स्वरा सोसाइटी के गार्डन में पगचापों को ज़बरदस्ती दबा मन ही मन संवाद करते हुए टहलती रही। सनसनाती हवाओं का स्पर्श नीरव के हाथों के स्पर्श का सिहरन बन जाता। बादलों की गड़गड़ाहट मन ही मन संवाद में बदल जाता। दोनों के बीच ऐसा कुछ भी तो नहीं हुआ जिससे इतना बँध जाए। फिर मन कैसे एकाकार महसूस करने लगा। विश्वास से प्रेम-विवाह हुआ था, जिसमें चाहत थी, छटपटाहट थी और एक दूसरे के बिना न जी पाने का मनोभाव। अब वह कैसे छिटक कर अलग हो गया। क्या दुबारा प्रेम की संभावनाएँ होती हैं ? पर यह कैसा प्रेम है जिसमें न वैसी चाहत है, न छटपटाहट है और न ही मरने का कोई भाव। प्रेम जीने की चाह जगा देता है। यह चाह एकाकार हो कर अधोमुखी से उर्ध्वमुखी बन जाती है। स्वरा जितनी भीतर है उतनी ही बाहर। कौन है स्वरा ? स्वरा देह है या आत्मा, प्रेम है या वियोग, जीवन है या मृत्यु, धरा है या आसमान, कण है या पूरी सृष्टि !

आसमान बारिश के पैरहन से धरा को ढक लेता है, धरा कहीं गुमसुम सी है, उसमें सिकुड़ कर समा जाना चाहती है। स्वरा घर की बड़ी खिड़की से बाहर पैरहन में सिकुड़ी धरा को अनमनी सी देख रही है। कितने दिन हो गए उसने नीरव से बात नहीं की। देह से परे मन से मन का मिलन एकतरफा होता है जो शायद नीरव को महसूस नहीं होता। न जाने कब से विश्वास बगल में खड़ा यह सब देख रहा था और इंतज़ार कर रहा था कि उसकी तंद्रा टूटे। स्वरा को इस तरह बेआस देख उसने ख़ुद ही उसे गले से लगा लिया। स्वरा की आँखें झरझरा उठीं, "जिसके साथ ज़िंदगी बितानी हो उसे कभी धोखा नहीं देना चाहिए..."।

विश्वास उसके माथे को चूमते हुए उसे शांत करने का प्रयास करने लगा, 'क्या हो गया, सब ठीक तो है?'

'सॉरी'

'किस बात के लिए?'

नैतिकता के चाकू से अंतर्मन को बड़ी ही चुप्पी से चीर दिया जाता है और अनैतिकता का भय मुखौटे को जन्म देता है। आख़िर वह कैसे बताती कि सूरत के जिस स्मार्ट टेक्नो कंपनी में विश्वास मुख्य वित्तीय अधिकारी यानी सी.एफ.ओ. है उसी कंपनी के सेल्स एग्ज़ीक्यूटिव के साथ वह अब भी क्राउन प्लाजा के कमरा नं. 1011 में खिड़कियों के सामने खड़ी है। वह अब भी स्ट्रीट लाइट की मद्धम रोशनी में उसके साथ गार्डन में टहल रही है। मन तन को लाँघ गया है और दूर कहीं आसमान में बादलों की बगपंक्तियों के साथ उड़ रहा है। तन से परे मन का हो जाना विश्वास के साथ छल है या ख़ुद के साथ... यह समझना मुश्किल है। वह रिश्तों की परिधि के अंतर्द्वंद्व की अग्नि में दहकते हुए ऑफ़िस ज्वॉइन करने का निर्णय लेती है। जहाँ उसकी अपनी नौकरी होगी, रिसर्च होगा और वह ख़ुद...।

प्रेम बहता दरिया है, दरिया साहिल को जोड़ता है। लेकिन प्राय: साहिल को जोड़ते हुए भी वह ख़ुद प्यासा रह जाता है। ग्लास में पानी लिए खड़ी शैव्या को देखते हुए नीरव ने सोचा और ग्लास पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया। हाथ शैव्या के हाथों से स्पर्श हुए पर इस स्पर्श के सूनेपन ने स्वरा के हाथों के स्पर्श का एहसास दिला दिया। एक स्पर्श के सहारे पूरी ज़िंदगी गुज़ार देने का मन हो, क्या चातक पक्षी में भी स्वाति नक्षत्र के लिए यही एहसास भरा होगा ?

नीरव एहसासों में खो गया लेकिन नीरव के हाथों का सूनापन शैव्या के आँखों में उतर आया। वह वापस मुड़कर किचन में चली गई। चार सालों से किचन में गुज़रती ज़िंदगी सिर्फ नीरव की ख़ामोश मुस्कराहट के पीछे एक दिन ठठाकर हँस देने की चाह थी। किसी दिन तो वह खुल कर हँसेगा और कहेगा तुमने आज खाना अच्छा बनाया है या आज खाना बहुत बुरा बना है। शिकायतें न करने वाला इंसान क्या सचमुच प्रेम में होता है या परिस्थितियों से पलायन करता हारा हुआ होता है ? यह शैव्या के लिए समझना मुश्किल है। अक्सर ऐसे लोग विवाह में कन्फ्यूज़न पैदा करके रखते हैं, जिससे एक भ्रम बना रहे प्रेम का, आपसी समझदारी का और निभ जाने का। हमेशा एक ही भाव में रहने वाले व्यक्ति से बचकर रहना चाहिए क्योंकि वह मनुष्य होने से वंचित होता है। शैव्या ने सोचा और चाय में डालने के लिए अदरक ज़ोर ज़ोर कूटने लगी। कूटनी छटक कर अलग हो गई और शैव्या हाँफने लगी।

चार साल पहले जब माता-पिता के कहने पर नीरव ने विवाह किया था तब उसके माता-पिता थोड़े आश्वस्त हो गए कि अड़तीस की उम्र में ही सही, विवाह तो किया। तबसे लेकर अब तक नीरव तराज़ू के पलड़े में बैलेन्स बनाने की कोशिश कर रहा है कि कितना पलड़ा झुकेगा तो विवाह और माता-पिता दोनों खुश रह सकेंगे। हाँफते हुए उसने शैव्या को देखा और प्यासी दरिया को पकड़ कर पास की कूर्सी पर बैठा देता है। आज वह पहली बार दरिया के प्यास को समझ पा रहा है और उस खालीपन के जकड़न को भी जिससे शैव्या आज तक जकड़ी हुई है। जैसे स्वरा की एक छुअन उसमें चेतना भर दी हो इसीलिए वह शैव्या को समझने में सक्षम हो गया है। उसने शैव्या के काँपते कंधे पर हाथ रख दिलासा दिया और वहाँ से चला गया।

महीने बीत गए, नीरव स्वरा को भूलने की कोशिश में शैव्या के करीब पहुँचने लगा। स्वरा भूली कहाँ थी वह तो आत्मा का अभिन्न हिस्सा बन गई थी। शैव्या देह थी जिसमें स्वरा की आत्मा प्रवेश करती और छटपटाकर बाहर निकल आती। शैव्या को भी कहाँ पता था कि वह देह भर है उसे तो नीरव में बदलाव महसूस होने लगा था। पहले नीरव मुस्कराकर अपने काम में व्यस्त हो जाता था अब तो वह थोड़ी-बहुत बातें करने लगा है। आख़िर अब नीरव उसका ख़याल रखने लगा है, प्रेम का यह भी तो एक तरीका है। कम बोलने वाले प्रेम को जताने में भी कमी करते हैं।

स्वरा को खुश देख कर नीरव के मन में यह प्रश्न बार-बार कुलबुलाने लगा कि क्या नारी मन को समझने के लिए किसी अन्य नारी का संसर्ग ज़रूरी है ? तीन-चार सालों में वह शैव्या को क्यों नहीं समझ पाया ? उसका खालीपन, उसका दर्द, उसका तनाव या उसके अंदर प्रज्ज्वलित प्रेम, उसकी देह की

भाषा ? क्या वह स्वरा को जानने के बाद शैव्या को जान पा रहा है अथवा शैव्या को जानने के बहाने स्वरा को समझने का प्रयास कर रहा है ? सारे प्रश्न गड्डमड्ड हो गए। इसी चक्कर में उसने अपना फ़ोन अपने से दूर कर दिया था, यदि फ़ोन उठाता भी तो सिर्फ काम के लिए। अचानक से उसके मन में एक कचोट-सी उठी और अपने फ़ोन कॉल, रिकॉर्ड्स तथा मैसेजेस देखने शुरू किया। स्वरा के कुछ कॉल्स और 'प्लीज़ कॉल' के मैसेजेस पड़े थे। वह झट से ऑफ़िस जाने के लिए तैयार हो गया। शैव्या डाइनिंग टेबल पर नाश्ता लगा ही रही थी कि वह उसे देख कर भी अनदेखा कर निकल गया। मोम बनी शैव्या ने बारिश की पहली फुहार से उठी सोंधी मिट्टी की गंध को झूठा महसूस किया और साँसों की तारों में बहती मधुर वायलिन की ध्वनियों की झंकार को अपनी आँखों से टूटते हुए देखा। सामने वाला आपको धोखा बाद में देता है, दरअसल हम ख़ुद को पहले धोखा देते हैं। यह जानते हुए भी कि जिससे आप जुड़ने की कामना से जुड़ रहे हैं वह आपसे नहीं जुड़ा है, यह ख़ुद को धोखा देना ही तो है। शैव्या ने सोचा और गुमसुम हो आई।

ऑफ़िस के तीसरे तल की खिड़की की बालकनी के गमले में लगे फूलों पर कुछ तितलियाँ उड़ते-उड़ते बैठ जातीं, कुछ देर बाद उड़ जातीं और थोड़ी देर घुम-फिर कर पुन: उन फूलों पर बैठ जातीं। उनका मकसद सिर्फ फूलों का रसपान है या किसी चीज़ की तलाश... किस तलाश में भटक रहे हैं हम सब? स्वरा ने तितलियों को ध्यान से देखते हुए सोचा और फ़ोन की घंटी से उसका दिल धक् से हो गया। नीरव का कॉल ! एक एहसास जिसे वह जी रही है और नीरव भूल चुका है, उसका कॉल उठाना क्या ख़ुद को धूमिल करना नहीं है ? वह सोचती रही फ़ोन की घंटी बजनी बंद हो गई। उसने फ़ोन में नीरव का नाम देखा और सोच में पड़ गई कि क्या अपनी साँसों को भूल कर भी भूला जा सकता है ? उसने नीरव को कॉल बैक किया और दोनों ने सीसीडी में मिलने का प्लॉन बनाया।

बादलों ने आसमान में तहलका मचा रखा था लेकिन बूँदें छलकने को तैयार न थी। नीरव बेहद उत्साह में एक घंटा पहले ही अपनी कंपनी के सामने वाले सीसीडी में पानी का बॉटल ऑर्डर कर बैठ गया। वह जानता था कि स्वरा को कैपेचिनो बहुत पसंद है आज दोनों मिलकर एक साथ कैपेचीनो पिएँगे और उसके साथ ही आज मन के भँवर में फँसी तितलियों के पंखों के रंगों को सामने रखेंगे और कहेंगे, देखो... यह मेरा रंग है और यह तुम्हारा... और अब दोनों को मिलाकर एक कोलाज बनाते हैं।

ठीक डेढ़ बजे कैपेचीनो ऑर्डर कर दिया। डेढ़ से दो, दो से तीन बज गए। स्वरा नहीं आई। कैपेचीनो सामने पड़ा-पड़ा ठंडा हो गया। आज नीरव अपने हाथ में स्वरा की कहानियों की किताब ले आया था। प्रेमिका की लिखी किताबों का पूरा होना प्रेमी को अधूरा छोड़ देता है। अधूरापन सदियों तक जकड़े रहने की प्यास बढ़ाता है। नीरव ने उदास मन से कैपेचीनो के दोनों कप को सहलाया और बिल पे कर बाहर निकल आया।

आसमान में जैसे काई जम गई हो और आँधी की धुँध में नीरव ने नीले रंग की अस्त-व्यस्त साड़ी में लिपटी एक महिला को पुलिस वैन के पीछे बदहवास भागते हुए देखा। उसकी आँखों में उड़ती हुई धूल समा गई, उसने आँखों को रूमाल से साफ किया और फिर से महिला को ध्यान से देखा – हाँ, वह स्वरा ही है। वह स्वरा की ओर दौड़ पड़ा और लड़खड़ाती स्वरा को अपनी बाँहों में थाम लिया। डोर से कटकर पतंग की भाँति गिरती स्वरा को नीरव के सहारे ने संबल दिया। वह अहक-अहक कर रो पड़ी।

विश्वास कंपनी में हुए आर्थिक गबन के आरोप में अरेस्ट हो गया था। स्वरा जिस समय नीरव से मिलने सीसीडी पहुँची थी, उसी समय कंपनी के सामने पुलिस की भीड़ देख कर ठिठक गई। धीरे-धीरे आँखों के सामने मंज़र कंपनी का था, फिर अधिकारियों का और उसके बाद एकमात्र विश्वास का। क्या सचमुच विश्वास ऐसा कर सकता था ? यह स्वरा के लिए अविश्वसनीय था। तत्काल अरेस्ट वॉरंट को देख कर वह घबरा गई। वह कंपनी के अधिकारियों से उसे बचाने की गुहार लगाती रही लेकिन किसी ने उसकी एक न सुनी। सवाल यह था कि इतनी बड़ी कंपनी में सी.एफ.ओ. विश्वास अकेले इतना बड़ा गबन कैसे कर सकता था ?

आसमान से छटपटाती बिजली धरा पर गिर पड़ी थी। धरा में उभरी खाई को पाटने के लिए नीरव ने दिन रात एक कर दिया। उसने सच का पता लगाने के लिए कंपनी में तफ़्तीश करना शुरू कर दी।

स्वरा बच्चों की देखभाल करती, उसके बाद ऑफ़िस फिर कोर्ट-कचहरी का चक्कर लगाती। इसी बीच विश्वास से भी मिलने जाना होता। नीरव पग-पग पर स्वरा के साथ खड़ा रहता। विश्वास को ज़मानत दिलाने के लिए नीरव तमाम कोशिशें करता रहा। उसे अपने सूत्रों से पता चला कि इस गबन में बड़े-बड़े अधिकारियों का हाथ है, जिनके दबाव में विश्वास काम करता था। लेकिन जब फँसने की बारी आई तब सबने इल्ज़ाम सी.एफ.ओ. के मत्थे मढ़ दिया और अपने आपको बेदाग साबित कर लिया। हो सकता है जाँच में और छोटे-बड़े अधिकारियों कर्मचारियों के नाम भी सामने आए।

नीरव ने स्वरा को अधिकारियों से जुड़े कुछ तथ्य सौंप दिए, लेकिन विश्वास का नाम नहीं ले पाया। स्वरा मरुस्थल में पानी की कुछ बूँदें देखकर बेहद कृतज्ञ भाव से उसे देखती रही। उसने काँपते होठों से कहा, 'न जाने किन शब्दों में मैं तुम्हारा आभार व्यक्त करूँ'?

'किसी भी शब्द में कर दो' हँसते हुए नीरव ने स्वरा को हल्का महसूस करवाना चाहा।

'काश ! मैं सबको बता सकती कि तुम मेरे लिए क्या हो ?... कभी-कभी मन करता है मैं शहर के हर पत्थर पर तुम्हारा नाम अंकित कर दूँ जो सदियों तक तुम्हारे नि:स्वार्थ प्रेम की गवाही दे सकें...।'

'विवाहेत्तर संबंधों के प्रेमियों के नाम शिलालेखों पर अंकित नहीं होते जनाब' मुस्कराती आँखों से नीरव ने स्वरा को देखते हुए पास में खड़ी ऊँची इमारत की ओर देखा।

'तुम मेरे जीवन का वह पन्ना हो जिसे मैं न तो अपनी ज़िंदगी की डायरी में शामिल कर सकती हूँ और न ही फाड़कर फेंक सकती हूँ'। स्वरा के चेहरे पर एक गहरा विषाद छा गया।

'तो फिर अपने साथ थोड़ा फड़फड़ाने का समय दे दो' वह हँस पड़ा और उसकी हँसी के साथ स्वरा भी स्मित हो आई।

कंपनी के अधिकारियों को नीरव के द्वारा की जा रही व्यक्तिगत तफ़्तीश का आभास हो गया। अब नीरव भी उनके ट्रैप में था और अचानक एक दिन वह विश्वास के बगल वाले बैरक में पाया गया। स्वरा ने अपने हृदय में बलुआई मिट्टी को देखा जिसे कितना ही नम करें सूखा ही लगता है। पर ख़ास बात है कि बलुआई मिट्टी बर्रा कर फटती नहीं वह फफस जाती है, बिखर जाती है। स्वरा भी विश्वास-अविश्वास की नमी में सूख रही थी और बिखर रही थी। नीरव के ख़िलाफ़ पुख्ता सबूत नीरव को दोषी साबित कर रहे थे और दिल सबूत नहीं अपनापन जानता है। दिल दिमाग़ का अतिक्रमण कर सकता है पर दिमाग़ तथ्यों के साथ दिल को मात देता है। तो क्या नीरव...?

कोर्ट में अगली सुनवाई की तारीख आने वाली थी। कई दिनों तक कंपनी के सी.ई.ओ., सी.एम.ओ. से मिलने के लिए भटकने के बाद उसने फैसला किया कि अब सीधे कंपनी के एम.डी. के घर जाएगी। कई अपॉइंटमेंट्स कैंसिल होने के बाद बड़ी मुश्किल से एम.डी. के घर पर मिलने के लिए एक अपॉइंटमेंट मिल पाया।

स्वरा बड़े से हॉल में झक्क सफेद सोफे पर घबराई-सी बैठी हुई थी। करीब आधे घंटे के इंतज़ार के बाद एम.डी. नरेश सक्सेना का आना हुआ, कान तक फैली मुस्कान से नरेश सक्सेना बोल पड़े, "देखिए कोई भी इंसान ब्लैक एंड ह्वाइट नहीं होता। सब ग्रे शेड्स होते हैं"।

'..'

'स्वरा जी, हमारी पूरी संवेदना आपके साथ है। बच्चों को पिता की ज़रूरत तो है ही।'

'जी'

'तो पहले डिसाइड कर लीजिए कि पति को बचाना है या प्रेमी को।'

'मतलब'! स्वरा चौंक गई

(कुछ देर चुप्पी साधने के बाद) 'ख़ैर, आपके पति बेगुनाह हैं। आपके पति ही हमारी कंपनी के लिए ज़्यादा फायदेमंद साबित होंगे। अब निश्चय आपको करना है'।

स्वरा के विश्वास की लड़ियाँ टूटकर बिखर गईं, वह लड़ियों के मोती को जल्दी जल्दी चुनकर फिर से पिरोना चाहती थी लेकिन बिखर जाने के बाद सिमटा तो जा सकता है समेटना आसान नहीं होता। तो क्या विश्वास पर विश्वास एक भूल थी या यह पदाधिकारियों की कोई साजिश है ? स्वरा ने सोचा और फ़ोन पर वकील से विश्वास और नीरव से मिलने के लिए अपॉइंटमेंट लेने के लिए कहा और ख़ुद अपने ऑफ़िस निकल गई।

प्रकृति-प्रदत्त आँधी से बचा जा सकता है लेकिन मन में चल रहे आँधी को दबाना मुश्किल होता है। स्वरा आँधी से बचने के लिए लड़ रही थी, उसी समय विश्वास एक नए आत्मविश्वास के साथ सामने आया, 'कैसी हो और बच्चे कैसे हैं' ?

'ठीक' - स्वरा विश्वास को एकटक देखे जा रही थी, जैसे उसने पहली बार विश्वास को देखा हो।

'क्या हुआ' स्वरा का एकटक देखना विश्वास में भय पैदा कर देता है।

'मैं तुम पर विश्वास कर सकती हूँ न।'

'तुम परेशान न हो। कुछ डॉक्यूमेंट बाकी हैं, फिर मुझे ज़मानत मिल जाएगी। उसके बाद लड़ते रहेंगे केस डरने की कोई बात नहीं।' विश्वास ने उसे विश्वास दिलाया।

वह विश्वास का आत्मविश्वास लेकर चल दी। अपने दोनों मासूम बच्चों की आँखों में अपने पिता के लौटने का विश्वास उसे कचोट रहा था। बच्चों की परवरिश माता-पिता की छाँवों का मेल होता है। दोनों में से किसी एक के कमी का अनुभव जीवन को कुछ संवेदनाओं से वंचित कर सकता है। आख़िर इसे भी तो विश्वास का साथ चाहिए। यदि विश्वास रिहा नहीं हुआ तो... ?

घड़ी ने टन से एक बजने की सूचना दी, स्वरा की नज़रें साफ नीले आसमान की ओर उठीं और नीरव से मिलने चल दी। वह विश्वास से मिलने कई बार आई थी पर नीरव से मिलने पहली बार पहुँची है। नीरव ने विश्वास के गिरफ्तार होने के बाद उसका नि:स्वार्थ भाव से साथ दिया था उसी नीरव से इतने दिनों तक वह मिलने क्यों नहीं आई ! इसका जवाब ख़ुद भी उसके पास नहीं था। दोनों एक दूसरे की ख़ामोशी को पी रहे थे। मिलने का समय बीत गया, अंतत: नीरव ने चुप्पी तोड़ी, 'तुम चिंता मत करो, विश्वास छूट जाएगा और बेगुनाह भी साबित होगा।'

स्वरा ने धरा को डबडबाई आँखों से देखा और सीता की तरह मन ही मन धरा को फट जाने के लिए कहा। कलयुग में धरा निष्ठुर है या स्वरा सीता नहीं, 'तुमने मुझे 'उसने कहा था' कहानी की सूबेदारनी समझ रखा है क्या ?...' उसने दृढ़ता से कहा और वहाँ से लौट आई।

कोर्ट में अगली सुनवाई से पहले स्वरा वकीलों के साथ मिलकर सबूत इकट्ठे करती रही। उसे भूल गया था कि उसकी कुछ ज़िम्मेदारी नीरव के परिवार के लिए भी बनती हैं। विश्वास के माता-पिता का फ़ोन पर ख़याल रखने वाली स्वरा नीरव के बेहद लाचार माता-पिता को कैसे भूल सकती है ? बिना कुछ सोचे-समझे नीरव के घर की ओर बढ़ गई...

शैव्या की करिखाई आँखें और चेहरे की झुर्रियाँ बेदर्द रतजगे की कहानी सुना रही थीं। नीरव की मित्र के आने खुशी में उसने नीरव के आने की खुशी महसूस की और फिर अचानक से रुँआसी हो आई, 'पता है दीदी, जब-से यह अहमदाबाद से लौटे थे... (लंबी खामोशी)... शादी के चार सालों में पहली बार मुझे लगा कि सचमुच, मैंने अपने पति को पा लिया है। लेकिन देखिए ना...'

'मैंने अपने पति को पा लिया है' यह वाक्य स्वरा के मन को कभी मधुर हिलोरों से भर देता तो कभी टीसती टीस अन्दर तक बेध देता। उसने क्षितिज की ओर देखा और अपने रिश्ते को महसूस किया। तो क्या दोनों का रिश्ता क्षितिज की भाँति है ?

आज कोर्ट में सुनवाई है, ज़मानत की संभावना भी है। स्वरा सुबह की किरणों के जागने से पहले ही घर के सारे काम निपटा कर बाहर लॉन में तथ्य, सत्य और कर्त्तव्य के बीच उलझी टहल रही है। अक्सर सत्य धुँधले में होता है और समाज की सीख के कारण कर्त्तव्य सत्य पर भारी पड़ जाता है। वह उगना चाहती है सत्य की तरह जैसे उग रहा है आसमान में सूरज, 'सुबह की किरणें तुम्हारी ही तो मुस्कराहटें हैं, ये गुलाबी फूल तुम्हारी मुस्कराती गुलाबी आँखें हैं, हवाओं का स्पर्श तुम्हारा आलिंगन है और भौरों का गुँजन तुम्हारी बातें। तुम कितना कम बोलते थे पर कितनी सच्ची हुआ करती थीं तुम्हारी बातें। आज वे सच्ची बातें ही मेरे जीने का आधार हैं। तुम्हारे होने का एहसास ही मेरे जीने का सम्बल हैं।... आज न जाने क्या फैसला होगा, तुम कहाँ होगे और मैं कहाँ ? पर इतना जानती हूँ कि हम होंगे इसी शून्य में जहाँ न हवा है, न पानी है, न जल है और न कोई रव...।'

'मम्मा... मम्मा, आज डैड घर आ जाएँगे न' की आवाज़ से उसकी तंद्रा टूटी। उसने निरीह भाव से शावकों को अपने पास दौड़ कर आते हुए देखा और आँखों में दुनिया की सारी नमी को सोख उन्हें गले से लगा कर मन ही मन सोचने लगी, 'मैं जानती हूँ हम सबको उन्हीं की ज़रूरत है। हम सब उनसे ही पूरे होते हैं। मैं तुम्हारे पिता को वापस ले आऊँगी, ज़रूर ले आऊँगी।'

शाम में स्वरा अपनी चाभी से घर का दरवाज़ा खोलकर चुपचाप प्रवेश करती है। मन में बहुत हलचल है, उन हलचलों को पार कर वह एक लंबी नींद सोना चाहती है। आज सबसे पहले उसे माँ की याद आई, जिसने अपने पति को परमेश्वर मान उनके हर सही-ग़लत फैसले में साथ दिया था। उसके बाद नानी की याद आई, जिन्होंने नाना की शैया के साथ लगकर प्राण त्याग दिया था। उसने दादी को याद किया जो दादा जी के न रहने पर संतों जैसा जीवन जी थीं। उसके बाद उसने दिन भर में पूरे ब्रह्माण्ड की परिक्रमा किया। ब्रह्माण्ड में वह पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, रति, सीता, राधा, सावित्री सब से एक-एक कर मिली। वह उन सभी मिथकीय माताओं को जवाब देना चाहती थी कि स्वरा में उन्हीं के दैवीय गुण हैं, जिन्होंने सदियों से घुटन के हज़ारों जहरीले घूँट पी कर पवित्र सतित्व की छाप छोड़ी हैं और उन्हीं के पदचिह्नों पर चलकर तमाम औरतें अपने सतित्व का प्रमाण देती आई हैं। वह चलेगी, हाँ लड़ेगी सत्य-असत्य की लड़ाई। लेकिन सवाल उन माताओं से है कि यदि ये माताएँ आज स्वरा की जगह पर होतीं तो कौन-सा रास्ता अपनातीं – सत्य का, असत्य का, धर्म का, नैतिकता का या मात्र मानवीयता का ?

हज़ारों रास्तों से गुज़रते हुए उसने वकील को सारे सबूत सौंप दिए। उन सबूतों के आधार पर ही विश्वास और नीरव में से किसी एक की बेगुनाही साबित होनी थी। उसने उन्हें बता दिया कि आज वह कोर्ट नहीं आ सकेगी। सच तो यह है कि आज के दिन के लिए उसने पहले से ही छुट्टी ले रखी थी, पर आज उसकी हिम्मत नहीं हुई कि वह कोर्ट जा सके। वह सियाराम के मंदिर में बैठकर अपलक पतिव्रता सीता को देखती रही। सीता तो धरती में समा गई थीं फिर राम के साथ उन्हें खड़ा क्यों किया गया है ? क्या वह राम के साथ खड़े होने पर ही वंदनीय मानी जाएँगी ? स्वरा को घुटन होने लगी और वह मंदिर से बाहर आकर धरा की गोद में बिछी मखमली घास पर निढाल हो गई।

कोर्ट में फैसले के बाद वकील का फ़ोन पर कुछ वाक्य सुनकर वह उठी और सीधे घर चल दी। दोनों बच्चे टी.वी. पर कोर्ट का दृश्य बड़े ध्यान से देख रहे थे, 'सबूतों और गवाहों के आधार पर रामलाल को 'बाइज़्ज़त' बरी किया जाता है'।

माँ की आहट से दोनों बच्चे आकर गले लग जाते हैं, 'मम्मा, डैड भी क्या बाइज़्ज़त बरी हो गए ?'

स्वरा ने दोनों को अपने में ज़ोर से भींच लिया।

'बोलो न मम्मा, कौन बरी हुआ।'

'जो बेगुनाह है, वही 'बाइज़्ज़त' बरी हुआ।' स्वरा की पलकों की कोटर चू पड़ी।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 21 मार्च 2022

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

रुके क़दम, यूँ आगे बढ़ें...

उषा राजे सक्सेना

उषा राजे सक्सेना
54 Hill Rd, Mitcham, CR4 2HQ, UK
मोबाईल– +44 7448401890
ईमेल– Usharajesaxena@gmail.com

स्वरांगी, अभी कमरे में पहुँची ही थी कि आदित्य का टैक्स्ट आ गया कि वह कल सुबह भोपाल पहुँच रहा है। स्वरांगी को आश्चर्य हुआ....बहुत कोशिश करने के बावजूद यूँ भी उसे एक सप्ताह से अधिक छुट्टी नहीं मिल पाई थी। अत: उसने परिवार में किसी को भी अपने आने की भनक नहीं लगने दी थी। आदित्य को कैसे पता चला? वह चकित थी।

रात काफ़ी हो चुकी थी अत: उसने सोचा, सोने से पहले लैप-टॉप चार्ज करने को लगा दूँ।

'अरे! मैं दो पिनों वाला प्लग तो रखना ही भूल गई। ख़ैर.. अब तो रात काफी हो चुकी है।' उसने सोचा, 'अब कल सुबह देखेगी...' अत: सुबह आठ बजे उठते ही स्वागत कक्ष में आकर काउंटर पर बैठे कर्मचारी से 'टू-पिन प्लग' लेकर मुड़ी ही थी-'बुआ जी, प्रणाम।' कहते हुए आदित्य ने झुक कर स्वरांगी के दोनों पैरों को हाथों से स्पर्श किया। आदित्य के हाथ उसे ज़रा ठंडे और नम लगे थे।

'अकेले ही आए हो या और कोई है तुम्हारे साथ।' स्वरांगी ने प्रेम से उसे दोनों हाथों से उठा कर गहरा आलिंगन देते हुए कहा 'कौन साथ होगा, बुआ जी' उसके कहने में सीलन सी थी।

'पापा अपने सांसदों के साथ व्यस्त, एक मोटी रकम हर महीने मेरे खाते में डाल देते हैं। मम्मी अपने सामाजिक संगठनों में व्यस्त, हर हफ़्ते खाने-पीने का सामान बहादुर के हाथ भिजवा देती हैं। मुनिया से कभी-कभी लैंड-लाइन पर जब-तब बात हो जाती है। नौकर-चाकरों की वजह से फ़ोन पर ताला लगा रहता है।' वह माता-पिता के व्यवहार से खिन्न, कुछ अनमने स्वर में बोला।

'मैं उनकी बात नहीं कर रही हूँ पगले! तेरी गर्ल-फ्रैंड की बात कर रही हूँ। तू इस क़दर ब्राइट है। इतना प्यारा...टॉम क्रूज़ की तरह हैंडसम। ऑल इंडिया प्री मेडिकल टैस्ट में दूसरे नम्बर पर आया था। आजकल तो ऐसे लड़कों को लड़कियाँ झट से लपक लेती हैं....फिर ऐसे चिपकी रहती हैं कि कहीं ज़रा इधर-उधर हुईं नहीं कि कहीं और ना उड़ा ले जाए उसे।' वह हँसी तो आदित्य भी हँस पड़ा पर उसकी हँसी में वह खनक नहीं थी जो एक ज़िंदा दिल युवा की हँसी में होती है। कुछ तो बात है? स्वरांगी ने उसके चेहरे को ध्यान से देखा।

होटल के स्वागत कक्ष में बहुत से लोग बैठे हुए ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे थे। लोगों का आना-जाना लगा हुआ था। बेल-ब्वॉय अतिथियों का सामान ट्रॉली पर रख कर उन्हें कमरे में ले जाने में व्यस्त थे। अत: स्वरांगी ने सायास कहा, 'चल, कमरे में चलते हैं यहाँ आधी बात सुनाई देती है आधी नहीं। वहीं ब्रेक-फ़ास्ट मँगवा लेते है.. बता तुझे कैसे पता चला कि मैं आ रही हूँ?'

ऐलिवेटर में ऊपर जाते हुए आदित्य ने उसे बताया, 'बुआ जी, मैंने तो हिन्दी के अख़बार में, सम्मानित साहित्यकारों की सूची में आपका नाम और फ़ोटो देखा तो प्रबंधकों को फ़ोन किया। प्रबंधकों ने बताया कि विदेशों से आए सभी प्रतिनिधियों के ठहरने का प्रबंध पलाश होटल में किया गया है।'

'तू तो बड़ा होशियार है रे! कैसे पकड़ लिया बुआ को..।' वह फिर हँसी पर आदित्य नहीं हँसा।

'होशियार वगैरह कुछ नहीं बुआ जी। मैं तो बिहारी हूँ, ना?' उसने विद्रूप हँसी के साथ कहा।

'क्या? मैं समझ नहीं पाई....।' स्वरांगी ने चाय का कप और उपमा की प्लेट उसकी ओर सरकाते हुए आश्चर्य और कौतूहल से उसके चेहरे पर एक गहरी दृष्टि डालते हुए पूछा।

'हिन्दी का अख़बार पढ़े बिना चैन जो नहीं पड़ता है। इसलिए आप के आने की ख़बर मिल गई। पूरे छात्रावास में हिन्दी का अख़बार सिर्फ़ मेरे कमरे में आता है। मज़ाक भी ख़ूब उड़ता है। बिहारी बाबू का...।'

'अरे! तू यू.पी. का है बिहार का नहीं है। तू उन्हें बताता क्यों नहीं है?'

'किस-किस को बताऊँ बुआ जी, कोई सुने तब तो। उनके लिए तो वह सब लोग जो अन्य

प्रांतों से आए हुए होते हैं वे सब बिहारी होते हैं।' उसकी आवाज़ में गहरी उदासी और निराशा पुती हुई थी।

'ओह! यहाँ अपने देश में भी वही नस्ल-भेद....रंग-भेद और लिंग-भेद, यह सब तो मैं वैसे भी ख़ूब भोग ही चुकी हूँ।' कहते हुए स्वरांगी की आँखों में अपने विवाह के प्रसंग को लेकर आज-तक के देशी-और विदेशी रंग-भेद, नस्ल-भेद, लिंग-भेद की व्यक्तिगत और सामाजिक घटनाएँ कौंध गईं। लड़के वाले उसे देखने आए और पसंद कर गए, उसकी दो वर्ष छोटी गोरी-चिट्टी बहन को, जिसने अभी इसी वर्ष बी.ए. प्रथम वर्ष में प्रवेश लिया था।

अपनी इस छोटी बहन शिवांगी को वह कितना प्यार करती थी किंतु उसने अपने विवाह का एक बार भी विरोध नहीं किया, न ही मम्मी-पापा ने। इस बात से उसका दिल कुछ ऐसा टूटा कि बहुत दिनों तक अवसाद में रही। हर वक़्त हीन-भाव और अपने लोगों की स्वार्थी प्रवृत्तियों और छल का अहसास होता रहता था। उसका भरोसा सब पर से उठ गया था।

दिन में तो हर किसी के सामने स्वाभिमान के कारण हँसती और खिलखिलाती कहती, 'मैं तो पहले ही कह रही थी कि मैं आगे पढ़ना चाहती हूँ। मुझे चूल्हे-चौके और बच्चों की लंगोटियाँ धोने का कोई शौक़ नहीं है।' और रात को दु:ख-स्वप्नों से पीड़ित उठ-उठ कर बैठ जाती और गहरी साँसें भरती हुई आँसुओं से तकिया भिगोती और घर छोड़ कर कहीं भाग जाने की सोचती।

फिर एक दिन जब घर के सारे सदस्य आँगन में बैठे शिवांगी का दहेज सजा रहे थे तो वह देहरी पर खड़ी हो, दोनों हाथ कमर पर रख कर ज़ोरदार शब्दों में सब को सुना आई कि वह साहित्य में एम.ए. करेगी, उसके पश्चात् शोध करेगी और फिर अपनी योग्यता के बल पर विदेश जाएगी' और वह पलट कर दनदनाती हुई, डबडबाई आँखों के साथ कमरे से बाहर आ गई। पीछे से सुना पापा कह रहे थे। उसे समय दो सुनंदा, जितना चाहेगी पढ़ाऊँगा। स्वरांगी मुझे, शिवांगी से अधिक प्रिय है....

सुना तो दिया सब को उसने पर जब कभी वह अकेली होती तो अपमान का दंश उसके बरदाश्त के बाहर हो जाता। ऐसे में वह मोटे-मोटे आँसू बहाती, नाक पर तकिया रख कर दबाने लगती। कई बार उसने पंखे से लटक जाने की या टॉयलेट साफ करने वाले ब्लीच को पी जाने की भी सोची। एक दिन वह चूहे की दवा भी ले आई और गद्दे के नीचे लाकर छिपा दिया। अजीब सी मनोदशा हो गई थी। कभी ख़ूब उत्साह में होती और दिन-रात पढ़ाई करती तो कभी निराशा के गहन गर्त में गिरती हुई रात-रात भर रोती और कराहती।

बी.ए. की परीक्षा का परिणाम निकला तो जाने कैसे मेरिट-लिस्ट में थी। उसे यक़ीन ही नहीं हो रहा था फिर सोचा, शायद पहले का पढ़ा-लिखा और परिश्रम से किया 'सेशनल-वर्क के प्रॉजेक्ट' वगैरह काम आ गए होंगे। सब ने उसकी ख़ूब-ख़ूब सराहना की।

अचानक उसके पंख निकल आए, वह उड़ने लगी। तभी पापा ने हिन्दी साहित्य और दर्शनशास्त्र में उसकी विशेष रुचि जानते हुए भी उसका प्रवेश अंग्रेज़ी साहित्य में करा दिया और साथ में धमकी भी दे दी कि अगर उसे आगे पढ़ना है तो अंग्रेज़ी में मास्टर्स करे अन्यथा घर बैठे। वह भी क्या करती? रो-पीट कर किसी तरह उसने दूसरी श्रेणी में मास्टर्स कर लिया। अंग्रेज़ी में मास्टर्स करने के बाद भी उसका हिन्दी साहित्य के प्रति प्रेम समाप्त नहीं हुआ।

इसी बीच उसने 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में अपराजिता के नाम से 'एक काली लड़की' के शीर्षक से धारावाहिक उपन्यास लिख कर अपनी हीन-ग्रंथियों को खोलना शुरू कर दिया, जिससे उसका मन हलका होने लगा। पाठकों में उसकी लोकप्रियता बढ़ने लगी। धीरे-धीरे वह सहज होती चली गई। अंग्रेज़ी की प्राध्यापिका होने से पास-पड़ोस और घर-बाहर उसका मान-सम्मान ऐसा बढ़ा कि उसे अपना काला रंग दिखना बंद हो गया। वह ख़ुद से प्यार करना सीख गई और एक दिन अपनी ख़ूबसूरत देह-यष्टि और बड़ी-बड़ी कजरारी आँखों को दर्पण में देखते हुए उसने ख़ुद से कहा-

'मैं, अपराजिता हूँ। चुनौतियों का सामना करूँगी या विकल्प खोज कर उनसे निपटूँगी। 'आई ऐम अ फ़ाइटर, सो फ़ाइट वन मोर..' उसने ज़ोर से कहा। 'जोदी तोमर डाक शूने कोई ना, आशि तोबे एक्ला चालो रे' उसने इस पंक्ति को बार-बार गुनगुनाया। गुरुदेव का यह गीत, चुनौतियों का सामना करना और विकल्पों की खोजना और उनसे निबटना ये तीन उसके जीवन के गुरुमंत्र बन गए।

'बुआ जी आप तो लंदन चली गई। यहाँ की सांप्रदायिकता, ईर्ष्या-द्वेष और छोटी सोच से आपको निजात मिल गई। मैं तीसरे वर्ष का छात्र हूँ पर पिछले दो वर्षों से मैं एनॉटमी में फ़ेल हो रहा हूँ?'

'हैं..., यह क्या कह रहा है तू? ऐसा कैसे हो सकता है? तू इंटेलिजेन्ट है। परिश्रमी है। मेरिटोरियस है। अपने ट्यूटर से बात की तूने...और सुन...तुझे क्या पता कि तेरी बुआ ने लंदन के जातिवादी और भाव-भेद वाली दुनिया में कैसे-कैसे दंश झेले हैं...और कैसे-कैसे पापड़ बेले हैं।'

जवाब में उसने कहा, 'बुआ जी. ट्यूटर से भी बात की थी। उन्होंने मेरे नोट्स वग़ैरह देखे, फिर कहा, 'तुम थोड़ा और परिश्रम करो। डॉ. माहौर का स्तर बहुत ऊँचा है।'

स्वरांगी को लगा कि आदित्य उसकी पूरी बात न सुन कर केवल वही सुन रहा है जो वह सुनना चाहता है। वह थोड़ी सतर्क हुई।

'फिर....?'

'फिर क्या? शायद आप अभी भी नहीं समझीं बुआ जी। हमारे यहाँ प्रादेशिकता और सांप्रदायिकता इतनी बढ़ गई है कि आए दिन कोई न कोई धरने पर बैठ जाता है। ट्यूटर की बातों से मुझे नहीं लगता है कि वे कुछ करेंगे। वे जानते हैं कि मैं एक ब्रिलियंट स्कॉलर हूँ, स्कॉलरशिप होल्डर हूँ पर मैं स्थानीय नहीं हूँ। यू.पी. का भइय्यन हूँ। ये लोग नहीं चाहते हैं कि उनके प्रदेश के बाहर का कोई छात्र यहाँ के छात्रों ज़्यादा आगे हो।'

आदित्य की बात समझते हुए भी, उसका जवाब न दे कर, स्वरांगी ने सायास प्रश्न किया-

'अच्छा, तो अब तक तो तू अपने यहाँ की स्थानीय भाषा बोलने में माहिर हो गया होगा?'

'क्यों, मैं कुछ समझा नहीं बुआ जी? स्थानीय भाषा बोलने न बोलने की क्या बात आ गई। क्या अंतर पड़ता है। स्थानीय भाषा बोलने न बोलने से...' आदित्य कुछ विभ्रमित सा बोला और फिर थोड़ा खीझते हुए आगे कहा, 'यहाँ मेडिकल कॉलेज में सब अंग्रेज़ी बोलते हैं बुआ जी और मैं सबसे अच्छी अंग्रेज़ी बोलता हूँ। मैंने सारी पढ़ाई अंग्रेज़ी माध्यम से की है।'

स्वरांगी ने आदित्य के चेहरे को ध्यान से देखा, उसे उसके चेहरे में स्थानीय लोगों के प्रति वितृष्णा और अपनी विशिष्ट योग्यता का अहंकार दिखा। ठीक वैसा ही जैसा लंदन में वर्षों पहले उसे अंग्रेज़ों के बीच महसूस होता था। 'ओह!....आदित्य, मन ही मन आदित्य का मनोविश्लेषण करती हुई स्वरांगी समझ गई कि उसका भतीजा ठीक उसकी ही तरह इस समय श्रेष्ठता के दंभ यानी हीन-ग्रंथि से पीड़ित है। उसे महसूस हुआ कि जैसे उसके ही इतिहास की पुनरावृत्ति हो रही है।

फिर भी वह अपने रुष्ट से भतीजे के संपूर्ण मनोविज्ञान को समझने की थोड़ी और कोशिश करते हुए बोली-

'तो फिर क्या बात है, जो तू ट्रॉन्सफर चाहता है। यह मेडिकल कॉलेज तो बहुत प्रसिद्ध और नामी है।'

'बुआ जी बताया तो कि दो सालों से मुझे एनॉटमी में फ़ेल किया जा रहा है। यह मेरे इंटेलिजेन्स और योग्यता का अपमान है। मेरा एनॉटमी का टीचर जान-बूझ कर मेरे आत्म-सम्मान को तोड़ रहा है। मेरे साथी छात्र मेरा मज़ाक उड़ा रहे हैं कि मैंने रिश्वत देकर योग्यता प्राप्त की है।' वह खीझा हुआ सा बोला।

'ओह माई गॉड' अपना सिर दोनों हाथों से पकड़ कर स्वरांगी दु:खी स्वर में बोली-

'मुझे तुझसे पूरी सहानुभूति है, मेरे बच्चे। मुझसे अधिक तेरी पीड़ा और कौन समझ सकता है? सोच, मैं स्वयं इस स्थिति से गुज़र चुकी हूँ। हम दोनों मिल कर इस समस्या का निदान खोज सकते हैं।'

''कोई निदान नहीं है, बुआ जी। डैडी का इतना रसूख है, इतनी जान पहचान है। बस फ़ोन उठा कर कहने भर की देर है। कितनी बार कहा है कि वे मेरा ट्रॉन्सफर कानपुर, वाराणसी, लखनऊ, गोरखपुर कहीं भी करा दें। पर वे सुनते ही नहीं है।' आगे उसने कुछ सोचते हुए कहा-

'आप केवल पापा को समझा दें बुआ जी कि मेरा ट्रॉन्सफर यू.पी. के किसी भी मेडिकल कॉलेज में करवा दें। बस फिर सब ठीक हो जाएगा। नहीं तो....' उसकी आवाज़ में तेज़ निराशा और अवसाद के साथ एक धमकी भी थी। किसे और क्या धमकी दे रहा था वह! स्वरांगी सिहर उठी।

लड़का ज़िद्दी और बिगड़ा हुआ है। संभवत: वह आत्म-घात की अवस्था से बहुत दूर नहीं है। भाई भी पापा की तरह ही स्वाभिमानी हैं...लड़के की इस मामले में कोई मदद नहीं करेंगे। वे अपने मान-सम्मान के प्रति बहुत सावधान रहते हैं। वह समझ तो गई कि लड़का आहत है। उसके अहम को गहरी चोट लगी है। वह अंदर ही अंदर तिलमिला रहा है। यह चोट क्यों लगी है? इसका कारण वह समझ नहीं पा रहा है। यह श्रेष्ठता का बोध, यह दंभ है जो उसे अपने साथियों से दूर, एनॉटमी लेक्चरर तथा ट्यूटर का अप्रिय बना रहा है। इस बात को न समझ पाने के कारण उसके मन में भयानक द्वंद्व उठ रहा है और वह पलायन की राह पर चल पड़ा है। उसे याद आया उसके साथ भी बिल्कुल ऐसा ही हुआ था परंतु उसके पास उसका मित्र जेम्स था जिसने ठीक समय पर उसे सही परामर्श दिया था।

आदित्य को एक अच्छे संवेदनशील परामर्शदाता यानी काउंसलर की आवश्यकता है। काश! जेम्स इस समय उसके साथ यहाँ होता।

स्वरांगी, आदित्य की बातें ध्यान से सुनते हुए सोच रही थी कि वह स्वयं भी तो अपने पॉलिटेकनीक के विद्यार्थियों की बीच-बीच में छोटी-मोटी काउंसलिंग करती रहती है। तो क्या वह आदित्य को स्वयं अपने जीवन के तमाम द्वंद्वों, संघर्षों और अवसाद के क्षणों का खुलासा करते हुए, जीवन की सच्चाइयों पर परामर्श नहीं दे सकती है? बहरहाल कोशिश तो वह कर ही सकती है कि पलायन करने से समस्याएँ नहीं सुलझतीं हैं। अत: मन ही मन उसके मन:स्थिति और विषय परिवर्तन के बारे में सोचते हुए उसने आदित्य से कहा-

'चल अच्छा, अब तू नहा-धोकर तैयार हो जा। बाहर चल कर खाना खाते हैं, फिर कहीं पार्क वगैरह में बैठ कर बातें करते हैं।

अच्छा सुन, परसों दोपहर के सत्र में मेरा और मेरे अन्य मित्रों का प्रवासी भारतीयों की पहली पीढ़ी के अनुभवों पर आधारित –

'संवेदना के विविध संदर्भ' का सत्र है। उन्हें सुनना, शायद तुझे अच्छा लगे....।'

'तू चलेगा न?' स्वरांगी ने पूछा।

'इसीलिए तो आया हूँ बुआ जी कि कुछ अलग सा दिन बिताऊँ। सच बुआ जी बहुत थक गया हूँ अपने जीवन से, ख़ुद से लड़ते-लड़ते.....।'

'अरे! अभी तो तेरा जीवन शुरू भी नहीं हुआ है पगले और तू थक गया है। तूने मेरे बारे में दूसरों से बहुत-कुछ सुना होगा। आज मैं तुझे पूरी निष्ठा से अपने जीवन की सारी सच्चाइयाँ उधेड़ते हुए अपने संघर्षों, दुविधाओं और ग्रंथियों के बारे बताऊँगी फिर भी अगर तू कहेगा तो तेरे ख़ातिर मैं शाम को भाई से बात करूँगी।'

'ठीक है बुआ जी, नाऊ आई ऐम रादर गेटिंग अ बिट बेटर....'

'अच्छा चल, इसी बात पर इंटरनेट पर कोई अच्छी सी खाने की जगह खोज, जहाँ बाग-बगीचा भी हो....।' अभी वह अपना वाक्य पूरा कर ही रही थी कि आदित्य बोल पड़ा....

'मिल गया गया, बुआ जी। एवरग्रीन गार्डन रेस्त्रां- तालाब के किनारे, रंग-बिरंगे फूलों से लदा हुआ। बिलकुल आपकी पसंद का...।' उसके चेहरे पर आई हलकी सी दमक को स्वरागी ने नोट किया, उसे आशा की पहली किरण झलकी....

'मैं जल्दी से शॉवर ले कर आपको लंच पर ले चलता हूँ, बुआ जी।' स्वरांगी, आदित्य के चेहरे पर आए बदलते मनोभावों को गहराई

से देख रही थी....

'अच्छा, तू तो नहा-धो कर तैयार हो जाएगा पर क्या तू मुझे हाउस-कोट में लंच खिलाने ले जाएगा.....' स्वरांगी हँसी, आदित्य भी हँसा, इस बार उसकी हँसी कुछ और खुली हुई थी।

'अरे! नहीं, बुआ जी। पहले आप नहा लें....' उसने कहा।

'नहीं..नहीं, तू आराम से नहा। मैंने कल रात शॉवर लिया था। तेरे बाद मैं भी हल्का सा शॉवर फटाफट मार लूँगी।'

'फटाफट शॉवर मार लूँगी' कहते हुए, आदित्य ठठा कर हँसा यह 'फटाफट शॉवर मारने' वाला मुहावरा, मैंने पहली बार सुना है, बुआ जी। इसलिए हँसी आ गई।' वह थोड़ा झेंपते हुए बोला।

'यह जेम्स की भाषा है?'

'यह जेम्स कौन है बुआ जी?'

'बताऊँगी... लँच पर चल रहे हैं ना... अपने पास सारा दिन है। कितने बजे का समय दिया है?'

'एक बजे टैक्सी आएगी, अभी तो सिर्फ गयारह बजे है....तो फिर मैं जल्दी से शॉवर मार लूँ....।' दोनों देर तक 'शॉवर मार लूँ' के मुहावरे पर हो...हो करके हँसते रहें। स्वरांगी आदित्य में आ रहे बदलाव से आशान्वित हो रही थी।

आदित्य शॉवर लेते हुए कोई गीत गुनगुना रहा था। स्वरांगी को एकदम अपना बीस वर्ष पूर्व का गुनगुनाना याद आ गया.... उसकी काउंसलिंग काम कर रही है, सोच कर उसे थोड़ी और आश्वस्ति मिली।

ठीक समय पर टैक्सी उन्हें एवरग्रीन रेस्त्रां लेकर आ गई। उन्हें रेस्त्रां का परिवेश और वातावरण दोनों ही मनमोहक और आकर्षक लगें। जैसा नाम, बिलकुल उसके अनुरूप चारों तरफ़ हरियाली और क्यारियों में खिले-खिले रंग-बिरंगे फूल।

पूर्व और पश्चिम का एक ख़ूबसूरत समन्वय। अभी दोनों स्वागत-कक्ष में पहुँचे ही थे कि एक स्मार्ट से युवक ने अधखिले गुलाब की डंडी देकर उनका स्वागत किया और पूछा कि वे लोग कहाँ बैठना चाहेंगे? आदित्य ने स्वरागीं की ओर देखते हुए कहा, 'ये हमारी मेहमान है, स्वरांगी वात्सायायन, लंदन से एक कॉनफ्रेंस में भाग लेने आईं हैं।'

'जी, फिर तो आप हमारी भी अतिथि हैं। आप संभवत: पिछले दो महीने से चलने वाले 'साहित्य कला महोत्सव' में आई हैं।' युवक ने स्वरांगी और आदित्य की ओर देखते हुए पूछा।

'जी, आप का अनुमान एकदम सही है।' धन्यवाद देते हुए स्वरांगी ने प्रशंसात्मक दृष्टि से युवक को देखते हुए कहा, 'हम बाहर बगीचे में शांत और खुली जगह में चार-पाँच घंटे, टुकड़े-टुकड़े में आराम से भोजन करते हुए बातें करना चाहते हैं। जहाँ थोड़ा एकांत, बहुत अधिक शोर और तेज़ संगीत न हो...।' स्वारांगी ने कहा।

'आइए...' एक परिचारिका उन्हें गोल्फ़-कार्ट से तालाब के किनारे बने 20-20 मीटर की दूरी पर सुसज्जित ख़ूबसूरत ग़ज़ीबों में से एक में आरामदेह कुर्सी पर बैठाते हुए उनके टेबल पर इलेक्ट्रॉनिक मेन्यू रखते हुए कहा-

'आप अपना मेन्यू इस पर टैप कर दें। समय-समय पर हम आपको वाइन, जूस, स्नैक्स, भोजन, कॉफ़ी और लिक्योर आदि बिना किसी व्यवधान मेज़ पर देते रहेंगे।' अभी वह अपनी बात समाप्त कर ही रही थी कि इतने में एक वेटर मेज़ पर शैम्पेन की बोतल और लंबे शैम्पेन गिलास के साथ भुने हुए काजू और बादाम रख गया-

'यह मैनेजर की ओर से आपके अच्छे स्वास्थ्य के लिए एक छोटी सी भेंट। आपका दिन सार्थक और सुहाना हो।' कहते हुए वह मुस्कराई और उनकी स्वीकृति पर उसने उनके गिलास में शैम्पेन डाला फिर दोनों को शुभ-दिन कहते हुए अन्य अतिथियों को आतिथ्य देने चली गई।

शैम्पेन के गिलास को हल्के से टकराते हुए दोनों ने चीयर्स किया फिर एक-दो सिप लेने के बाद आदित्य सहज उत्सुकता के साथ कुछ आनंदित स्वर में बोला, 'हाँ, तो बुआ जी अब बताएँ न जेम्स कौन है?'

स्वरांगी मुस्करा पड़ी, 'अभिव्यक्त करना ज़रा मुश्किल है, आदित्य.... वह मेरा ऐसा दोस्त है जो मेरी एक-एक भंगिमा को पहचानता है, मेरा मित्र, मेरा परामर्शदाता, मेरा पार्टनर है।'

'वह कैसे? आप उनसे मिली कैसे?'

'सन् उन्नीस सौ पचहत्तर की बात है, आदि। मैं मणिपुर विश्वविद्यालय के एक सेमिनार में पेपर पढ़ने आई हुई थी और वह लंदन से मणिपुर मेडिकल इन्स्टीट्यूट में 'छात्रों में बढ़ता अवसाद और उनके लक्षण' विषय पर बीज व्याख्यान देने के लिए आया हुआ था। हम दोनों एक ही अतिथिगृह में आमने-सामने के कमरे में ठहरे हुए थे।'

'आते-जाते 'हेलो, गुड-मॉरनिंग, हैव अ गुड-डे आदि कहते-कहते हम शाम के भोजन पर मिलने लगे, फिर धीरे-धीरे आपस में बात-चीत शुरू हो गई। हम दोनों ने मणिपुर के प्रसिद्ध तालाबों और मंदिरों की ख़ूबसूरती को एक साथ देखा और उसे जीया। साथ में सैर करते, संग्रहालय, नृत्य-कला केन्द्र आदि देखते हुए साथ-साथ जीवन के अच्छे-बुरे सभी तरह के अनुभव बाँटते रहे....'

'आदित्य, मुझे उसके भारतीय संस्कृति और इतिहास के ज्ञान पर बहुत आश्चर्य हुआ। उसने बताया कि वह भारत कई बार आ चुका है और भारत की कई भाषाओं में हलकी-फुलकी बात-चीत कर सकता है। उसका कहना है आदित्य, कि कहीं भी अपनी जगह बनाने के लिए वहाँ की भाषा और संस्कृति को जानना और समझना आवश्यक है। जब आप वहाँ की भाषा बोलते हैं तो लोग आपको शीघ्र ही अपना लेते है। स्वरांगी ने इस तथ्य पर थोड़ा ज़ोर डालते हुए कहा-

आदित्य ने बादाम की प्लेट उसकी ओर सरकाते हुए सहज ही कहा, 'बहुत सही कहा उन्होंने इट्स वेरी इंटरेस्टिंग बुआ जी...'. स्वरांगी ने एक बादाम उठाया और फिर उससे खेलते हुए बोली-

'इसी तरह बातों-बातों में हम अपने व्यक्तिगत अनुभव भी बाँटने लगें। एक दिन जेम्स ने अपने माँ-बाप के झगड़ों और उनके तलाक से दु:खित अनुभवों को बाँटते हुए ड्रग्स, कोकीन, कैनाबी, शराबी (अल्कोहलिक) आदि बनने और उससे

उबरने की बात बताई और फिर मैंने उसे अपने काले रंग के होने का दर्द बताते हुए गोरी-चिट्टी शिवांगी की शादी के बीच अवसाद में आत्म-हत्या करने के विचार और फिर उससे उबरकर अपने जीवन में लिए निर्णयों के बारे में बताया। हम दोनों के जीवन में बहुत साम्यता थी। दोनों ही अवसाद से निकले हुए, जुझारू स्वभाव के होने के साथ-साथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता के पक्ष में थे। अत: हम एक दूसरे को पसंद करने लगे..'

'सच बुआ जी, क्या आपने भी आत्महत्या की सोची थी? '

'तो क्या तू समझता है कि तू ही ऐसा सोच सकता है? '

'आपने कैसे 'सस आउट' कर लिया बुआ जी...'

स्वरांगी मुस्कराई, 'आदि, तू अभी इतना स्मार्ट नहीं हुआ है कि तेरी बुआ तेरे अंदर न झाँक सके। बता सच है कि नहीं।'

संकुचित सा आदित्य सिर झुका कर भरे गले से बोला, 'जी, बुआ जी।'

शैम्पेन ख़त्म हो चला था। अत: वेटर ने आ कर उनके उनकी प्लेट में सलाद, क़बाब, कोफ़्ते, चॉप्स आदि रखते हुए उनकी पसंद की वाइन से वाइन-गॉबलेट में भर गया।

एक बार फिर गिलास खनके चीयर्स हुआ.....बुआ जी रुकिए मत.. मैं आप दोनों के जीवन के संदर्भों से अपने लिए जीवन के तमाम पहलुओं की जानकारी बढ़ा रहा हूँ....मेरे अनुभव का दायरा कितना छोटा है....

'पैशन फ्रूट जूस। प्लीज़। ' उसने वेटर की ओर देखते हुए कहा।

'बूआ जी, फिर आपका लंदन जाने का कार्यक्रम कैसे बना?'

'हाँ तो, उन दिनों ब्रिटेन में श्रमिकों की आवश्यकता थी अत: एशियन माईग्रेशन बड़ी तेज़ी से बढ़ रहा था। स्कूल, कॉलेज में शिक्षकों के साथ मेडिकल और अन्य सेवाओं के लिए भी प्रोफेशनल्स की आवश्यकता बढ़ रही थी। माइग्रेशन का कोटा खुला हुआ था। अत: मैंने भी आवेदन पत्र दाख़िल कर दिया साथ ही मैंने जेम्स को भी पत्र लिख दिया कि मैंने शिक्षक कोटे में माइग्रेशन के लिए आवेदन पत्र डाल दिया है। अगले हफ्ते हाई कमीशन में साक्षात्कार है।'

जेम्स बहुत प्रसन्न हुआ। उसने तमाम ज़रूरी हिदायतों के साथ उत्तर देते हुए लिखा अपने हाई स्कूल के सर्टिफिकेट के साथ बर्थ सर्टिफिकेट आदि भी लेती आना। उन दिनों फ़ोन की व्यवस्था अत्यंत शोचनीय थी। अत: हमें चिट्ठियों पर ही आधारित होना पड़ता था।

जब मैं लंदन आई तो वह एयर-पोर्ट पर पीले गुलाब के गुच्छ के साथ खड़ा था। वह मुझे सीधा अपने फ़्लैट पर ले आया। मेरे आने से वह बहुत खुश था।

उसने कहा, 'जब तक मुझे नौकरी नहीं मिल जाती मैं उसके साथ फ़्लैट शेयर कर सकती हूँ और यदि मुझे ठीक न लगे तो वह मेरा बंदोबस्त पास के इंडियन वाई,एम.सीए में भी करा सकता है।'

मैं पिछले कई वर्षों से मित्रों के साथ फ़्लैट शेयर कर ही रही थी। मुझे घर से बाहर रहने फ़्लैट आदि शेयर करने के साधारण नियम वगैरह पता थे फिर भी लंदन आने से पूर्व मैंने ब्रिटेन के जीवन स्तर, अदब- क़ायदे, रीत-रिवाज़ के बारे में 'रफ़ गाइड' नाम की एक पुस्तक में पढ़ लिया था। अत: मैंने कहा, 'मैं फ़्लैट शेयर करूँगी परंतु घर खर्च, किराया, घर के खर्च आदि सब फ़िफ्टी-फ़िफ्टी।' जेम्स राज़ी था।

आदित्य सारी बातें बहुत ध्यान और कौतूहल से सुन रहा था। बीच-बीच में वह स्वरांगी की प्लेट में कुछ-न-कुछ डालता रहता था इस बार स्वरांगी ने प्लेट को हाथ से ढकते हुए आगे कहा, 'बस और नहीं, आदि।'

'फिर बुआ जी, आपको वहाँ जाते ही नौकरी मिल गई! पापा ने बताया था।'

'हाँ आदित्य, वे शुरू-शुरू के दिन थे। लंदन आते ही क्वालिफ़िकेशन वैरिफ़िकेशन के बाद, जेम्स के सही निर्देश के कारण मुझे सहज ही अपनी योग्यता के आधार पर एक पॉलिटेकनीक में प्राध्यापिका की नौकरी मिल गई। मुझे अपने आप पर बहुत गर्व हुआ, गर्व तो कम, घमंड बहुत ज़्यादा हो गया था आदित्य। ब्रिटिश शिक्षण-क्षेत्र में, मैं अपनी स्थानीय साथियों की तुलना में कहीं ज़्यादा 'क्वालिफ़ाइड' थी। अत: मेरा वेतन भी सब से अधिक था। मैं अपने को उन सबसे श्रेष्ठ प्रमाणित करने लिए अपने साथी शिक्षकों से दूरी बना कर रखती थी और उनसे सिर्फ़ काम की बात करती। इधर-उधर की बातें तो उनसे बिल्कुल ही नहीं करती थी।'

आदित्य, एकाग्र हो कर स्वरांगी की बातें सुन रहा था...

'थोड़े ही दिनों बाद मुझे लगा कि मेरे साथी अध्यापक मुझसे बचने का प्रयास कर रहे हैं। वे लोग युवा थे मैं उम्र में उनसे बड़ी थी। मुझे लगा कि वे मुझे वह मान-सम्मान नहीं देते हैं जो मुझे मिलना चाहिए।'

'क्यों बुआ जी?'

'वही तो बता रही हूँ, आदित्य। मुझे बहुत बुरा लगता। मैं अपने देश में बहुत मान-सम्मान या कहूँ कि एक तरह से जी-हुज़ूरी की आदी थी। अत: मैंने मन-ही-मन धारणा बना ली आदित्य कि मेरे साथ के सारे अध्यापक-अध्यापिकाएँ नस्ली हैं, रंग-भेद करने वाले हैं। वे लोग आपस में मुझे ग़ुलाम देश का वासी कह कर अपने आप को श्रेष्ठ प्रमाणित करते रहते है।'

'ओह!' आदित्य की भौंहें वक्र हुई... स्वरांगी ने नोट किया।

'अत: मुझसे कोई आगे बढ़ कर बात नहीं करता है। इसलिए मैं स्टाफ़ रूम में कम जाने लगी। वर्करूम या पुस्तकालय में बैठी अगले दिन के लिए नोट्स तैयार करती या कॉपियाँ जाँचती अथवा पढ़ने-लिखने में अपने आपको व्यस्त रखती थी। मुझे अपने चारों ओर एक षड्यंत्र सा होता दिखाई देता था आदित्य। लगता जैसे लोग मेरे ही बारे में कनबतियाँ करते रहते हैं। अभी तक मेरा कोई मित्र भी नहीं बना था। धीरे-धीरे मैं थकने लगी, मेरा मन उचाट होने लगा।

आदित्य, चकित सा स्वरांगी को देखता रहा जैसे बुआ जी अपरोक्ष रूप से उसकी कहानी उसे ही सुना रही हों पर वह कुछ बोला नहीं, बस चुपचाप सुनता रहा...

'जेम्स, मेरा पार्टनर बहुत दिनों से मेरे स्वभाव में आए बदलाव को देख रहा था कि

उसकी शांत स्वभाव की दोस्त स्वरांगी किसी बात से पीड़ित और उद्वेलित है। वह प्रतीक्षा में था कि मैं स्वयं उससे अपने मनोभावों के बारे में उससे बात करूँ....।'

इसी बीच प्लेट में परसी स्पेगेटी-बोलोनोएज़ पर पामीज़न चीज़ और लाल मिर्च की नन्हीं-नन्हीं पपड़ियों को डालने के बाद काँटे में फँसा कर उसे लपेटते हुए स्वरांगी बोली-

'एक दिन मैंने विचलित मन:स्थिति में जेम्स से कहा कि मैं नौकरी से त्यागपत्र देना चाहती हूँ। यहाँ विभाग के लोग मेरी भारतीय उच्च-योग्यता को नीची नज़र से देखते है। इस पॉलिटेकनीक के लोग रेसिस्ट हैं। वे मेरा मज़ाक उड़ाते हुए आपस में कनबतियाँ करते है।

जेम्स ने मेरी मन:स्थिति को पूरी तरह समझते हुए सहज भाव से कहा-

'जल्दबाज़ी मत करो, स्वरांगी। संभवत: तुम इस नए परिवेश में सहज नहीं हो पा रही हो। यह समस्या इतनी उग्र नहीं है कि उसका समाधान न निकल सके। पिछले दिनों की हमारी आपसी बात-चीत से मुझे ऐसा लग रहा था कि यह समस्या तुम्हारी ख़ुद की बनाई हुई है और तुम इसे पनपने का अवसर दे रही हो....।'

मैं उत्तेजित हो उठी थी-

'क्या बात करते हो जेम्स? यह मेरी समस्या है! तुम भी कहीं यह तो नहीं कह रहे हो कि मैं मंद बुद्धि, पिछड़ी हुई ग़ुलाम जाति की हूँ।'

'नहीं स्वरा, मैं यह सब नहीं कह रहा हूँ। यह तुम कह रही हो। मैं नहीं। मैं, तो तुमसे सिर्फ़ आत्मावलोकन यानी अपने अंदर झाँकने की बात कर रहा हूँ कि तुम स्वयं देखो कि समस्या की जड़ कहाँ है।'

'वही बात है, तुम घुमा-फिरा कर मत कहो। सीधे-सीधे बात करो।'

'ठीक है, अभी तुम उत्तेजित हो प्रिये। तुम जल्दी से शॉवर मारो तब तक मैं काफ़ी बनाता हूँ।' जेम्स ने सहज स्मित हास्य के साथ मेरे कंधों को बाहों में लपेटते हुए फ्रेंच विन्डो से आकाश में फैली लालिमा की लहरें दिखाते हुए बोला-

'देखो स्वरा, शाम ढल रही है। आकाश में लाली उतर आई है जैसे तुम्हारा लाल दुपट्टा लहरा रहा हो.....उस दिन तुमने भी तो नीले सलवार-क़मीज़ पर लाल दुपट्टा गले में डाल रखा था।' पहली मुलाक़ात की ताज़गी और स्मृतियों से मैं सहज ही अनुराग रंजित हो उठी....

और फिर उस शाम जेम्स से बातें करते हुए मुझे स्पष्ट हुआ, आदि कि वास्तव में समस्या मेरी अपनी बनाई हुई थी। इस नए अंग्रेज़ी माहौल से, अंग्रेज़ों के उस बड़े समुदाय से, उनके भाईचारे और उनके आत्म-विश्वास से मैं घबरा उठी थी। अंग्रेज़ों की धीमी आवाज़, उनकी फ़र्राटेदार अंग्रेज़ी, अनजाने मुहावरों का मुझ पर उलटा असर पड़ रहा था, आदित्य। साथ ही उनकी गोरी देह, उनकी भद्रता, अलग मुझे आतंकित कर रही थी। मेरे अंदर एक अजीब सा डर और भय (नर्वसनेस) पैदा होने लगा था। मेरे अंदर बनने वाले रसायन में अवसाद का रिसाव होने लगा था जिसके कारण मैं हीन-ग्रंथि (सुपिरियोरिटी कॉम्प्लेक्स) से ग्रसित होने लगी थी। मेरा अपना व्यवहार धीरे-धीरे श्रेष्ठता के बोध से अकड़ा-सा रहने लगा था। मेरी सहजता पर अवांछित गंभीरता हावी होने लगी थी।

जेम्स को काउंसलिंग में अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ा। मुझे बहुत जल्दी समझ आ गया कि मैं अपने आपको अन्य अध्यापिकाओं से अलग कर, मन ही मन एक ऊँची कुर्सी पर बैठने की कोशिश कर रही हूँ। मुझे समझ में आ गया कि मुझे उनसे मिलकर, दोस्ती का हाथ बढ़ा कर उस समूह का हिस्सा बनना है। पहले मुझे उनके तौर-तरीकों और रुचियों को समझ उनके तल पर आना होगा.... स्वरांगी ने देखा, आदित्य का चेहरा, उसकी आँखें और नाक सुर्ख़ हो रहे थे। वह कई बार स्वरांगी की नज़र बचा कर उन पर टिशू लगा चुका था।

इतिहास की पुनरावृत्ती हो रही है मेरे बच्चे, तू अभिजात्य वातस्यायन परिवार का इकलौता वारिस, फ़िल्मी हीरो सा ख़ूबसूरत AIPMT में तीन सौ प्रतियोगियों में दूसरे नम्बर पर आया बालक, श्रेष्ठता के बोध से ग्रसित है। आदित्य वात्स्यायन, तुझे अपना साधारणीकरण करना होगा। तूने अभी तक लेना ही सीखा है मेरे बेटे, देना नहीं। तुझे यहाँ स्वयं अपना किरदार बनाना होगा। दोस्ती, स्नेह, सौहार्द्र और सामाजिकता का महत्त्व समझना होगा। जहाँ अहंकार और स्वार्थ विलीन होता है वहीं से सद्भावना और इंसानियत की शुरूआत होती है।

स्वरांगी, आदित्य के चेहरे पर आते-जाते भावों को ध्यान पूर्वक देखती जा रही थी। उसके मन-मस्तिष्क और हृदय में उठते ज्वार को शीर्ष पर ले जाना ही उसका चरम प्रयास था। आदित्य के गले में गुठली अटक रही थी। उसकी आँखें बार-बार भर आतीं परंतु वह स्वरांगी की आँखे बचा कर टिशू से सुखा लेता।

तुझे पता है न आदि, चाइना, जापान, रूस और स्पेन जाने से पहले छात्र उस देश की भाषा का क्रैश कोर्स करते है। हर प्रदेश का अपना गौरवपूर्ण इतिहास होता है, बेटे। स्थानीय समाज से जुड़ने के लिए उन्हें उनकी भाषा ही नहीं संस्कृति और संस्कारों को भी आत्मसात् करना होता है। उस प्रदेश के गुरु और शिष्य की परंपरा को समझना होता है। अपनी श्रेष्ठता के बोध में हो सकता है तूने एनॉटोमी के प्रोफ़ेसर का अनादर कर दिया हो....इतनी कम उम्र में तूने इतना कुछ हासिल कर लिया कि तुझसे अपनी सफलता का बोझ सँभल नहीं रहा है। अपनी बुद्धि और योग्यता के आगे तुझे अन्य सभी बौने लगते हैं....।' चुप बैठा आदित्य, हिला नहीं। वह अपने आँसुओं को रोकने की बेहतरीन कोशिश कर रहा था।

इसलिए आदित्य को भावनात्मक सहारा देने के लिए स्वरांगी, उसके बगल वाली कुर्सी पर आ बैठी। उसे अपने दाहिने हाथ के घेरे में लेते हुए, देर तक उसके पीठ को सहलाते हुए उसे सांत्वना देती रही। फिर उसके हाथ में छोटे लिक्योर के गिलास को पकड़ाते हुए बोली, 'चीयर्स टु अ न्यू, वाइज़र ऐन्ड अ सोशेबल आदित्य वात्सायायन....।'

000

जॉन की गिफ़्ट

पुष्पा सक्सेना

अमेरिका का वह पूरा शहर क्रिसमस की रोशनी से जगमगा रहा था। रंग-बिरंगे वस्त्रों में उत्साहित लोग शॉपिंग के लिए निकल पड़े थे। चारों तरफ खुशियाँ बिखरी हुई थीं। सड़कों से ले कर घरों तक पर रंगीन विद्युत झालरें, पेड़ों और झाड़ियों पर रंगीन बल्बों के फूल खिले हुए थे। दूकानों के आकर्षक सेल एक-दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा करते हुए ग्राहकों को आकृष्ट कर रहे थे।

मिस्टर डेविड का दो सौ अस्सी नंबर का घर शहर के बाहरी इलाके में था। शांति प्रिय डेविड को प्रकृति से प्रेम था, शहरी कोलाहल उन्हें अच्छा नहीं लगता था। घर में कार की सुविधा होने के कारण कहीं आना-जाना असुविधाजनक नहीं था। परिवार में पत्नी मारिया, एक पाँच वर्ष की बेटी जेनी और उसका छोटा भाई जॉन था। घर के आसपास एकांत होने के कारण बच्चे कम दिखाई देते थे,पर जेनी और जॉन अपने आप में पूर्ण थे। साथ में खेलते हुए उन्हें कभी किसी और की ज़रूरत ही महसूस नहीं हुई।

डेविड के घर से कुछ दूरी पर रिटायर्ड स्कूल टीचर एलिज़ाबेथ का घर था। अकेली होने के कारण एलिजाबेथ अक्सर डेविड और मारिया के घर आया करती थीं..बच्चे एलिजाबेथ का इंतज़ार करते। एलिज़ाबेथ आंटी उनके लिए खिलौने और चाकलेट लाना कभी नहीं भूलती थीं।

क्रिसमस के उल्लास से डेविड का भी घर अछूता नहीं था। घर में जेनी अपने चार वर्ष के छोटे भाई जॉन के साथ क्रिसमस ट्री पर खिलौने सजा रही थी। जेनी के आदेश पर नन्हा जॉन अपने अनभ्यस्त हाथों से खिलौने लाकर दे रहा था। ग़लती से खिलौना गिर जाने पर उसे जेनी की मीठी झिड़की सुननी पडती थी।

"जॉन, सँभाल कर उठा, तू तो खिलौने तोड़ देगा।"

"सॉरी सिस्टर, प्लीज़ एक्सक्यूज़ मी।" भोले मुख पर भय था।

"इट्स ओके, जॉन।" प्यार से भाई के माथे पर चुम्बन अंकित कर के जेनी बोली। जेनी को अपने छोटे भाई जॉन से बहुत प्यार था। जॉन भी अपनी बहन की हर बात मानता था।

पूरे दिल की मेहनत के बाद दोनों भाई-बहनों के चेहरों पर खुशी थी, उनके द्वारा सजाए गए खिलौने कितने सुंदर दिख रहे थे। शाम को पेड़ पर सजाई गई बिजली की झालरों के रंगीन बल्बों ने पेड़ की शोभा बढ़ा दी। क्रिसमस ट्री भी जैसे उनकी खुशी में शामिल था।

दोनों को उनके मम्मी–डैडी ने बताया था क्रिसमस की रात सैंटा- क्लॉज चुपचाप घरों में सोते हुए बच्चों को उनके मनचाहे गिफ्ट देता है। सवेरे अपनी-अपनी मनचाही गिफ्ट्स पाकर बच्चों को सैंटा- क्लॉज के अस्तित्व में विश्वास हो जाना स्वाभाविक ही होता। उन्हें आश्चर्य इस बात का होता, सैंटा कैसे अमेरिका के इतने सारे बच्चों के गिफ्ट्स याद रख पाता है? भोले बच्चे कैसे जान पाते उनके सो जाने के बाद उनके डैडी और मम्मी ही उनके मनचाहे गिफ्ट्स सैंटा के नाम से क्रिसमस ट्री के नीचे रख देते हैं।

"जेनी तू सैंटा- क्लॉज से क्या गिफ्ट माँगेगी?" जॉन बहन की गिफ्ट के बारे में जानने को उत्सुक था।

"मैं तो सैंटा से पिंक कलर की ड्रेस वाली एक टॉकिंग डॉल माँगूँगी।"

"तुम्हारे पास तो इतनी सारी डॉल हैं फिर दूसरी डॉल क्यों चाहिए?"

"तू नहीं समझेगा, बातें करने वाली डॉल मेरी फ्रेंड बन जाएगी। जब जी चाहे उसके साथ बातें करूँगी।"

"जेनी, क्या सैंटा से हम जो भी गिफ्ट माँगेंगे वह हमें देगा? अगर हम सो रहे होंगे तो हमें गिफ्ट कैसे मिलेगी?" जॉन शंकित था।

"अरे बुद्धू, सैंटा रात में चुपचाप आ कर हमारी गिफ्ट इस क्रिसमस ट्री के नीचे रख जाएगा। सवेरे हमें हमारी गिफ्ट मिल जाएगी। वैसे जॉन तू सैंटा से कौन सी गिफ्ट माँगेगा?'

"मुझे तो रॉबिन के वीडियो गेम जैसा नया कार वाला वीडियो- गेम चाहिए। नए वीडियो गेम

पुष्पा सक्सेना
13819 N E 37 th PL, Bellevue, WA 98005, USA
मोबाइल– 425-869-5679
ईमेल– pushpasaxena@hotmail.com

में मेरी रेड कार फर्स्ट आएगी,रॉबिन के वीडियो-गेम में उसकी ब्लू कार फर्स्ट आई थी।"

"जेनी और जॉन डिनर के लिए आओ। डैडी तुम्हारा वेट कर रहे हैं।" बच्चों की माँ मारिया ने आवाज़ दी।

"कम ऑन चिल्ड्रन, जेनी तुमने क्रिसमस ट्री बहुत सुंदर सजाया है।" मिस्टर डेविड ने प्यार से कहा।

"थैंक्स डैडी, पर इसमें जॉन ने भी मेरी बहुत मदद की है।" जेनी की बात सुनते जॉन का चेहरा खिल उठा।

"वेल डन माई सन। इसका मतलब हमारा बेटा अब बड़ा हो गया है।" डेविड ने स्नेह से बेटे को देखा।

"यस डैडी, जॉन मेरा सबसे प्यारा और अच्छा भाई है।" प्यार से जेनी ने भाई की तारीफ़ की।

"बच्चों, तुमने सैंटा से माँगने के लिए अपनी-अपनी गिफ्ट्स तय कर ली हैं?" मम्मी ने जानना चाहा।

"यस मॉम, मैंने डिसाइड कर लिया है, मुझे एक पिंक कलर की ड्रेस वाली टॉकिंग डॉल चाहिए।"

"मॉम मुझे नया वीडियो-गेम चाहिए। मुझे राबिन की ब्लू कार को हराना है।" खुशी से जॉन ने बताया।

मॉम, हम क्रिसमस पार्टी के लिए नई ड्रेस खरीदने कब जाएँगे?" जेनी को नई ड्रेसेज़ खरीदने का शौक था।

"कल लंच के बाद तुम्हारी शॉपिंग के लिए चलेंगे। अब डिनर के बाद जल्दी सो जाना। याद रखो, आज नो टीवी वरना सवेरे जल्दी नहीं उठ पाओगे।" मारिया ने प्यार से बच्चों को सलाह दी।

"गुड नाइट डैडी, गुड नाइट मॉम।"

"गुड नाइट मेरे बच्चों।" मारिया और डेविड ने प्यार से कहा।

जेनी और जॉन खुशी-खुशी अपने कमरे में अपनी-अपनी बेड पर लेट कर कल के सपनों में खो गए।

दूसरे दिन जेनी और जॉन मॉम के जगाए बिना ख़ुद ही जल्दी जाग गए। तैयार होने के लिए दोनों ने देर नहीं की। अचानक खिड़की से बाहर देखते ही जॉन खुशी से चिल्लाया-

"लुक जेनी, कल रात स्नो फाल हुआ है।"

"वाह, मज़ा आ गया। इस बार व्हाइट क्रिसमस होगी।" जेनी ने खुशी में साथ दिया।

"स्नो बॉल से खेलने में ख़ूब मज़ा आएगा। हम स्नो मैन भी बनाएँगे।" जॉन उत्साहित था।

"कमाल है, आज तुम दोनों ख़ुद ही इतनी जल्दी तैयार हो गए वरना स्कूल जाने के दिन तुम्हें उठाना मुश्किल होता है। आओ ब्रेकफास्ट तैयार है।" बच्चों को तैयार देख मारिया ने कहा।

"यस मॉम, आज हमें शॉपिंग के लिए जो जाना है। देर से जाने पर सारी अच्छी ड्रेसेज़ ख़त्म हो जाएँगी।"

जेनी ने जल्दी उठने का कारण बताया।

"ओके, पहले अपने डैडी को तो तैयार हो जाने दो वरना कार कौन ड्राइव करेगा?"

"सॉरी बच्चों, आज आफ़्टरनून में भारी तूफ़ान आने की वार्निंग है, हम शॉपिंग के लिए आज नहीं कल चलेंगे।" डेविड ने आते ही बच्चों के उत्साह पर छींटे डाल दिए।

"ओह नो डैडी, तूफ़ान और स्नो फॉल तो यहाँ आते ही रहते हैं। हम कितनी देर से तैयार हैं। प्लीज़ मॉम आप डैडी से कहिए न हमें आज ही जाना है।" जेनी ने ज़िद की।

"मॉम, मुझे अपना वीडियो गेम चाहिए, प्लीज़ डैडी हमें जाना है।" नन्हें जॉन ने भी जेनी का साथ दिया।

"बच्चे बड़ी देर से जाने को तैयार हैं, मौसम ख़राब होने के पहले हम जल्दी लौट आएँगे। आज नहीं जाने से ये निराश हो जाएँगे।" मारिया ने बच्चों के मायूस चेहरों को देख उनका पक्ष लिया।

"ठीक है, पर शॉपिंग में देर नहीं करनी है। मारिया, तुम भी शॉपिंग के वक्त बच्चों के साथ वक्त भूल जाती हो।" डेविड ने पत्नी से कहा।

"परेशान न हों, हम शॉपिंग जल्दी ख़त्म कर लेंगे। पहले ब्रेकफास्ट तो लीजिए।" मारिया ने विश्वास दिलाया।

"याद रखना, हम एक बजे के पहले वापिस आ जाएँगे। घर लौटने में कम से कम डेढ़-दो घंटे लग जाते हैं।" डेविड ने चेतावनी सी दी।

बाहर जाने के लिए बच्चों ने जल्दी-जल्दी अपना ब्रेकफास्ट ख़त्म कर लिया।

शॉपिंग मॉल की शोभा ही निराली थी। दुकानों की सजावट देखते ही बनती थी। हर शॉप पर सेल की धूम थी। बच्चे तो बच्चे बड़े भी बच्चे बन गए थे। बच्चों की दूकानें विशेष रूप से सजाई गई थीं। बच्चों की चलती तो वे पूरी दूकान खरीद लेते। रंगीन रोशनी में तरह-तरह के खेल बच्चों को अपनी तरफ आकृष्ट कर रहे थे। उनके लिए तो वो स्वर्ग का नज़ारा था। काश वे हमेशा उसी दुनिया में रह पाते।

बड़ी देर खोजने के बाद आख़िर जेनी को अपनी पसंद की ड्रेसेज़ मिल ही गईं। जॉन को अपनी ड्रेस के लिए ज़्यादा परेशानी नहीं हुई, मारिया ने उसके लिए ख़ुद ही ड्रेसें खरीद लीं। अब पार्टी के लिए ड्रेस खरीदने की बारी मारिया की थी। डेविड ने ठीक कहा था, मारिया भी बच्चों से कम नहीं थी। बड़ी मुश्किल से मारिया अपने लिए दो ड्रेसेज़ खरीद सकी।

घड़ी पर नज़र डालते डेविड चौंक गए तूफ़ान आने का जो समय बताया गया था, वह अब पास आ चुका था। बाहर आने पर पेड़ों को तेज़ हवा में झूलते देख डेविड परेशान हो उठे। घर पहुँचने में अब दो की जगह ज़्यादा घंटे लग जाएँगे। लोग तेज़ी से मॉल के बाहर आने लगे थे। अपनी कारें स्टार्ट कर सब घरों की तरफ चल दिए थे। डेविड के चेहरे पर चिंता स्पष्ट थी।

"तुमसे कहा था, समय का ध्यान रखना, पर खरीदारी करते वक्त तुम लोग सब भूल जाते हो।"

"सॉरी, ग़लती हो गई। अब तुम शांति से ड्राइव करो। हवाएँ बहुत तेज़ हो रही हैं। प्रभु ईसू हमारी मदद करे।" मारिया की आवाज़ में भी भय स्पष्ट था।

कुछ ही देर में तूफ़ान ने भयानक रूप धर लिया। तेज़ हवाओं के साथ भारी स्नोफाल से स्थिति और भी गंभीर हो गई थी। तेज़ हवाएँ डेविड की छोटी कार को भी हिला रही थीं। बर्फ से गीली सड़क पर कार फिसल रही थी।

अचानक कार स्किड करके ज़ोरों से एक बड़े पेड़ से टकरा गई। पल भर में प्रलय सा आ गया था। जेनी और जॉन बाहर के नज़ारे देखने खिड़की वाली सीट की तरफ बैठे थे और बीच की खाली सीट पर आज खरीदा हुआ बड़े से टेडी बियर को बैठाया था। एक चीख और सब जैसे शांत हो गया। कार का पीछे का हिस्सा पेड़ से टकरा कर पिचक गया था। खिड़की का शीशा टूट कर अंदर आ गया था। एक बड़ा सा नुकीला काँच धक्के के ज़ोर से सीधा नन्हे जॉन के सिर के आरपार निकल गया था। जेनी के ऊपर भालू के गिर जाने से नुकीले काँच के टुकड़े भालू के शरीर पर ही अटक कर रह गए। उस अचानक धक्के से जेनी का सिर कार की साइड से ज़ोरों से टकरा गया। इतना आघात उसे मूर्छित करने को काफी था। सामने की सीट पर कार को अधिक क्षति नहीं पहुँची थी, पर उस आकस्मिक दुर्घटना के कारण अर्धमूर्छित से मारिया और डेविड कुछ भी न समझ पाने की स्थिति में थे।

भयंकर तूफ़ान के कारण कार से उस रास्ते से गुज़रने वालों का साहस उनकी मदद करने का नहीं हो सका, पर उनमें से कुछ ने फ़ोन द्वारा 911 को दुर्घटना की सूचना दे दी थी। कुछ ही देर में एम्बुलेंस से मेडिकल टीम और कॉप (पुलिस) के सदस्य पहुँच गए। डेविड और मारिया को उनकी अर्ध मूर्छित अवस्था में कार से बाहर निकाल कर जेनी के साथ एम्बुलेंस में ले जाया गया। रक्तरंजित निष्प्राण जॉन को देख सब स्तब्ध रह गए। नन्हें जॉन का प्यारा चेहरा इस बुरी तरह से बिगड़ गया था कि उसे देखने का साहस नहीं हो रहा था।

हॉस्पिटल में सब उनकी हालत देख कर दुखी थे। उस तूफ़ान ने डेविड का घर उजाड़ दिया था। जॉन का चेहरा बिगड़ चुका था, आँखें बाहर आ गई थीं ओंठ, नाक का पता नहीं था। होश आने पर मारिया और डेविड से डॉक्टर ने कहा-

"हमें दु:ख है, आपका बेटा यहाँ पहुँचने के पहले ही यह दुनिया छोड़ गया, अब अपनी बेटी को सँभालिये। भाई को इस हालत में देख उसके दिमाग़ पर बहुत अनिष्टकारी प्रभाव पड़ेगा। उसके लिए कभी ना भूल पाने वाला यह बहुत बड़ा सदमा होगा।"

"क्या हम अपने बेटे को अपने घर ले जा सकते हैं?" मुश्किल से डेविड पूछ सके।

"आपको मना तो नहीं कर सकता, पर जब तक आपकी बेटी ठीक न हो जाए आपका यहाँ रुकना ही अच्छा होगा। अभी वह बेहोशी की हालत में है, उसे सामान्य होने दीजिए और मेरी बात समझने की कोशिश कीजिए।" डॉक्टर ने गंभीरता से कहा।

"ऐसी हालत में अपने बेटे को कैसे देखते रह सकते हैं। कैसे सहें, क्या करें?" मारिया ने रोते हुए पूछा।

"ज़िंदगी में कभी-कभी प्रैक्टिकल होना अच्छा होता है। मेरी राय है, यहाँ चर्च के फादर से बात कर के अपने बेटे को हमेशा के लिए इसी शहर से विदा करना अच्छा होगा।" डॉक्टर ने सलाह दी थी।

डॉक्टर की बात में सच्चाई थी। अपने प्यारे भाई को उस स्थिति में देख कर क्या जेनी सह पाएगी? फादर की मदद से सारे रिच्युअल्स पूरे कर, अपने जिगर के टुकड़े जॉन को उस अपरिचित शहर में हमेशा के लिए विदा करने के बाद जेनी के होश में आने की प्रतीक्षा थी। दो दिनों बाद आँखें खोलती जेनी अपने माँ-बाप के उदास चेहरे देख चौंक गई- "क्या हुआ मॉम, हम यहाँ कहाँ है, जॉन कहाँ है?"

"जेनी बेबी, हमारा जॉन हमें छोड़ कर गॉड के पास चला गया।" रुंधे स्वर में डेविड ने जवाब दिया।

"नहीं, हम भी जॉन के पास जाएँगे। हमको भी गॉड के पास जाना है।" जेनी रो रही थी।

"ऐसे नहीं कहते, गॉड जिसे चाहते हैं उसे ले जाते हैं। तुम हमें छोड़ कर कैसे जा सकती हो, तुम्हारे बिना हम कैसे रहेंगे।" मारिया ने प्यार से जेनी को अपने सीने से चिपटा लिया।

"हम किससे बात करेंगे, किसके साथ खेलेंगे? जॉन हमें छोड़ कर क्यों गया, हमें उसके पास जाना है।"

बड़ी मुश्किल से जेनी को समझा कर डेविड, मारिया और जेनी को साथ लेकर उस सूने घर में लौटे थे। जिस घर में चार दिन पूर्व जेनी और जॉन हँसते-खेलते क्रिसमस ट्री को सजा रहे थे। घर का सूनापन जेनी के साथ सबको रुला गया। जेनी क्रिसमस ट्री से लिपट कर रो पड़ी। क्रिसमस पार्टी के लिए आने वाले अब शोक- संवेदना के लिए आ रहे थे। अचानक जेनी को याद आया शॉपिंग मॉल में जॉन ने जेनी को एक वीडियो- गेम दिखा कर कहा था, उसे सैंटा से बिल्कुल वैसा ही वीडियो गेम चाहिए।

"मॉम, अब सैंटा जॉन को उसकी पसंद का वीडियो कैसे देगा?" जेनी ने व्याकुल स्वर में कहा।

"डोंट वरी,जेनी। मै तरीका बताती हूँ। हम जॉन की पसंद का गेम खरीद लाएँगे। उस गिफ्ट को क्रिसमस ट्री के नीचे रख देंगे। उसके साथ सैंटा के लिए एक रिवेस्ट का नोट लिख कर रख देंगे कि जॉन गॉड के पास है, यह गेम जॉन को पहुँचाने की कृपा कीजिए।" एलिजाबेथ आंटी ने जेनी की तसल्ली के लिए तरीका बताया। जॉन एलिजाबेथ आंटी का बहुत दुलारा बच्चा था।

"क्या ऐसा हो सकता है, आंटी?" जेनी की आँखें खुशी से चमक उठीं।

"तैयार रहना,कल हम दोनों उसी शॉप पर चलेंगे, तुम जॉन की मनपसंद गिफ्ट ले लेना।"

"थैंक्स, आंटी, हम तैयार रहेंगे। जॉन गिफ्ट पाकर कितना खुश होगा।" खुशी से जेनी ठीक से सो भी नहीं सकी।

दूसरे दिन दुकान पर पहुँच कर जेनी ने दुकानदार से कहा- "सर, हमें कार वाला वीडियो-गेम चाहिए। गेम के बॉक्स के ऊपर लाल कार की तस्वीर बनी है।"

दुकानदार ने वीडियो गेम के कई डिब्बे दिखाए, पर उनमें से जेनी को जॉन की पसंद वाला बॉक्स नहीं मिला; जिस पर लाल कार की तस्वीर बनी हो। जेनी परेशान हो उठी।

दुकानदार ने समझाया-

"देखो बेबी, इन सभी वीडियो गेम में लाल, नीली, पीली कई रंगों की कारें हैं।"

"नहीं, हमें जॉन की पसंद वाला बॉक्स चाहिए, उसे रोबिन को हराना है।" जेनी की आँखों में आँसू आ गए।

"ऐसा करो, तुम जॉन के साथ आओ, वह ख़ुद अपनी पसंद का गेम ले लेगा।" दुकानदार ने कहा।

"जॉन कैसे आ सकता है, वह तो गॉड के पास चला गया है।" नम आवाज़ में जेनी बोली।

"अगर ऐसा है तो हम कहीं से भी जॉन का मनपसन्द गेम लाएँगे।" स्तब्ध शॉप-कीपर ने अपने सहायक को निर्देश दे कर दूसरी दुकानों से जेनी के बताए गए वीडियो गेम को लाने के निर्देश दिए। सहायक द्वारा लाए गए वीडियो गेम के डिब्बे पर लाल कार का चित्र देख कर जेनी खुश हो गई। हाँ, जॉन ने वैसा ही बॉक्स दिखा कर तो जेनी से कहा था, वह वही गिफ्ट सैंटा से माँगेगा।

एलिजाबेथ आंटी के साथ खुशी-खुशी जेनी घर वापिस लौटी थी। घर पहुँच कर एक सुन्दर से कागज़ पर जॉन की गिफ्ट पहुँचाने के लिए सैंटा को संदेश लिखा गया था। गिफ्ट के साथ संदेश को क्रिसमस ट्री के नीचे रख दिया गया। जेनी को विश्वास नहीं हो रहा था, कल क्रिसमस है, क्या सैटा क्लॉज सचमुच जॉन को उसकी गिफ्ट पहुँचा देगा? किसी तरह सोई-अधसोई जेनी सवेरा होते ही क्रिसमस ट्री के पास पहुँची थी। एक गुलाबी रंग के कागज़ पर लिखा था- "थैंक्स फ़ॉर दी गिफ्ट।" जॉन।

"मॉम-डैडी जल्दी आओ, जॉन को गिफ्ट मिल गई।" गुलाबी कागज़ थामें खुशी से जेनी चिल्लाई थी।

"जेनी, देख सैंटा तेरे लिए कितनी प्यारी डॉल लाए हैं। तू ऐसी ही डॉल चाहती थी न।" मारिया ने जेनी का ध्यान डॉल की तरफ करके उसे बहलाना चाहा।

"नहीं, हमें डॉल नहीं जॉन चाहिए। सैंटा हमें जॉन चाहिए।"जेनी रो रही थी।

"जेनी बेबी, तेरी डॉल तुझसे बात करना चाहती है।" डेविड ने प्यार से कहा।

माँ-बाप की बातें अनसुनी कर, अपनी गिफ्ट पर नज़र भी न डाल, आँखों से बहते आँसुओं के साथ जेनी 'माई लिटिल ब्रदर' कहती उस गुलाबी कागज़ को बेतहाशा चूमे जा रही थी।

000

लघुकथा

मेरा बेटा, मेरा लाल

डॉ. वीरेन्द्र कुमार भारद्वाज

"चारों में से चारों एक दूसरे का मुँह देखकर चले गए। बी पॉज़िटिव ग्रुप तो बहुत का होता है। किसी न किसी बेटे का भी अवश्य होगा।" एक डॉक्टर बोला।

"हाँ डॉक्टर कौशल, और यहाँ मरीज़ की हालत गड़बड़ाते जा रही है। साफ़ है, वे खून देना नहीं चाहते। बाहर से खून लाने का बहाना बनाकर खिसक गए। तीन घंटे हो गए उनके गए हुए।" दूसरे डॉक्टर ने भी चिंता जताई।

"ऐसे में तो रोगी मर जाएगा। समझ में नहीं आ रहा- अब हम क्या करें।" दूसरा डॉक्टर पुन: बोला।

"तुम कौन हो ?" एक आदमी को वहाँ उपस्थित देख एक डॉक्टर ने पूछा।

"मैं इन साहब का नौकर हूँ।" आदमी बोला।

"पर, तुम्हारे मालिक की तो जान ख़तरे में है और इनके सभी बेटे..... ।"

"पता है डॉक्टर साहब, सभी घर पर जाकर इसी बात पर आपस में झगड़ रहे हैं। मेरा ग्रुप मालिक से मिलता है, आप मेरा खून इन्हें चढ़ा दें।" इस बात पर दोनों डॉक्टर आश्चर्य से उसे ऊपर-नीचे निहारने लगे।

"देर मत कीजिए सर, ऐसे में तो मेरे साहब.... ।" नौकर ने बेचैन होकर कहा।

"बेटों ने खून नहीं दिया और तुम ..... ?" एक डॉक्टर हैरत होकर बोला।

"क्यों ....?" मैं आदमी नहीं हूँ क्या ? मेरे थोड़े-से खून से मेरे मालिक की जान बच जाती है, तो इसमें हर्ज ही क्या है ? मैं भी तो इनका नमक खाता हूँ।" नौकर की इस बात पर दोनों डॉक्टरों को काफी आश्चर्य होता है।

"मेरा बेटा....., मेरा लाल... तुझसे मेरा किस जन्म का रिश्ता था रे .... ?" रक्त चढ़ने के कुछ देर बाद ठीक होकर मरीज़ अपने उस नौकर के गले लिपटकर रो रहा था।

000

डॉ. वीरेन्द्र कुमार भारद्वाज
शेखपुरा, खजूरी, नौबतपुर, पटना-801109
मोबाइल– 9334884520

चबूतरा

विनीता राहुरीकर

साँझ का झुरमुट गाँव में धीरे-धीरे उतर रहा था। बूढ़ी ताई ड्योढ़ी पर आकर बैठ गईं। दिन कट भी जाए घर के भीतर; लेकिन साँझ का यह समय जैसे द्वार पर दस्तक देकर बाहर बुला लेता है और सत्यासी वर्षीय ताई आकर बैठ जाती है यहाँ। चारों तरफ नीरव सन्नाटा था। ताई के घर के मुख्य द्वार के ठीक सामने कुछ दूरी पर पीपल का पुराना पेड़ लगा था। यह पेड़ इस गाँव में ताई से भी पुराना था। ताई जब तेरह बरस की उम्र में चौहत्तर साल पहले इस गाँव में दुल्हन बनकर आई थी तब भी यह पीपल का पेड़ हरा-भरा लहरा रहा था। गाँव में अगर ताई से भी पुराना गाँव के इतिहास और जनजीवन को जानने वाला कोई है तो यही है। पीपल के पेड़ के चारों तरफ चबूतरा बना हुआ है। जब वे शादी होकर यहाँ आई थीं तब चबूतरे की जगह अलग-अलग आकार के पत्थर रखे थे बैठने के लिए। फिर कच्चा चबूतरा बना गोबर से लीपा हुआ। बड़ा सा चबूतरा। जिस पर बच्चे खेलते, पुरुषों की बैठकें होती, बुज़ुर्गों का विमर्श चलता, आसपास के घरों की औरतों के पापड़, बड़ी, मेथी सूखती। दो-चार औरतें ढोरों से उनकी रखवाली करते हुए वहीं बतियाती बैठतीं। जाने कितने घरों की समस्याएँ यहाँ सुलझ जाती, बच्चों की बीमारियों का ईलाज हो जाता, टूटते रिश्ते आपसी सलाह-मशवरे में दुबारा जुड़ जाते। यह चबूतरा नहीं एक चमत्कारी जगह थी और यह पीपल भी। पीटीआई-पत्नी, भाई-भाई, पड़ोसी-पड़ोसी के बीच चाहे जैसे, जितने भी गंभीर विवाद हो आपसी बातचीत में सब सुलझ जाते थे। कभी गाँव में थाना-कचहरी की नौबत नहीं आई थी। तब चबूतरा मज़बूत था, हर हफ्ते कोई न कोई बहुरिया गाँव की मिट्टी और गोबर से उसे लीप देती। घर में तुलसी चौरे के साथ ही चबूतरे पर भी रोज़ शाम को दीपक रखा जाता और सद्भावना की लौ से गाँव उजला रहता।

ताई ने आँखों पर ज़ोर डालकर टटोलना चाह, चबूतरे पर अब दीपक का उजास दिखाई नहीं देता। ताई की दृष्टि अब बहुत कमज़ोर हो गई है; लेकिन अँधेरे में लौ के उजास का आभास अब भी कर लेतीं हैं। गाँव के पुराने लोगों को भी उनकी आकृति और चलने के ढंग से ही पहचान लेतीं हैं।

"बुढ़िया फिर बैठी है वहीं, पीपल के पेड़ को ताक रही है, लगता है पीपल की उम्र भी अपने नाम कर लेगी। देखना यह पीपल का पेड़ मर जाएगा लेकिन यह बुढ़िया नहीं मरेगी।"

ताई को अपने पीछे से अत्यंत कटु स्वर सुनाई दिया। आवाज़ से ही जान गई जेठ की बहू है। जेठ का पुत्र ताई का हमउम्र ही था। जेठ और उनके पति के बीच छह भाई-बहन और थे इसलिए

विनीता राहुरीकर
श्री गोल्डन सिटी,बंगला नम्बर- 28, फेस-2,होशंगाबाद रोड़, जाटखेड़ी, भोपाल, मध्य प्रदेश- 462047
मोबाइल- 9826044741
ईमेल- vinitarahurikar@gmail.com

उम्र का भी ख़ासा अंतर था। पाँच बरस पहले बयासी वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई। आयु भरपूर थी, जीवन भी भरपूर जीया था किन्तु था तो रिश्ते में पुत्र ही न। तो पुत्र मर गया और 'माँ' की पीढ़ी की वे अभी तक जीवित हैं, जेठ-बहू के इस शोक-संताप का कोई पारावार न था। आते-जाते बिना लिहाज किये ताई को जीवित रहने के लिए कोसती रहती। ताई के कलेजे में गहरी हूक उठी। भगवान् मुझे नहीं ले गया अब तक तो मैं क्या करूँ। जीने की वैसे भी कौन सी साध बची है अब मन में। वह तो ख़ुद ही रोज़ रात को प्रार्थना करके सोती है कि नींद में ही ऊपर बुला लेना। अब उधर से ही बुलावा नहीं आ रहा तो वह क्या करे! आँखें भर आईं। चश्मा उठाकर पल्ले की कोर से धीरे से पोंछ ली। आदत तो हो गई है बरसों से यह कड़वाहट निगलने की लेकिन तब भी मन कहीं तो दुखी हो ही जाता है। बोलने वाला कोई एक ही तो नहीं है, घर में सभी गाहे-बगाहे सामने या पीठ पीछे यही कहते हैं।

ताई ने उधर से ध्यान हटाकर फिर चबूतरे पर केन्द्रित कर दिया। जब वर्तमान कड़वा स्वाद रखने लगे जीभ पर तो मधुर स्मृतियों की जुगाली करना ही ठीक रहता है। और वे आजकल यही करती हैं। घर के सदस्यों से आत्मीय संवाद तो बरसों हो गए बंद होकर। किसी में आत्मीयता ही नहीं, किसी में यदि थोड़ी-बहुत बची भी हो तो समय नहीं है उसे साझा करने का। सत्रह बरस पहले पति की मृत्यु के साथ ही जीवन का अंतिम आत्मीय रिश्ता भी ख़त्म हो गया था, जिसके साथ मन के सुख-दुःख साझा कर लेती थी। उनके जाने के बाद यह पीपल और चबूतरा ही उनके आत्मीय साथी रह गए हैं। मन में उमड़ती पुरानी मधुर स्मृतियों की पोपली मुस्कराहट हो या वर्तमान की तिक्तता पूर्ण कड़वाहट, सब कुछ इन्हीं के साथ साझा होता है। बाकि उम्र के साझीदार तो शरीर से उनके जैसे ही जर्जर हो चुके हैं या परलोक सिधार चुके हैं। ताई भी ईश्वर कृपा से अपने निजी काम जैसे-तैसे अभी तक कर लेती हैं और शाम के समय झुर्रीदार चमड़ी चढ़ा अपना हड्डियों की ठठरी जैसा शरीर उठाकर यहाँ आ बैठती हैं।

आकाश रात्री के आगमन की प्रतीक्षा में पल-पल रंग बदल रहा था मानों रात्री को रिझाने का प्रयास कर रहा हो ताकि वह जल्दी आए। आकाश के रंगों को देखकर ताई की स्मृतियों में होली के रंग छा गए। इस गाँव में डोली आने के बाद की पहली होली से लेकर बाद के वर्षों की अनेक होलियाँ यहीं मनाई थीं। नई बहू की पहली होली गाँव में ख़ास महत्त्व रखती है। गाँव भर के नन्द-देवर इकट्ठा हो जाते हैं भाभी से होली खेलने को लालायित होकर। नई भाभी का कैसा कौतुक होता था तब गाँव भर में। होली के रंग में रंगा चबूतरा, पीपल और आसपास की माटी दीपावली तक रंगीन रहते। बड़े-बड़े थालों में गुझिया, मठरी, मिठाइयाँ रखी जाती थीं। शाम देर तक वहीं रंग खेलना और खाना-पीना चलता रहता।

दीपावली से पहले वसु बारस को गाय-ढोरों की पूजा के साथ ही चबूतरे को भी लीप-पोतकर तैयार कर दिया जाता। चूने-गेरू से उसपर बेल-बूटे उकेरे जाते। बच्चों को भी चबूतरे पर खेलने के लिए छोड़कर वे ऐसी निश्चिंत हो जाती जैसे वह कोई बड़ा-बुज़ुर्ग हो जो उनके बच्चों की देखरेख करता रहेगा। बच्चे घंटो खेलते रहते और वह आराम से अपने काम करती रहतीं। पास-पड़ोस के बड़े-बुज़ुर्ग या वयस्क बच्चे अपना नैतिक दायित्व मानकर सहज स्नेह से सभी बच्चों का ध्यान रखते। माटी के चबूतरे के समय में जीवन में डर नहीं था। माटी गिरने पर भी चोट नहीं लगने देती है। न भागने का डर न भगा ले जाने का। तभी उनके बच्चे कब बड़े हो गए पता नहीं चला। तब घर भी माटी का, एक तल्ले का था। कमरे ज़्यादा नहीं थे लेकिन माटी का दिल बहुत बड़ा था, दूर-पास के नातेदार यहाँ तक की पड़ोसियों के रिश्तेदार भी समा जाते थे उसमें आराम से। अब दो तल्ले का पक्का मकान है। ढेर सारे कमरे हैं लेकिन पति के देहांत के तुरंत बाद ही पोते के बेटे के लिए अलग कमरे की ज़रूरत है कहकर ताई के कपड़े पुराने संदूक में भरकर पूजाघर के एक कोने में रख दिए पोते ने और रुई का एक गद्दा, चादर रख दी सोने को। पलंग या खाट रखने की जगह भी नहीं थी, अच्छा भी न लगता। उम्र भर ताई पलंग या तख़्त पर ही सोई थी; लेकिन अब जब सुबह खड़े होने में पैर की हड्डियाँ कड़कड़ाने लगती हैं तो सोने को ज़मीन मिली।

सामने रात उतरने लगी। अँधेरे में पीपल, चबूतरा सब विलीन होने लगे दृष्टि से। वे चौखट पकड़कर धीरे-धीरे उठीं और पूजाघर में आ गईं। मंदिर में मूर्ति के सामने दीया-बाती की। बाहर वाले कमरे में टीवी चल रहा था। रामायण-महाभारत उन्होंने भी शौक से देखा था परन्तु जबसे टीवी ने लगातार बहुत ज़्यादा बोलना शुरू कर दिया तबसे घर के सदस्यों के बीच के रिश्ते गूँगे हो गए। सब जैसे टीवी से ही बतियाने लगे। गलियाँ, चौबारे सूने होने लगे। उन्हीं दिनों में गाँव के कुछ युवाओं ने शहर से सीमेंट लाकर कच्चा चबूतरा तुड़वाकर पक्का करवा दिया। बस उसी के बाद से माटी में मज़बूती से जड़ पकड़े हुए रिश्ते पक्के सीमेंट की बेजान ठंडक में मुरझाने लगे। कच्चे चबूतरे के पक्के रिश्ते चबूतरे के पक्के होते ही कच्चे पड़कर टूटने लगे, ठीक वैसे ही जैसे यह शहरी सीमेंट का पक्का चबूतरा जगह-जगह से टूट गया है। बाहर खाने-पीने की आवाज़ें आने लगीं। उनका भोजन तो आधी या एक रोटी और चम्मच भर चावल रह गया था। वे अकेली रोज़ घर-भर के पन्द्रह लोगों को समय पर खाना बनाकर खिला देती थीं, लेकिन अब घर में तीन बहुएँ, एक जेठ बहू, दो पुतोहू मिलकर भी एक बूढ़ी को समय पर रोटी नहीं खिला पाते। आधी रोटी ही सही पर अपने भूख के समय पर आँतें तो कुलबुलाने लगती हैं। टीवी में मगन अब इनको न जाने कब सुध आएगी उनको खाना देने की। ताई दीवार से पीठ टिकाकर घुटने पेट में दबाकर बैठी रही।

आज ताई दिन रहते ही बाहर आ बैठीं। आज थोड़े उजाले में चबूतरे को देखने का मन हुआ। एक समय में गाँव में सबसे अधिक चहल-पहल वाली जगह हुआ करती थी यह। भोर की पहली किरण से देर रात तक हर पीढ़ी के क्रियाकलापों के लिए समय निर्धारित था। कितनी बातूनी थीं वे तब। आस-पड़ोस ही नहीं

गाँव भर से बोल-चाल का नाता था। तब ढेरों काम के बीच भी दुनिया-जहान की बातें होती रहती थीं। कुछ नहीं तो चावल या गेंहूँ बीनने के बहाने, कपड़े सुखाते हुए पिछले आँगन या छत पर ही कितनी बातें हो जाती थीं मन की। तब गाँव भर से बातें होती रहती थीं और अब घर के सदस्यों के बीच भी संवाद हीनता छाई रहती है। रही-सही कसर इस नए फ़ोन ने पूरी कर दी। गर्दन झुकाकर सब न जाने क्या डूबे रहते हैं उसमें? पुरानी बातें करने का, अपने दिनों का हाल बताने का, कुछ इन नए ज़माने के बच्चों से आज के दौर का हाल सुनने का मन करता है, लेकिन न इन्हें समय है, न रुचि है ताई की सुनने या अपनी कहने की। और उनके शब्द गले में ही घुट जाते हैं।

कई-कई दिन हो जाते हैं आजकल तो बोले हुए। अब घर के सामने से भी कोई पहचान वाला नहीं निकलता कि द्वार पर बैठे-बैठे ही किसी से दो बातें कर लो। एकांत में कभी राम जी का नाम लेकर तसल्ली कर लेती हैं कि गले में आवाज़ अभी बाक़ी है। घर अब भी लोगों से भरा है लेकिन आत्मीय संवेदना का नितांत अभाव हो गया है। सुनती थी ताई संवेदनाहीन 'चुप्पे' शहरों के बारे में, वही चुप्पा शहर कब गाँव के लोगों के दिलों में भी आकर बस गया कि गाँव भी आत्मीय वार्तालाप भूलकर गूँगा हो गया। इस गूँगे गाँव में अब ताई को एकाकीपन सालता। ताई जो इस गाँव के चौहत्तर बरसों के हर दिन, हर क्षण का जीता-जागता ऐसा दस्तावेज़ है जिसे कोई पढ़ना नहीं चाहता, जो फ़ालतू हो चुका है सबके लिए।

आज न जाने क्यों उनका मन बहुत अधिक ही छटपटा रहा था, पुराने दिनों की याद में दिल बार-बार भर आता। मैली-कुचैली पोटली जैसा सिकुड़ा-सिमटा झुका हुआ शरीर जैसे-तैसे घुटनों पर हाथ रखकर उठाया और धीरे-धीरे काँपते कदमों से रेंगते हुए चबूतरे तक पहुँची, प्रेम से उस पर हाथ फेरकर पीपल को सीस नवाया और सँभल बैठ गईं। सालों बाद आज यहाँ तक आई हैं वह। किसी बिछड़े प्रियजन से मिलने का सुख ताई के मन को मिला साथ ही बरसों से सीने में दबी एक रुलाई भी गले तक आकर अटक गई। वहाँ से नज़रें उठाकर अपने घर और साथ वाले घरों की तरफ देखा। जहाँ तक भी धुँधलाई आँखें देख पा रही थीं। पहले जहाँ छतों पर नन्द-भाभियाँ-सखियाँ बतियाती हुई दिखती थी साँझ को वहीं अब बस एक-एक गोल छतरी ही टँगी दिख रही थी।

अचानक ही उनकी आँखें भर आईं। दुखद दिनों की अपेक्षा सुखद दिनों की स्मृतियाँ अधिक पीड़ादायक होती हैं। दुखद दिनों की स्मृतियाँ तो बीत जाने की राहत से भरी होती हैं लेकिन सुखद दिनों का बीत जाना वर्तमान में हमेशा ही सालता है। मन में एक हूक उठाता है। जाने कितनी ही पीड़ाएँ मन में दबाकर जीती आ रही ताई का मन हो रहा था पीपल के पेड़ से ही ख़ूब बातें करे। बताए कि बोलने को तरस जाना कैसा होता है, आधी रोटी की भूख को भी सहना कितना मुश्किल होता है। सुबह पतले से गद्दे से उठते हुए घुटनों का दर्द कैसा जानलेवा होता है और उस पर ज़िंदा रहने के ताने सुनना कितना अपमानजनक। मन का गुबार आँखों से बहने लगा। अकेले अपने गद्दे पर बैठकर तो बहुत बार रो चुकी हैं पर आज किसी अपने के पास होने की एक अनकही सी सांत्वना भी थी। जब मन हल्का हुआ तब वे चबूतरे को देखने लगीं। जगह-जगह दरारें पड़ गईं थी और उनमें जाले लग गए थे। बहुत जगह से रेट सीमेंट झरकर चबूतरे के टुकड़े गिर चुके थे। जब रिश्तों में अपनापन था तब चबूतरा भी मज़बूत था, जब रिश्तों में, मनुष्य के मनों में दरारें आने लगीं तो चबूतरे में भी आ गईं।

जब तक मिट्टी का था तब तक दरारें पड़ती नहीं थी, पड़ती थीं तो लोग तुरंत लीप कर दरारें भर देते थे। अब सीमेंट की दरारों को कोई कैसे भरे, ये दरारें तो मिट्टी, गोबर से भी अब भरी नहीं जा सकती। ये बढ़ती ही जा रही हैं। बूढ़ी ताई और पीपल दोनों अपने अकेलेपन भरे सन्नाटे में ऊँसासे भरते बैठे रहे। रात गाँव में उतरने लगी। पीपल और ताई की आकृतियाँ एकाकार होते हुए आख़िर अँधेरे में विलीन हो गईं।

ooo

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

ख़ामोशी का साझापन

डॉ. अमिता प्रकाश

डॉ. अमिता प्रकाश
असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी, तपोवन कॉलोनी ब्यूराखाम, निर्मला कॉन्वेंट स्कूल के पीछे, काठगोदाम नैनीताल, उत्तराखंड-263126
मोबाइल- 7055663576
ईमेल- amitaprakash78@gmail.com

बाहर खामोशी थी, यह कहना ग़लत होगा, दरअसल पूर्ण निस्तब्धता का राज़ था, जून माह के कृष्णपक्ष की उस एकादशी तिथि को। अँधेरे में चुप्पी कुछ वैसे ही छाई थी जैसे उनके मन में पसरी थी। चुप्पी पसरी थी! नहीं एकमात्र चुप्पी कहाँ? अँधेरा भी तो था अपनी पूरी सघनता के साथ घोर अँधेरा। सही कहा जाए तो मुँह की खामोशी के बावजूद मन में कोलाहल था, भयानक। ज्वार में उमड़ती सागर की लहरों जैसी बेकरारी और तट तोड़कर सब कुछ बहा ले जाने की बेचैनी। उनके मन में पूर्णिमा को उठने वाला ज्वार आज कृष्ण पक्ष में ही उमड़ पड़ा था। आश्चर्य? इसमें आश्चर्य जैसी क्या बात है? समय की गुलामी में ही तो सब कुछ बंधा पड़ा है। समय को काल भी तो इसीलिए कहते होंगे न! एक लहर ने ज़ोरदार टक्कर मारी। "हाँ", उतरती हुई लहर ने हौले से उत्तर दिया। तो फिर मैं इतना कुछ क्या सोच रहा हूँ? आख़िर क्यों पाप-पुण्य, इहलोक -परलोक जैसे विचार डगमगा रहे हैं मुझे?

नहीं, नहीं! कुछ भी नहीं डगमगा सकता मुझे अपने विचार से, फिर से फेन उगलती व्याल सी लहर फुँफकार उठी। और उस पल रस्सी पर उनके हाथ कस गए। इस कसावट में बहुत कुछ था। बहुत होते हुए भी कुछ न होने की टीस भरी पीड़ा, और कुछ न होते हुए भी बहुत कुछ से बिछड़ जाने का अथाह दर्द। दर्द, दुख, पीड़ा, कसक यही तो बाध्य कर रहे हैं उन्हें, एक लहर फिर उभरी और वह उससे उबरते या उसमें डूबते उससे पहले ही किसी खोह से आवाज़ उभरी, "ऊमी! हे ऊमी!" इस आवाज़ में घुली मिठास से पुलक उठा तन-मन। रस्सी पर कसावट कुछ

ढीली पड़ गई। एक बड़ी बहन तथा तीन भाइयों में सबसे छोटा भाई, ऊमी, माँ का लाडला। लड़कियों जैसा ही कोमल और हँसमुख चेहरा। जिसमें हँसते हुए गड्ढे उभर आते थे और उन गड्ढों में डूब जाते थे, कई युवा दिल। वैसे तो वह ज़माना कहाँ था इन सब चीज़ों को जानने समझने का? लेकिन कई जवान, नई-नवेली भौजाइयाँ भी जब उन्हें छेड़ती और ख़ुद के, उन सरोवरों में डूब जाने से बच जाने का अफसोस ज़ाहिर करते हुए कहतीं, "देवर जी! देख लेना अपनी ही बहन को बनाऊँगी मैं देवरानी," तो गड्ढे ही नहीं गहरा जाते थे बल्कि अनार की कलियाँ चटकने लगती थीं हर तरफ। और वह धत्त कह कर चुपचाप खिसक लेते थे वहाँ से। "मेरा ऊमी!" कहकर माँ दबोच लेती थी अपने सीने में उन्नीस वर्षीय उस युवा को, जिसकी मासूमियत और चिकने चेहरे पर मर्दानगी की खुरदरी दस्तक अभी तक नहीं हुई थी। माँ को बच्चा ही लगता वह। गोरे चिट्टे चेहरे पर एक तिल बड़ा सा, निचले होंठ के कोने पर बाईं तरफ और लड़कियों वाली लालिमा। माँ, जहाँ अपने रूपवान बेटे के रूप पर गौरवान्वित फिरती रहती लहकी-बहकी सी, वहीं पिता ज़रूर फुरसत में सोचते बेटा कहीं? लेकिन फिर सायास स्वयं ही अपने विचारों पर विराम लगा देते।

चेहरे की लालिमा और मुलामियत को छोड़कर सबकुछ सामान्य ही तो है। इस बात का विश्वास उन्हें तब हुआ जब एक दिन वह नाज़ुक सा घोंसले में दुबका चिड़ा उड़ने को तत्पर उनके सामने अपने पंखों को तौलने लगा, "मैं भी दद्दा के साथ शहर जाऊँगा, वहीं रहकर पढ़ लिख लूँगा। या दद्दा के साथ ही उनकी कंपनी में नौकरी कर लूँगा।"

पिता चौंके ज़रूर थे, क्योंकि यह उड़ान की चाहना भर नहीं थी, उड़ान का निर्णय था। लेकिन माँ बेहाल। इस छोटे से छौने को कैसे भेज दे शिकारियों के बीच?

"क्यों तेरा मँझला बेटा नहीं है क्या? उसे शिकारियों के बीच बलि चढ़ाने के लिए ही पैदा किया था और इसे पालने के लिए?" पिता के इस हृदयभेदी बाण ने माँ को आहत के साथ निरुत्तर भी कर दिया था।

दस दिन के अंदर अपने भाई के साथ आब-ओ-दाना की खोज में वह चिड़ा घोंसलें की गर्माहट से दूर अभाव और ज़रूरतों की ठंडी चिकनी शाखा पर सवार जीवन के लिए जूझने लगा था। पढ़ना-लिखना बस की बात नहीं है, यह बात वह अच्छी तरह जानता था, और सही पूछा जाए तो उससे पीछा छुड़ाने के लिए ही तो वह दद्दा के साथ जाने की ज़िद कर बैठा था। पढ़ना उसे दुनिया का सबसे उबाऊ और दमघोंटू काम लगता। अब न पढ़ने की खुली छूट थी, पढ़ने की जगह कमाना था, तो उसी प्राइवेट कंपनी में नौकरी कर ली, जहाँ दद्दा काम कर रहे थे।

दरअसल दद्दा पढ़ने के लिए काका लोगों के साथ इस क़स्बे में आए थे। तीर्थ नगरी ऋषिकेश भेजते समय पिता ने अपने चचेरे छोटे भाई से विनती करते हुए कहा था, "मैने तो वही सीखा जो मेरे और तुम्हारे पिता ने अपने पिता से सीखा था। खेती-बाड़ी और यजमानी के इस आदिकालीन काम में अभी तक तो बरकत थी, पर आगे का समय जाने क्या दिखाए? इसलिए हो सके तो इसे शिक्षा का औज़ार दे देना ताकि ज़िंदगी की 'फाल' कभी खुरदरी पड़े तो ख़ुद ही धार लगा सके।" बड़े भाई की बात को अक्षरश: पालन करने की मंशा से अपने भाई के होनहार बेटे को ले तो आए वह, किंतु पत्नी को ज़्यादा समय तक नहीं समझा पाए।

काकी ने दो चार महीनों में ही जवान लड़के को घर बैठकर रोटी तोड़ने और पति के बिलकुल गोबर गणेश होने के ताने देने शुरू कर दिए। इसलिए काका वाली कंपनी में ही दद्दा भी कार्यरत हो गए और साल भर के अंदर ही काका ने रोज़- रोज़ की कहासुनी से आजीज़ आकर भतीजे का चूल्हा-चौका अलग कर दिया था। चूने-भट्टे वाली वह कंपनी जहाँ सब कुछ बाहरी तौर पर साफ-साफ दिखता था, अंदर उतनी ही कालिमा फैली हुई थी, हाथ -पैर भले ही चूने में लिपटे बाहर सफेदी ओढ़े रहते लेकिन साँसों में घुलता धुआँ फेफड़ों को ही नहीं, मनोमस्तिष्क में कालिमा पोत देता।

उस कंपनी को पूरा जीवन सौंप देने के बाद भी हासिल आए शून्य का विचार आते ही मुँह में काला, कड़वा-सा कुछ तैर गया। और इस कड़वाहट ने उनके हाथ पैरों की जुंबिश को लील लिया। बस बाकी बची रही एक सरसराहट। हवा की सरसराहट पीपल के पत्तों से खड़खड़ाहट में तब्दील होती जा रही थी। पीले पड़ते पत्तों का पीलापन लील रहा था, खून की लालिमा और सावन की हरियाली को। इस पीपल पर चढ़ते उतरते उसकी शाखाओं में लुकते-छिपते, सुलझते- उलझते, बढ़ते- घटते चाँद की तरह, जीवन कब गुज़र गया? पता कहाँ चला उन्हें? कितने लंबे लगते थे वे दिन जब गाँव से उनकी 'माँगण' हो जाने और विजयदशमी को शादी की तिथि तय होने का संदेश उन तक पहुँचा था? कितनी बेचैनी, घबराहट, संकोच, आशाओं और ख्वाबों के हिंडोलों में झूलता उनका मन पल भर में पीपल की फुनगी पर जा बैठता और फिर उतनी ही तेज़ी से सर से ज़मीन में आ धमकता। माँगण ही हुआ करती थी उस ज़माने में। घर के बड़े- बूढ़े, या गाँव के ही शुभचिंतक किसी घर में सुयोग्य लड़के या लड़की को देखकर जन्मपत्री जुड़ाते ही माँग लाते थे बधू को अपने लड़के के लिए, और वर बेचारा विवाह तक उनकी तरह गुनगुनाता ही रह जाता था-

इन्नी होलि कि उन्नी होलि, मेरी सौंजड्या वा बाँद कन्नी होली गौं कू जानि।

लाल होली बुरांस जन्नी कि फ्योंली जनि पिंगली वा इन्नी होली कि उन्नी होली।

गीत के बोल जब तब उनके होंठों पर तैर कर उनके मन का हाल बता देते थे, अनायास हवाओं को। सूरज के रथ के घोड़े तो तेज़ी से दौड़ जाते हैं, लेकिन यह चाँद! यह तो किसी घोंघे की पीठ पर सवार सरकने का नाम ही नहीं लेता। फ़ोटो माँगने की हिम्मत भी नहीं हुई किसी से, लेकिन जब देखा दुल्हन की वेशभूषा में, तो अपलक ठिठक गई थी नज़रें किसी बिजली की बल्ब सी रौशनी से भरपूर।

रोशनी बढ़ती गई थी उसके आने से। दिपदिपाता मुख रात होने की कहाँ देता था तब? आज वही मुख! समय के पाट में पिसा

हुआ, रसहीन भूसे सा निष्पंद निस्तेज, उनके बिलकुल समीप होते हुए भी कितना दूर है? वह बड़ी अजीब सी नज़रों से उस चेहरे को पुन: देखते हैं। यह वही मुख है, जिसके साथ पिछले पैंतीस साल कब गुज़रे, पता ही नहीं चला। वही मुख, न जाने कितनी बार उन्हें दुख और निराशा के कीचड़ से बाहर निकाल लाया था कमल पत्र की तरह, चमकदार, चिकना और कीचड़ से हमेशा ऊपर रहने वाला। वही मुख आज स्वयं उन्हें विवशताओं के कीचड़ में सना सा जाना पड़ा था। और अनायास ही वह कीचड़ उन्हें अपने सारे शरीर पर लिपटा लगा। उन्होंने जल्दी-जल्दी अपने सारे शरीर को रगड़ डाला, उसी रस्सी से लेकिन रस्सी ज्यों की त्यों सूखी ठस्स।

अब और नहीं उनके मन की डाली पर फिर कोई पत्ता सरसराया, 'अब और देर करना ठीक नहीं है' और वह इसी सरसराहट में कमरे से बाहर निकलकर आए। पत्नी को आहट का एहसास हुआ। वह कुनमुनाई और फिर सो गई।

उन्होंने खिड़की से झाँका, सब शांत था। बेटे के कमरे में नाइट बल्ब की रोशनी पर्दे से छनकर बरामदे के फर्श पर भयावह आकृतियाँ बना रही थी। उन्होंने झाँककर अंदर देखना चाहा। संस्कारों की रस्सी ने मन के पाँव पर पकड़ कसनी चाही पर लेकिन आज वह अपने में कहाँ थे? झाँक ही लिया। उस पुत्र को देखे बिना जाएँ कैसे, जिसमें उन्होंने अपने आप को पाया था। जब वह पैदा हुआ था, उसकी नन्हीं-नन्हीं कमल जैसी गहरी लाल हथेलियों को छूने में भी उन्हें डर लग रहा था कि कहीं उनकी छुअन से मैली न हो जाएँ। पुत्र की प्राप्ति ने उनका बचपन वापस ला दिया था। वही गुलाबी गालों की रंगत में पड़ते गड्ढे। दादी देखती तो एक बार फिर अपने ऊमी को बचपन में पाकर उनके लटक आए स्तनों में दूध की धार सा कुछ सरसरा जाता। स्नेह की चमक से झुर्रियाँ किरणों सी दिपदिपा उठतीं और वह? वह तो निहाल थे। जीवन सार्थक-सा लगने लगा था उन्हें। अपने को यों दोहराने की चाह ने मानव ही क्या प्रकृति के हर उपदान को कुछ इस कदर वश में किया है कि बाकी कुछ भी कहाँ उसे नज़र आता है?

अपनी संतति में अपने अमर होने की कामना को पूरित होता देखना चाहता है हर कोई। अमर! एक तीर-सा चुभा सीने के किसी कोने में और दीर्घ नि:स्वास स्वत: ही निकल गई। फिर उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। पीपल का वही वृक्ष उनकी आँखों में रह-रह कर ऐसे घूम रहा था मानों बाहें फैलाए उन्हें पुकार रहा हो। कमरे के अंदर की तपिश बाहर खुले में कुछ कम थी। परिधि में दबाव और घुटन स्वत: ही आ जाती है। सीमाओं में बँधने पर अनायास ही कई चीज़ों में बँधता चला जाता है इंसान। अपने लिए तैयार कर लेता है बाड़ा और फिर उस सीमित बाड़े में सिर पटक -पटक कर जान देता है निरपराध उन्हीं की तरह।

उनका चिंतन कदमों से तेज़ चल रहा था। कंपनी, परिवार, घर, गृहस्थी, समाज सब कुछ बादलों के छोटे-छोटे टुकड़ों-सा घिर रहा था कब से। कंपनी के बंद होने की सुगबुगाहट तो एक अरसे से हो रही थी, लेकिन उनका भोला दिल, जिसे माँ घुघती सा निष्पाप और ख़ुदेड़ बेटी-सा भावुक कहा करती थी, यह मानने को तैयार नहीं था कि सारा जीवन खपाने के बाद कंपनी उन्हें ऐसे बेसहारा छोड़ देगी। लेकिन दुनिया! दिल से नहीं, दिमाग़ से चलती है। बहुत थोड़ी सी पूँजी देकर कंपनी ने कुछ इस तरह लात मारी कि उनके व्यक्तित्व का आधा से अधिक प्लास्टर मय रंग रोगन के झटके से उखड़ गया था। बाहरी चमक-दमक से हीन खंडहरों पर या तो सहानुभूतिपूर्ण तरीके से नज़र मारी जाती है या उपेक्षा से। अपने उपेक्षा अधिक देते हैं। इस उपेक्षा ने उनके भावुक मन को दीमक की तरह कुरेदना शुरू कर दिया था। दिनचर्या में सोने जागने की अतिरिक्त वक्त-वक्त पर फेंके टुकड़ों पर दाँत मारने के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं रह गया था। कभी-कभी शाम को गंगा की लहरों से बतियाने भर को चले जाते थे त्रिवेणी घाट की ओर,पर संवाद से दूरी बनाते इस समय में,वह भी कहाँ संभव है।

आवासों और आवाजाही के इस दौर में चुप्पी व ठहराव की बात कहना सुनना उनका सबसे बड़ा गुनाह बनता गया। पत्नी ने शुरू-शुरू में प्रयास किया था उन्हें उस खोह से बाहर निकालने की किंतु एक सीमा के अंदर उसका प्रवेश भी असंभव-सा हो गया था। वैसे भी एक व्यक्ति के मन में चल रहा द्वंद्व दूसरे के मन में न पल रहा हो यह कहाँ संभव है? द्वंद्वों का साझापन बिना कहे अनबूझा-सा रह जाता है। इस कठिन दौर में द्वंद्व सभी के मनों में चल रहे हैं कुछ नितांत अपने, कुछ साझे, जो अनकही की वजह से सबके अपने-अपने होकर रह जाते हैं। पत्नी कैंसर से जूझ रही है। उसकी पीड़ा अपनी होकर भी कहाँ उसकी अपनी है? बेटा कोविड महामारी की वजह से घर बैठा है। रोज़गार छूटने के साथ-साथ गर्भ में पल रहे बच्चे के भविष्य को लेकर ही वह चिंतित नहीं हैं, बूढ़े माँ-बाप की दवा -दारू और पत्नी की लालसाओं के भार का द्वंद्व, जो जब तब उसकी आँखों से चू पड़ता है। किंतु मुँह बिल्कुल खाली, किसी गहन गुहा सा, जहाँ प्रतिध्वनि भी नहीं लौटती। बहू का अपना द्वंद्व। इस उम्र की, और इन परिस्थितियों में फँसी लड़की के जितने द्वंद्व हो सकते हैं, सबके सब उसके असमय खुष्क पड़ते चेहरे पर झलकने लगे हैं। ऐसे में अपनी बीमारी का बोझ डालकर।

वैसे भी आत्मा अमर होती है बचपन से सुनते आ रहे हैं वह अपने ज्योतिष पिता के मुख से। अचानक उनके चिंतन को लगाम लगी। आत्मा अमर हो न हो, दुख अमर होता है। दुख! जिससे निजात पाने के लिए मनुष्य तब से लड़ रहा है, जब से धरती पर आया है। इस दुख को मार देंगे वह। कोविड की रिपोर्ट में अपने संक्रमित होने की पुष्टि पाकर ही सोच लिया था उन्होंने। अस्पताल में लावारिस मरने से बेहतर है अपनों के एक और द्वंद्व को, नहीं! नहीं! एक बोझ को कम कर देंगे वह। हो सकता है दर्द का वह सोता जो अंदर ही अंदर उफन रहा है उन सब में एक राह पा जाए साझा होने की। उन्होंने झटके से रस्सी को पीपल की शाखा में डाला, पीपलवासी पंचदेव साक्षात् सामने खड़े थे।

000

एक बूँद समंदर

मीनाक्षी दुबे

मीनाक्षी दुबे
24 श्री कुन्ज, मैना श्री पार्क कॉलोनी,
उज्जैन रोड, देवास (455001)
मोबाइल- 9926028848
ईमेल- meenaksheedubey3651@gmail.com

बंद आँखों में फिर वही सैलाब...ठाठें मारता पानी... गोल-गोल भँवर में तेज़ी से घूमता और शोर मचाता पानी, सारी चीज़ों को अपने आप में डुबोता हुआ पानी..।

ओह्ह..!! फिर वही सपना, वही तकलीफ... मैं अपने-आप-को सपने की गिरफ्त से छुड़ाने की कोशिश में लगी। पसीने से तरबतर और कँपकँपाते शरीर के साथ उठकर, बिस्तर पर बैठ गई। उस दिशा में कान लगाए जहाँ से पानी टपकने की आवाज़ आ रही थी, टप-टप, टप-टप।

मैं आवाज़ का पीछा करती बाथरूम तक जा पहुँची। मैंने देखा कि बाथरूम के नल से अपनी लयबद्ध आवाज़ में मंद-मंथर गति से पानी टपक रहा है, टप-टप, टप-टप...। पानी की इस छोटी-सी बूँद की यह टप-टप ही इतनी सघन जल राशि में बदल गई थी। अक्सर यह सपना मुझे झकझोर जाता है और पीछे छूटे बचपन की ओर ले जाता है। जब मैंने पहली बार ऐसा ही एक सपना देखा था। तब गर्मी की छुट्टियाँ चल रही थी। दिन भर के खेलकूद और मस्ती के बाद छोटा भाई और मैं थककर आँगन में बिछी खटिया पर लेटे थे। जाने कब आँख लग गई, पता ही नहीं चला। चारों ओर एक शोर सुनाई देने लगा, ऐसा लगा कि इस शोर में कई तरह की आवाज़ें गड्डमड्ड हो रही हैं। इन सब आवाज़ों पर भारी होती जा रही है बहते पानी की आवाज़। यह

बहते पानी की आवाज़ बढ़ती ही जा रही है।

यह पानी, गाँव की कच्ची-पक्की नालियों में दौड़ते हुए अब छोटी-बड़ी गलियों में भी घुस आया है। धीरे–धीरे गाँव की मुख्य सड़क और बाज़ार में भी दूर-दूर तक पानी फैल गया है। चारों ओर से पानी बढ़ रहा है, घने अँधेरे की तरह गहराते इस पानी में बहुत कुछ डूबने लगा है।

आँगन की लीपन-छाबन के साथ में आँगन में इकट्ठा हम सब चचेरे, ममेरे, भाई-बहनों की हँसी, ठहाक़े डूब रहे है चुटकुले, कहानी, गीत, कविता, पहेलियाँ भी डूब चलीं। ओटले पर बैठे हम बच्चों के हाथों से छूटकर गुनगुनी धूप के टुकड़े भी डूबने लगे। मैं अपनी बंद आँखों से इस सैलाब में सब कुछ डूबते हुए देख रही थी कि अनायास पिताजी की ऊँची आवाज़ से मेरा सपना टूट गया।

उनींदी आँखों से मैंने देखा कि बिजली गुल है। लालटेन जल रहा है। दादी माँ अपनी गुस्से भरी आवाज़ में लगातार किसी को कोस रही है-

''वे राक्षस, बड़े-बड़े जूते पहन कर और हाथ में जरीबें लेकर अंग्रेज़ों की तरह घर में घुस आए, चौका और देव-घर भी नहीं छोड़ा उन दुष्टों ने।''

''चौके में तो रोटी बन रही थी। बच्चे खा रहे थे, तब भी बिना पूछे चौके- चूल्हे तक घुस आए, बच्चों के हाथ से रोटी छूट गई...।''

''तामण में कितनी देर तक देव डूबे पड़े रहे..। ज़रूर बड़ी सज़ा मिलेगी उन दुष्टों को।''

दादी माँ दुख और गुस्से से लगातार बड़बड़ा रही थी। उनके आँसू बह रहे थे, माँ की आँखें भी डबडबाई हुई थीं। पिताजी अनायास उठ खड़े हुए और धीर-गंभीर स्वर में बोले-

''कैसा दुख...! कैसा ग़ुस्सा...!! एक दिन तो यह सब होना ही था, बल्कि और पहले हो जाना चाहिए था।'' इतना कहकर वे अपने कमरे में जाकर लालटेन के उजाले में कुछ कागज़ तैयार करने लगे। मैं कभी रोती हुई दादी माँ और माँ को देखती तो कभी गहराती रात में, लालटेन के उजाले में काम करते पिताजी को। मुझे पिताजी पर गुस्सा आ रहा था कि इन दोनों को चुप कराने के बजाय वे आख़िर अपनी लिखा-पढ़ी में व्यस्त कैसे हो गए।

सुबह पिताजी के स्कूल जाने के बाद मैंने देखा कि उनकी टेबल पर उनकी कक्षा के बच्चों की एक रिजल्ट-शीट रखी है जिस पर एक बूँद पानी गिरने से इंक-पेन की लिखाई पर एक बड़ा-सा धब्बा बन गया है। शायद इसी वजह से पिताजी रात को दूसरी रिजल्ट-शीट बना रहे होंगे।

सेटेलमेंट- ऑफ़िस वाले अब रोज़ मोहल्ले में आते, हर घर की नपती करते, नाप-जोख कागज़ पर लिखते, मुआवज़े में मिलने वाले रुपयों के बारे में बताते और चले जाते। पूरे मोहल्ले में हड़कंप मचता, सब दुखी होते और फिर ख़ामोशी छा जाती। दादी माँ जहाँ अपने घर को लेकर भावुक हो उठी थीं, वहीं हम सबके भविष्य को लेकर चिंतित भी थी। यह घर दादाजी और उनके जीवन-संघर्षों का प्रतीक तो था ही, बुआ और पिताजी के बचपन की यादें भी इस घर से जुड़ी थीं। अब दादी माँ उन सैटलमेंट-ऑफ़िस वालों को लगातार कोसती रहती। उनका बड़बड़ाना चलता ही रहता। सब मिलकर उन्हें समझाने की कोशिश करते पर वे कुछ भी नहीं समझती, केवल पिताजी की ऊँची आवाज़ सुनकर ही चुप होतीं। कुछ देर की चुप्पी के बाद वे फिर बड़बड़ाने लगतीं। धीरे-धीरे उन्होंने पिताजी की आवाज़ को सुनना भी बंद कर दिया। उनका खाना-पीना भी कम होने लगा, रात की नींद तो जैसे उड़ ही गई थी।

वे किसी अँधेरे कोने में बैठकर ऐसे आँसू बहाती जैसे किसी अपने की मौत का शोक प्रकट कर रही हों, किसी अदृश्य को अपने घर के क़िस्से सुनाते हुए, वे घर छोड़ने के दु:ख से दुखी हो जातीं। दिन-दिन भर उनका शोक चलता रहता, हम उन्हें घेर कर उनके पास बैठ जाते, उनका दु:ख दूर करने की कोशिश भी करते पर वे अपनी ही दुनिया में गुम रहतीं। अपने घर में रहते हुए भी वे अपने घर से, अपने परिवार से दूर हो रही थीं। उन्हें हम सब कभी तो अपने लगते और कभी वे हमें पराया समझ लेतीं। सारे सांसारिक रिश्तों से दूर उनकी एक अलग ही दुनिया बनती जा रही थी। उनकी आँखों से सारा पानी बह चुका था, अब उनमें केवल वीरानी दिखाई देती। इस वीरानी में हम स्नेह का बिरवा तलाशते हुए थक जाते। सभी को दुलार करने वाली दादी माँ अब केवल हड्डियों का ढाँचा भर दिखतीं। हम सब उन्हें देख दुखी होते रहते।

ऐसे ही खामोशी भरे दिनों में मैंने फिर से यही डूब का सपना देखा। मैंने देखा कि, चारों ओर लबालब पानी भरा है, गर्मी भरी दोपहरी में ''बड़ियाँ'' सुखाती और कच्ची कैरी के अमोलों की निगरानी करती दादी माँ जो थोड़ी देर पहले यहीं थीं अब कहीं दिखाई नहीं दे रही हैं। आँगन में सूखते, उनके बनाए हींग और नमक मिले इमली के लड्डू कुछ दूर लुढ़के और फिर वे भी पानी में डूबने लगे। दादी माँ के चश्में के साथ उनकी 'कुबड़ी' (लाठी) भी बहने लगी।

जब उनकी साड़ी का नर्म आँचल और आँचल में समाई ममता भी, पानी में बह चली तो मैं ज़ोर से चिल्लाने लगी और दादी माँ को डूबने से रोकने की कोशिश करने लगी, तभी छोटी बुआ ने मुझे झकझोर कर जगा दिया और पूछने लगीं-

''क्या हुआ, कोई बुरा सपना देखा क्या?''

मैं बहुत डर गई थी, मैंने कसकर बुआ का हाथ पकड़ लिया और कहा-

''हाँ, बहुत बुरा सपना देखा।''

तभी मेरे कानों में गीता-पाठ करते पिताजी की आवाज़ सुनाई दी और माँ और बुआ सहित इकट्ठा परिवार जनों की सिसकियाँ भी..। मै घबराकर वहाँ जा पहुँची।

पिताजी ने अपनी आँख में आई पानी की एक बूँद को उँगली में सहेज कर दूर छिटक दिया और फिर से पाठ करने लगे-

''वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥''

''जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नए वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नए

शरीरों को प्राप्त होता है।''

श्लोक पढ़ने के बाद जब भावार्थ पढ़ते हुए पिताजी की दूसरी आँख से भी इसी तरह पानी की एक बूँद झर्र से झरी तो मुझे यही लगा कि कूलर की हवा के झपाटे से पिताजी की आँख में पानी आ गया है। पूरा दिन दुख और परेशानी में बीता। रात को जब मैं सोने लगी तो वह सपना याद आया। मुझे लगा कि शायद माँ और बुआ समेत इकट्ठा घर वालों के आँसू ही बाढ़ बनकर सपने में आएँ हों...।

इसी बीच पूरा एक साल बीत गया...साल भर दादी माँ बहुत याद आईं...। दादी माँ की बरसी की पूजा के बाद अब रात हो चली थी। नीला आसमान तपती धरती को ठंडक देने की कोशिश में लगा था लेकिन रुक-रुक कर चलते हवा के गर्म झोंके उसकी इस कोशिश को नाकाम कर रहे थे। आसमान की चादर में टँके सितारे अपनी भरपूर चमक के साथ टिमटिमा रहे थे। हमेशा की तरह इन सितारों में सप्तर्षी, पुच्छल- तारा, ध्रुव- तारा और आकाश-गंगा ढूँढ़ने वाले वाले हम दोनों भाई-बहन आज, अपनी- अपनी खटिया पर चुपचाप लेटकर, आसमान को सूनी निगाहों से ताक रहे थे। साल भर से पसर रही चुप्पी अब एक सन्नाटे में बदल गई थी।

सोच-विचार में आँख लगी ही थी कि फिर वही सपना...! ओह्ह...!! सपने में सब कुछ बहता और डूबता हुआ दिख रहा था।

छोटे भाई के बचपन के साथ मेरी किशोर उम्र की उमंग भी इस पानी के संग बहने लगी। माँ-पिताजी के सुख-दुख, हमारा अड़ोस-पड़ोस, संगी-साथी भी बह कर कहीं दूर जाने लगे। आँगन में लगे नीम की घनी छाँव डूबी। इस पानी में आँगन के साथ घर, घर के साथ मोहल्ला और मोहल्ले के साथ पूरा गाँव मुझे डूबता दिखाई देने लगा। फसलें, खेत, खलिहान, जंगल, मैदान भी डूबते दिखाई दे रहे थे। मैं एक नाकाम कोशिश के साथ सब कुछ सहेज लेना चाहती हूँ पर कहाँ से शुरू करूँ.. कुछ समझ में नहीं आ रहा...। धीरे-धीरे सब कुछ भीग गया और समा गया उस अथाह जलराशि में...।

मेरा मन भी भीग गया...डूबने लगा यादों के भँवर में। मैंने कसकर खटिया की दोनों ईंसे (पाटी) पकड़ ली और ख़ुद को डूबने से रोकने लगी। पानी धीरे-धीरे कम होने लगा। छोटी-बड़ी धाराएँ विलीन होने लगी और अब रुकरुक कर टपकती बूँद की आवाज़ स्पष्ट होने लगी। डूब के सपने से बोझिल आँखों को मैंने धीरे-धीरे खोला। मेरे सिरहाने बैठी माँ चुपचाप बाँस की सींकों से बने पंखे से मुझे हवा कर रही थी। पनिहारे की टंकी के नल पानी टपक रहा था टप–टप, टप–टप...।

हवा के झोंके रुके-रुके से थे। जून के महीने की उमस भरी गर्म रात थी हमेशा की तरह बिजली गुल थी और मैं पसीने से तरबतर थी। पिताजी के कमरे से आती लालटेन की रोशनी की एक फाँक में मैंने माँ के चेहरे को देखा। निस्तब्ध चेहरे पर आँसुओं की सूखी लकीरें थी। मेरा मन आर्तनाद कर उठा, सिसकियों के साथ रुलाई फूट पड़ी। अपनी खटिया पर सोया छोटा भाई भी हमारे पास आ खड़ा हुआ, हमारी सिसकियों में उसका बाल सुलभ रुदन भी शामिल हो गया।

पिताजी लालटेन की रोशनी में कागज़ पर कुछ रेखाएँ खींच रहे थे। माँ, हम दोनों को चुप कराने की कोशिश में लगी थी। मैं अपनी आँखों में आँसू लिए दौड़कर पिताजी के पास जा पहुँची; लेकिन मुझे निराशा हाथ लगी। पिताजी अपने काम में व्यस्त रहे। उन्होंने बिना मेरी ओर देखे अपनी गंभीर आवाज़ में माँ को भाई को चुप कराने और सुला देने को कहा एक। मैं वहाँ चुपचाप रुकी रही और उन्हें देखती रही, उनकी पीठ के पीछे की दीवार पर लगे कैलेंडर पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था ''गीता-सार'' और छोटे अक्षरों में कुछ श्लोक भी लिखे थे।

हम सबको सुबह ही अपना यह घर और अपना गाँव हमेशा के लिये छोड़ देना था। एक बड़े बाँध के बैक-वाटर से हमारा गाँव और आसपास का एरिया डूब में आने वाला था। पिछले साल भर में एक-एक करके पड़ोसी, मोहल्ले वाले और गाँव वाले हमसे बिछुड़ते रहे थे। जीवन भर के गिले-शिकवे भुलाकर पूरा मोहल्ला जाने वाले परिवार को प्रेम से विदाई देता 'ज़िंदा रहे तो कभी न कभी,कहीं न कहीं मिलेंगे' का जुमला दोहराती आँखें बरबस ही बरस पड़तीं। साथ ही इस जगह पर फिर कभी न आ पाने का दर्द भी छलक पड़ता। खाली हुए घर में साँझ का दिया ज़िम्मेदारी पूर्वक कोई भी जला आता। परिवार को किसी सुरक्षित जगह छोड़ आने के एक दो दिन बाद ही शुरू हो जाता अपने ही घर को अपने ही हाथों गिराने का सिलसिला। हर एक धमाका हर एक दिल को दहला देता। हर गिरती दीवार मन को हिला देती। गिरते घरों की दिल दहलाते धमाकों और हर दिन उठाते दम-घोटूँ धूल के गुबार के बीच पूरा एक साल गुज़र गया था।

गाँव लगभग खाली हो चुका था, हम लोग दादी माँ की बरसी के लिए ही यहाँ रुके हुए थे। इस विस्थापन ने हम सभी को बहुत दुखी कर रखा था, विस्थापन की वजह से ही हमने अपनी दादी माँ को खोया था; लेकिन पिताजी हमेशा की तरह स्थिर और शांत थे। मैं पिताजी के कंधे पर सिर टिकाकर अभी-अभी देखे सपने से उपजी बदहवासी दूर करना चाहती थी, हम सबके भविष्य के प्रति संतुष्ट होना चाहती थी लेकिन पिताजी ने मुझे तुलसीदास जी की कवितावली की एक पंक्ति सुनाई-

''राजीव लोचन राम चले,
तजि अवध को राज,
बटाऊ की नाईं...''

और इसका अर्थ समझाते हुए, मुझे सो जाने के लिए कहा। मैं पिताजी की बात पर पैर पटकते हुए आँगन में चली आई। भाई खटिया पर चुपचाप लेटा था और माँ उसकी खटिया पर निर्विकार बैठी थी चेहरे पर बनी आँसुओं की सूखी लकीरों में अब नमी चमक रही थी।

मैंने किशोरावस्था में कदम रखा ही था। पूरी दुनिया नए अर्थों में मेरे सामने खुल रही थी और इसे देखने-परखने का अपना एक अलग ही नज़रिया विकसित हो रहा था। मैंने माँ के आँसुओं की ज़िम्मेदारी सीधे-सीधे पिता के कंधों पर डाल दी। मेरा मन ग़ुस्से से भरता जा रहा था। पिताजी के प्रति बरसों से इकट्ठा कई शिकायतें सिर उठा रही थीं और इनका शोर बढ़ता जा रहा था।

जहाँ, माँ और दादी माँ के आँचल की

मृदुलता मुझे आकर्षित करती वही पिताजी के व्यक्तित्व का खुरदुरापन मुझे अखर जाता... कैसे पिताजी है...!! जब देखो तब डाँट देते हैं...। गर्मी की छुट्टियों में जहाँ सारे बच्चे अपनी पुस्तकें बंद करके रख देते वहीं हमें अगली कक्षा के गणित और अंग्रेज़ी के कोर्स की पढ़ाई करनी पड़ती। पिताजी हर रोज़ सुबह-सुबह पढ़ने के लिए हमारे हाथ में कोई न कोई बाल-पत्रिका पकड़ा देते या कोई मोटी पुस्तक। रोज़ ही कुछ न कुछ पढ़ना हमारे लिये अनिवार्य होता।

दोपहर में जब गर्म हवा के थपेड़ों के बीच नीम की घनी छाँव के नीचे मोहल्ले के बच्चे खेलते, हम घर की ओसारी की जाफरी से उन बच्चों को खेलते देखते रहते। हमें बस शाम को ही खेलने जाने की इजाज़त मिलती। पिताजी के घर में घुसते ही अनुशासन ख़ुद-ब-ख़ुद में चला आता, रेडियो पर बजते सदाबहार फ़िल्मी नगमे बंद कर दिए जाते। अपने स्वभाव के अनुरूप पिताजी कभी कबीर या रहीम का कोई दोहा, रामायण की चौपाई, कोई छंद या कोई श्लोक दोहराते रहते और कभी-कभी हमें उनके अर्थ भी समझाने लगते, हम अक्सर इससे बचने की कोशिश करते।

मुझे और मेरे भाई को भी पिताजी से सदा ही यह शिकायत रही कि वे कभी किसी के सामने हमारी बढ़ाई नहीं करते। जब दूसरे बच्चों के पिता अपने बच्चों की प्रशंसा के पुल बाँध रहे होते, पिताजी चुपचाप उनकी बातें सुनते रहते। हम उत्सुकता से पिताजी की ओर देखते कि पिताजी अब कुछ बोलें...अब कुछ बोलें...लेकिन वे कुछ नहीं बोलते। यदि उनके कोई दोस्त या रिश्तेदार हमारे लिए कुछ अच्छा बोल भी देते तो उनके जाने के बाद, पिताजी हमें समझाते-

''यदि कोई तुम्हारे एक गुण की तारीफ़ करे तो उसे विनम्रता से स्वीकार कर लो लेकिन अगले ही क्षण अपने दो अवगुण तलाशो और उन्हें दूर करने की कोशिश में लग जाओ।'' यह सुनकर हम गुस्से से मुँह फुला लेते और इस बात पर, पीठ-पीछे पिताजी की बुराई।

अब मैं बड़ी हो रही थी तो जब भी मुझे कहीं सफ़र पर जाना होता तो अपना सामान ख़ुद उठाना पड़ता। बस के पायदान पर चढ़ते हुए जब मैं ठिठक कर रुक जाती तो पिताजी तुरंत बोलते- ''जाओ, जाओ अपनी जगह ख़ुद बनाओ।''

जहाँ लोग बस की खिड़की से छोटा-मोटा सामान रखकर या गमछा डालकर अपनी और अपने बच्चों के बैठने की जगह बना लेते वहीं पिताजी तटस्थ रहते और हाथ में सामान पकड़े मुझे ख़ुद अपनी जगह तलाश करनी पड़ती। मुझे शरम भी आती और बुरा भी लगता।

मैं अपने सोच-विचार में अपने आप से लड़ते हुए पिताजी के प्रति आक्रोश से भरी हुई ही सो गई।

सुबह मैंने देखा कि आख़िर रात को पिताजी उस कागज़ पर क्या बना रहे थे। साफ-सुथरी, सीधी लकीरों में पिताजी ने एक नक्शा बनाया था। देखने में तो एक घर का ही लग रहा था। नक्शे की रेखाओं पर उनकी लंबाई के नाप लिखने के बजाय पिताजी ने 'एक-टिन' 'दो- टिन' लिख रखा था। छत और दीवार की ऊँचाई के लिये भी टिनों की अनुमानित संख्या लिख रखी थी। कुछ ही देर में मुझे समझ में आ गया कि पिताजी ने एक 'टिन-शैड' का नक्शा बनाया है यानी अपना

घर छोड़ने के बाद हमें उस 'टिन-शैड' में रहना होगा। मैं 'टिन-शैड' की कल्पना से ही शर्मसार हो उठी कि मैं अपनी सहेलियों को क्या यह बताऊँगी कि, हम 'टिन-शैड' में रहने जाने वाले हैं। मुआवज़े की रकम की गड्डी मेरी निगाहों में तैर गई और मैं सोचने लगी कि नया घर बनने तक एक किराये का मकान ही ले लेते...कितने कंजूस हैं पिताजी...।

इस नक्शे पर भी पिछले साल वाली रिजल्ट-शीट की तरह एक धब्बा बना हुआ था जिसे मैंने अनदेखा कर दिया।

रोते-बिलखते हम अपना घर और गाँव छोड़कर दूसरी जगह पिताजी के बनाए 'टिन-शैड' में रहने लगे हालाँकि एक साल में ही पिताजी ने सभी सुविधाओं वाला एक बड़ा सा घर बनवा लिया था। नए गाँव की बसाहट पुराने गाँव की बसाहट की तुलना में अधिक सुविधाजनक थी। लंबी-चौड़ी सड़कें, पार्क, हर सेक्टर में एक डिस्पेंसरी और प्राइमरी स्कूल भी बनने की योजना थी। हाई-स्कूल और कॉलेज की बिल्डिंग तो तैयार थी ही। सरकारी ज़मीन पर कटे प्लाटों पर तेज़ी से घर बन रहे थे, पूरा गाँव बस रहा था। नई जगह पर नया घर बन गया था लेकिन हमें अपने पीछे छूटे घर का कोना-कोना याद आता...उस गाँव का चप्पा चप्पा याद आता...।

जब भी मौका मिलता पिताजी पुराने गाँव जा पहुँचते, वहाँ से लौटकर बताते कि अब बेक-वाटर कहाँ तक आ गया है, इसके कारण गाँव के कौन-कौन से हिस्से पानी में डूब गए हैं, कौन-कौन सी जगहें अब भी ठीक से दिखाई पड़ रही हैं, स्कूल और अस्पताल की बिल्डिंग ज्यों की त्यों खड़ी है, मंदिरों में न तो कोई पूजा करने वाला है न ही वहाँ भगवान् हैं। पिताजी बातें ऐसे सुनाते जैसे किसी और जगह की बात कह रहे हों। मैं पिताजी की बातें अनमनेपन से सुनती और माँ का चेहरा ध्यान से देखती रहती। माँ का दुःख मुझे गहरे तक महसूस होता वहीं पिताजी मुझे कठोर नज़र आते। मन में थाती की तरह सँजोई पुरानी यादों के साथ ही नए घर, नई जगह और नए गाँव की नई बसाहट के साथ हम तालमेल बैठा रहे थे किन्तु वह डूब का सपना अक्सर मुझे परेशान कर जाता।

दिन, महीने, साल बीते। ठंड, गर्मी, बरसात अपने क्रमबद्ध तरीके से आते जाते रहे। नए परिवेश से हम तालमेल बैठा चुके थे। हम दोनों-भाई बहन बड़े हो रहे थे। अब भाई और मैं दोनों मिलकर पिताजी के व्यक्तित्व और उनके द्वारा कही बातों को समझने की कोशिश करते, कभी कुछ समझ पाते कभी नहीं समझ पाते।

अपने कॉलेज के एक सम्मान समारोह में मुझे राष्ट्रीय-सेवा-योजना के एक पुरस्कार से पुरस्कृत किया जाना था। पुरस्कार लेने के लिए जब मैं स्टेज की सीढ़ियाँ चढ़ रही थी तो मुझे बस के पायदान पर ठिठके अपने कदम और बस के अंदर अपनी जगह ढूँढ़ने में आती हिचक याद आ गई, साथ ही पिताजी की आवाज़ कानों में गूँजने लगी- ''जाओ

जाओ...अपनी जगह ख़ुद बनाओ।'' मन ही मन सब कुछ याद करते हुए मैं खुशी से स्टेज की सीढ़ियाँ चढ़ गई।

पुरस्कार लेने के बाद मैंने पिताजी की ओर देखा, वे उत्साह पूर्वक तालियाँ बजा रहे थे। मुझे पिताजी की अपने अवगुण देखने और उन्हें दूर करने वाली बात याद आ गई। मैं पिताजी के प्रति कृतज्ञता से भर गई। धीरे-धीरे मुझे मितव्ययता और कंजूसी में अंतर करना भी आने लगा था, अब किताबें अच्छी दोस्त बनती जा रही थी, पिताजी से सुने दोहे और श्लोक जब तब याद आ जाते, अब वे मेरे जीवन के सूत्र-वाक्य बनते जा रहे थे। इस सबके बावजूद जब भी वह डूब वाला सपना मेरी आँखों में उमड़ता मुझे विस्थापन की घटना याद आ जाती और मेरी संवेदना और सहानुभूति के तार माँ से ही जुड़ते।

मौके बेमौके हम पिताजी के स्वभाव में कठोरता और ग़ुस्सा खोज ही लेते। समय बीतने के साथ मेरी ज़िम्मेदारियाँ बदल गईं, बेटी और बहन के साथ अब मैं किसी परिवार की बहू, किसी की पत्नी थी। बीतते समय के साथ दो बच्चों की माँ भी बन गई, लेकिन अब भी कभी-कभी वह डूब वाला सपना मुझे परेशान कर जाता और मैं हैरान होकर, अपने बरसों पुराने सवाल का जवाब ढूँढ़ने लगती कि आख़िर छोटी सी बूँद की यह टप-टप इतनी विशाल जलराशि में कैसे बदल जाती है।

मैं बरसों बाद अपने परिवार के साथ अपने डूबे हुए गाँव तक पहुँची। वहाँ तक पहुँचने का रास्ता बुरी तरह ख़ुद गया था और कीचड़ भरा भी था। आसपास बेतरतीब घास और झाड़ियाँ थीं, पेड़ों ने जंगल सा दृश्य बना दिया था। बीच-बीच में बैक-वाटर भी भरा हुआ था, नदी और नाले आपस में मिलकर एक हो गए थे। रास्ते में पड़ने वाले खंडहरों को पहचानकर पिताजी बच्चों को बताते जाते- ''देखो यह तुम्हारी माँ का मिडिल स्कूल... यह तुम्हारे मामा का प्राइमरी स्कूल...।''

जैसे तैसे हम बस स्टैंड की टेकरे वाली ज़मीन तक पहुँचे। सामने विशाल जल राशि नज़र आ रही थी। ओर एक छोर से दूसरे छोर तक पानी ही पानी फैला था, मेरे सपने में देखे गए सैलाब की तरह। यह सैलाब सब कुछ लील गया था। यह पूरे गाँव के रहवासियों के दु:ख और पीछे छूट गई धरती की व्यथा का ऐसा सैलाब था जिसमें आस्था और विश्वास के केंद्र मंदिर और मस्जिद भी डूब गए थे। हाँ, यहाँ मनुष्यों के साथ देवता भी विस्थापित हुए थे और यहाँ के रहवासियों के साथ तंबू और 'टिन-शैड' में उनके भी दिन गुज़रे थे। अपने हाथों अपना आशियाना उजाड़ने की मजबूरी, दुख और टूटन के बाद भी इतनी नैतिकता और आस्था तो शेष थी कि धर्म स्थलों को ज्यों का त्यों छोड़ दिया गया था।

पिताजी किसी एक शिखर की ओर इशारा करते और बताते कि यह फलाँ मंदिर है और मैं उसके आसपास की बसाहट का अनुमान लगाने की कोशिश में लग जाती। अपने स्कूली दोस्तों और रिश्तेदारों के घर तलाशते हुए बरसों पुरानी यादों में खोने लगती। बच्चे उत्सुकतावश पिताजी से पूछते जा रहे थे और पिताजी समझा रहे थे। अपना एक हाथ उठाये, दृढ़तापूर्वक खड़े पिताजी उँगली से इशारा करके पूरा नक्शा ऐसे खींच रहे थे जैसे अभी इस वक्त हम उस घर और मोहल्ले की बसाहट का मॉडल अपनी आँखों से देख रहे हों। मैं ध्यान से पिताजी की बात सुन रही थी।

''कुछ ही दिनों में यहाँ नाव चलने वाली है, जब नाव चलने लगेगी तब हम अपने घर तक चलेंगे, वह टेकरे के हनुमान मंदिर के पास ही तो अपना घर है।'' वे कह रहे थे।

''अपना घर है...! है यानी...!!' मैंने चौंक कर उनकी ओर देखा, वे थोड़े भावुक नज़र आए। कुछ देर बाद हम वहाँ से लौट आए।

घर आकर पिताजी ने बच्चों को अपने कमरे का दरवाज़ा दिखाते हुए कहा- 'यह उसी पुराने घर के चौके (रसोई) का दरवाज़ा है जहाँ मेरी माँ और तुम्हारी नानी भोजन बनाती थी। जब तक यह दरवाज़ा खुला रहता, पूरा घर भोजन की सुगंध से महकता रहता। दाल और भाजी के बघार की गंध भूख को बढ़ा देती तो वहीं रोटी सिकने की सोंधी गंध भोजन बन जाने की ख़बर कर देती, यहाँ बनते पकवानों की सुगंध से हम बाहर बैठ कर ही अंदाज़ा लगा लेते कि माँ क्या बना रही है।''

उन्होंने दरवाज़े की साँकल ज़ोर से बजाई और कहा-

''ध्यान से सुनो, खटकाने पर यह साँकल ऐसे आवाज़ करती है जैसे इससे संगीत खनकता हो।''

''दोपहर की झपकी हो या आधी रात की गहरी नींद, माँ इस साँकल की आवाज़ पर सतर्क हो चूहे या बिल्ली की आशंका से रसोई की ओर दौड़ पड़ती। भूख लगने पर हम छोटे बच्चे भी इस दरवाज़े से आ टिकते और यह साँकल खनक उठती। अपना काम छोड़कर माँ, हमारे लिए खाने की व्यवस्था में जुट जाती।'' पिताजी चुप हो गए; लेकिन वह साँकल देर तक हिलती रही और अपने अनूठे अंदाज़ में खनकती भी रही...इस खनक में शायद पिताजी को अपनी माँ की दुलार भरी आवाज़ का संगीत बजता सुनाई दे रहा था, उनकी आँख से झर्र से झरे एक आँसू को मैंने देख लिया।

इस रात मैंने फिर सैलाब का सपना देखा। शांत और निर्मल समंदर चारों ओर फैला है। माँ, दादी माँ, बुआ और हम सभी परिवार जनों की आँखों से धार-धार होकर बहे दु:ख और तकलीफें इस समंदर में समाते जा रहे हैं, यह समंदर सभी को सहेज रहा है। हम सभी की ख्वाहिशों को पूरा कर पाने की खुशियाँ और उन्हें पूरा नहीं कर पाने का दर्द सभी कुछ तो समाया है इस समंदर में। कठोर अनुशासन के पीछे छुपी स्नेह की मीठी जलधारा भी आ समाई है इसमें। इस समंदर में अपना घर, अपना गाँव, अपने संगी-साथी छूट जाने का दर्द भी एक भँवर की तरह गोल-गोल घूम रहा है। दूर-दूर तक फैला है नीला पारदर्शी पानी, गलबहियाँ डालने को आतुर नीला आसमान नीचे झुक आया है, दूर क्षितिज पर दोनों आपस में मिल रहे हैं।

इस समंदर में गहरे तक खड़े होकर मैं भीगती जा रही हूँ, हर लहर मुझे सहला रही है। मेरे चेहरे पर पड़े पानी के निर्मल छींटे मेरे मन को अनोखे आनंद से भर गए और मैं मुस्कराते हुए जाग गई ...। अब मुझे अपने बरसों पुराने सवाल का जवाब मिलने लगा था ...।

000

मैं मधु नहीं

राजकुमार सिंह

आख़िरकार गिरीश ने उसे कैसे ताड़ लिया था कि वह संजीदा आदमी है। उसे रात में बिना नींद की गोलियाँ खाए हुए सोने की आदत नहीं है। लगातार बीड़ी-सिगरेट पीने से होंठ और गला भी ख़राब कर रखा है। हद है, हर सुबह उठते ही ढेर सारा पीला-पीला थक्कानुमा कफ नाक-मुँह से ज़मीन में पटकने वाले रहस्य को भी जान चुका था। जिसे उसके बाप से बीस साल छोटी माँ ने पूरम्पार बीस के बाद भी न जान सकी थी। उसका बाप तो यहाँ तक न पहचान पाया था कि उनका बेटा इतना बड़ा हो चुका है कि एक लड़की से वह सचमुच प्यार करता है। मधु भी उसे पता नहीं क्या-क्या समझती है? लेकिन गिरीश तो ठहरा गिरीश।

उसकी माँ प्रेम, ममत्व और सच्ची पत्नीत्व से रोटियाँ पकाती है। रोटियों को एक ओर फेंकते हुए जब उसका बाप, माँ को बुरी तरह से नोचना-घसोटना शुरू कर देता है। उस वक्त भी वह अपनी निरीह माँ को चाहकर नहीं छुड़ा पाता है। बस अँधियारे में ज्वालामुखी दफन कर देता है।

सुबह उठते ही वह माँ के सीने के आस-पास लाल नाग की तरह खरोचें देखने का अभ्यस्त हो चुका है। उसके दिल और दिमाग़ में मच रहे हंगामों की ख़बर आज तक किसी को न हुई। पर स्साला, गिरीश! कैसे जान गया...? उसके बाप का सवाल ही नहीं उठता है। हाँ, माँ को याद होगा। उसे भी याद है। उस रात उसके बाप ने घनघोर नशे की हालत में, उसे किस बेरहमी से पीटा था। उसने बाप से पूछा था, "मेरी माँ पर तुम्हारा क्या यही हक़ है...उसे जानवरों की तरह रौंदा जाए? पस्त कर दिया जाए, जिससे जाँघ और जोड़ भी दर्द से फट जाए?"

"हूँ... हूँ!" उसका बाप आँखें मूँदे ही बुकरा था।

"फिर क्यों नहीं एक झटके में माँ की गर्दन अलग कर देते हो? रोज़-रोज़ के बहशीपन से भी बच जाओगे।" क्रोध व घृणा से वह चीख उठा।

उसके बाप ने उसे अँधाधुँध पीटना शुरू कर दिया था। उसकी माँ कोने में चुहिया जैसी दुबकी देखती रही थी। उसका जी चाहा था- वह गंजे बाप के सिर पर कोई भारी-सी चीज़ दे मारे। अगली सुबह ऑफ़िस जाते हुए उसके बाप ने उसकी आँखें नापते हुए पूछा था, "क्यों बेटे! नाराज़ हो क्या?"

उसे दुनिया का नवाँ आश्चर्य हुआ कि उसका बाप रात वाली यानी कि हर रात वाली निर्दयी घटना को भी याद रख सकता है क्या? रात की कथा दिन में न दोहरायी जाए इसलिए उसने बिना लाग-लपेट कह दिया, "बिल्कुल नहीं। कैसे, आपसे नाराज़ हो सकता हूँ...?"

"कसम खाओ मेरी।" उसके बाप ने अपनी छिपकली जैसी चिपचिपी चाँद पर उसका हाथ रखते हुए कहा था।

उसने जल्दी से हाथ हटा लिया था। उसने सर्प विज्ञान पढ़ रखा है। छिपकली के मुख में नहीं, चमड़ी पर ज़हर होता है। उसका भयभीत चेहरा देखकर बाप खलनायकी हँसी, हँसा। पास खड़ी हुई उसकी माँ की ओर संकेत करके बोला, "मुझसे डरता है, अच्छा चल! अपनी माँ की ही कसम खा तू।"

वह बिना दो में से एक को खाये और डकारे कमरे के बाहर हो गया था। लेकिन गिरीश, उसके घर का किस्सा हू-ब-हू उसके कानों में फेंक गया था। उसे लगा था, गिरीश ज़रूर ही घर में कहीं छुपकर देख-सुन रहा होगा। उन दिनों गिरीश नाम की कोई वस्तु भी नहीं थी। देखने और सुनने की बात, तो बस, निजी उसका भौंड़ापन हो सकता है। हाँ, तब मधु के करीब ज़रूर था। गिरीश की मज़बूत पकड़ की तारीफ़ करनी होगी। गिरीश यह भी जान गया वह किसी लड़की से हरदम जुड़ा रहता है। यह बात दीगर है, अब सब कुछ झर ही चुका है। लड़की ने अपना घर बसा कर पति को चार बच्चे भी दे रखे हैं। किन्तु यही मधु आज तक न जान पायी कि वह उससे इतना अधिक जुड़ गया है कि उसके टूटने और बिखरने का श्रेय वही पा जाएगी।

मधु उसका धुआँसित चेहरा, पनियल आँखें तथा खोखली हँसी तक न भाँप पायी। वह उसे सुखी-सम्पन्न हँसोड़ ही समझती रही। हो सकता है उसने अपने बेमिसाल अभिनय से मधु को बाँध रखा हो। अफसोस! उसने उस दिन कोई अभिनय अथवा नाटक न किया था। उसे ठीक

राजकुमार सिंह
68/31 ए, लोकमन मोहाल, कानपुर उप्र
मोबाइल- 9369793144, 8707854840
ईमेल- rajkumarshinghsony@gmail.com

तरह से याद है। मधु ने सुहाग का लाल जोड़ा पहन रखा था। हरे काँच की चूड़ियाँ हाथ में झिलमिला रही थीं। माथे पर सूर्य जैसा लाल-लाल गोल टीका दहक रहा था। जैसे ही मधु वरमण्डप की ओर जाने लगी थी। उसने हौले से उसकी पीठ पर हाथ रख दिया। मधु पीछे घूमी और वह यथाशीघ्र मिमियाया था, "मधु! मैं तुमसे शादी करना चाहता हूँ।"

मधु हो-हो करके तेज़ी से हँसने लगी थी। बड़ी मुश्किल से उसने अपनी ठहाकेदार हँसी पर काबू पाया था। कुछ पल बाद मधु ने धन्यवादी मुद्रा बनाई और चहकी, "बिशू! चाहे जैसा भी माहौल हो, उसमें खुशियाँ भर देना, केवल! केवल!! तुम्हारा काम है। अच्छा हुआ, तुम आ गए। बड़ा ही मूड अप्सेट था। नए घर के चक्कर में न जाने क्या-क्या सोच रही थी? तुम्हारे पुरज़ोर मज़ाक ने मुझे हल्का-फुल्का कर दिया। सच कहती हूँ, अब ठीक से फेरे ले सकूँगी।"

मधु मंथर गति से एक-दर-एक फेरे कम करने लगी और वह अपने पुराने अभिनय को कोरे सच से तौलने लगा था।

भऊरिया तो तब गया था वह, जब गिरीश राशन वाला काण्ड एक बार फिर उसके चेहरे पर सुव्यवस्थित ढंग से जड़ गया था...

सरकारी सस्ते गल्ले की दुकान, आदमी जैसा बैठा था, सरकारी कामगर। उसने आदमी को राशनकार्ड थमाया "चीनी।"

सरकारी आदमी की आँखों में खूनी तलवार लटकती हुई नज़र आई। एकाएक उसे अपनी गर्दन काटने का कम, चीनी जाने की आशंका ज़्यादा हो आई। सरकारी आदमी ने उसके राशनकार्ड को दो-तीन बार विभिन्न पहलुओं से सिक्कानुमा परखा था। सरकारी आदमी राशनकार्ड से घिना गया और उसने राशनकार्ड को कूड़ा-सा फूहड़ औरतों की तरह से फेंक दिया था। "बेचारा, राशनकार्ड कुछ दूरी तक परकटे पक्षी की भाँति उड़ा और थककर ज़मीन में गड्ड-मड्ड हो गया।

उसका क्रोध में आना लाज़मी हो गया, "यह कौन-सी ट्रिक है, राशन-पानी देने की?"

"जाओ! जाओ!! कोई दूसरा धंधा देखो।" सरकारी आदमी आदमखोर-सा गुर्राया।

"धंधा...?" रक्षार्थ उसका भी गुस्सा बढ़ गया।

"अबे धंधा नहीं तो क्या, यह पुराना, फटा हुआ राशनकार्ड लाए हो....?" पास में खड़े हुए लोगों ने अपने नए राशनकार्ड को हाथी, बबर शेर-सा देखा और साँस भर हँस दिए थे। उन लोगों पर उसने ख़ास दिलचस्पी न लेते धमकी-सी दी थी।

"अब एक भी शब्द न कहना। सीधे से शक्कर दे दो। नहीं तो...।"

'नहीं तो क्या कर लोगे, मेरे मामू?" सरकारी आदमी ने कहा।

"मामा...! स्साले तू....।"

उसका वाक्य अभी पूरा नहीं हुआ था कि हथौड़े जैसे हाथ उसके गाल से टकराया। उसे देर तक याद नहीं रहा था कि वह घर पर है या कि सरकारी सस्ते गल्ले की दुकान पर। वह जबरन गौतम बुद्ध बन गया। उसने असमर्थ डोलते हुए हाथ से ज़ख्मी हंस-सा राशनकार्ड उठाया। आस्तीन को दाँतों से दबाए बेआवाज़ आँखों को भिगोता हुआ घर की ओर चल दिया था।

उसे क्रोध आता है, गिरीश ज्योतिषी पर। उसके अतीत को न जाने कैसे क़ैद करके उसी की गर्दन में लटका दिया था।

गिरीश उसे भीड़ भरे चौराहे पर मिला था। वह सड़क पार करना चाह रहा था। कई बार वह किसी-न-किसी चलते हुए व्यक्ति से टकरा जाता था। गिरीश ने कोशिश के साथ अपनी लाठी एक बार फिर बढ़ाई। गिरीश टेम्पो से लड़ते बचा। उसे दया आ गई थी। उसने उसे एक किनारे सुरक्षित लाकर पूछा, "क्या आप उस पर जाना चाहते हैं?"

गिरीश घबराहट में बोला, "आ... हाँ।"

उसने एक हाथ में गिरीश की लाठी पकड़ी। दूसरे हाथ से हाथ थाम कर उस पार कर दिया। उसने उसको लंबा-सा धन्यवाद दिया था। बस उसके साथ बातों का सिलसिला आगे दौड़ा। गिरीश ने उससे बताया- वह माँ के पेट से बिन आँखों वाला तीस वर्षीय व्यक्ति है। इन दिनों वह मामा के घर पिता के साथ आया हुआ है।

कुछ दूर साथ चलते हुए गिरीश उसका नाम पता पूछ बैठा था। उसने बता दिया था। दोनों ने अपनी-अपनी राह पकड़ी थी।

बमुश्किल दो-तीन दिन बाद गिरीश अपने पिता के साथ उसके दरवाज़े में पाया गया था। उसने घोर आश्चर्य के साथ नमस्कार का आदान-प्रदान किया। चाय पीते हुए उससे तथा उसके पिता से बातें हुईं। फिर आएगा कहकर वह लौट गया था।

उसके बाद गिरीश नितांत अकेले आता। देर तक बैठा रहता। वह उससे खुल गया। गिरीश उससे अब तो साहित्य से लेकर सेक्स तक लंबी-चौड़ी बहस करने में हिचकिचाहट न महसूस करता। उसे गिरीश दृष्टिहीन न लग के तीन-तीन आँखों वाला लगता।

गिरीश सच का पुजारी था। उसने जब से होश सँभाला था तब से सत्य बोलने वाली बात पैदा करने में असमर्थ रहा था। सच और झूठ का टकराव होता। गिरीश क्रुद्ध हो जाता, "तुम्हें सच झेलने की आदत डालनी चाहिए।"

इसी तरह के पाँच-दस और उपदेश देता। उसके लाख रोकने पर भी गिरीश लाठी से टेकता हुआ, मामा के घर की ओर चल देता।

उस दिन गिरीश एकदम सुबह ही आ धमका। उसे लगा था, गिरीश अपने साथ बेचैनी लिए हुए है। उसने गिरीश के हाथों में चाय का प्याला थमा दिया। वह बड़ी ही मातमपुर्सी संग चाय पीने लगा। उसे वातावरण दमघोंटू लगा। उसने जल्दी से अपनी प्रिय सिगरेट सुलगा ली, पर बार-बार कश लेकर भी पुराना मज़ा न आया। अंत में उसने ही सन्नाटा चीरा था, "बड़े गुमसुम से हो यार?"

गिरीश ने रुँधे गले से आवाज़ निकाली, "यूँ... ही..।"

"फिर भी...?"

"क्या बताऊँ यार, दरअसल मैं शाम की गाड़ी से घर लौट रहा हूँ।"

उसे धक्का लगा। मधु के बाद गिरीश ही ऐसा था जिससे वह फिर जुड़-सा गया था। उसने महसूस किया- टी सेट, मेज़, कुर्सी, लिहाफ सबके सब बारी-बारी से रो रहे हैं। वह तो होंठों और दाँतों ने उसका साथ दिया था। नहीं तो, वह भी जनाने तरीके से रोने लगता। उसका पुराना अभिनेता बाहर आया। उसने

खुलकर हँसते हुए कहा, "इसमें उदास होने की क्या बात है?.... घर जा रहे हो, यह तो खुशी की बात है।"

गिरीश ने अपना काला चश्मा उतारा। आँखों के गड्ढों से आँसू बह निकले। गिरीश ने आँसुओं से तर चेहरा पोछा। चश्मे को फिर यथास्थान पर रखते हुए बोला, "क्या कहा, बड़ी खुशी की बात है?"

"हाँ, यार! बिल्कुल सच।"

'विशू! तुम्हारा बनावटीपन मैंने पहले दिन ही भाँप लिया था। व्यर्थ में यह नाटकबाज़ी क्यों करते हो? वह भी मुझसे? एक चेहरे पर कितने मुखौटे लगाए हुए हो?"

वह काँप गया। उसे लगा, गिरीश ने इस्पात की गर्म-गर्म सलाखें सीने में धँसा दी हैं। कुछ क्षण तक वह तिलमिलाता रहा और फिर एकदम चीख उठा था, "क्या बकते हो?... मैं इतना गंदा मज़ाक सुनने का आदी नहीं हूँ। कोई मुखौटा नहीं...।"

"विशू! मैं मज़ाक नहीं कर रहा हूँ। मैं तो कोरा सच कह रहा हूँ। कोरा सच!"

इस बार उसे बेहद ग़ुस्सा आ गया। उसकी इच्छा हुई थी, वह इस सूरदास के बच्चे का मुँह नोंच ले। आँखें तो हरामी की जन्म-जन्मान्तर से नुची हैं ही। इस दरमियान गिरीश उसे क्या-क्या बक गया था? उसे मालूम न पड़ा था। वह चौंका था गिरीश के झकझोरने से, "सुनते हो..? यह भी कोरा सच है। मैं देख नहीं सकता हूँ। लेकिन सुनकर पूरा-का-पूरा समझ सकता हूँ। आख़िरकार, मैं तुम्हारा दोस्त हूँ बिन आँखों वाला ही सही।"

गिरीश की संवाद अदायगी से इस बार उसे उस पर दया जैसी चीज़ छाने लगी। किन्तु दया के मोह में अभिनेता और अभिनय मारा जा सकता था। उसने मन की अँगुलियाँ कसीं और गरज उठा- "तुमने ऐसा क्या समझ लिया जो...?"

"जो तुम सुन नहीं सकते हो। विशु! बिन आँखों से तुम्हारा चेहरा साफ दिखता है। तुम कितने मुखौटे लगा लो रात को न सोई हुई आँखें। इनमें पानी भी कम भरा नहीं होता है। माथे से लेकर गाल तक आती-जाती हुई बेढंगी रेखाएँ। जानते हो, कितना भी बनकर हँसो, विद्रूप हँसी मुझसे नहीं छिपती है। विशू! कितना भी नटों की तरह छाती निकालकर अपने साहसी कर्म बखानो लेकिन पर मैं जानता हूँ, तुम डरपोक कोटि के हो। तर्क नहीं कि वितर्क ज़्यादा कोचते हो और यह जीवन के प्रति व्यंग्य प्रस्तुत करते हैं।"

अन्दर-ही-अन्दर पूँछ कटे साँपनुमा वह बिलबिला गया था। उसे लगा कि गिरीश आहिस्ता-आहिस्ता उसके कपड़े उतार रहा है। यदि उसने ज़ोरदार विरोध न किया तो गिरीश उसे एकदम नंगा कर देगा। उसने गिरीश की दृष्टिहीनता पर हमला कर दिया, "हाँ!! क्यों नहीं, गिरीश जो ठहरे तीसरी आँख से सब देख लिया होगा।"

"मेरे बाहरी अंधेपन का जितना चाहो उतना मज़ाक उड़ा लो। लेकिन विशु हक़ीक़त से तुम दूर भागते हो। अभिनय से नहीं, संघर्ष से दुखों को मारो।"

"चुप रहो गिरीश! मैं ही हूँ। तुम्हें ज़रा मुँह क्या लगा लिया, बस हो गए कंधों पर सवार।"

"अच्छा! अच्छा!! तुम गाली-गलौज पर उतर आए हो!"

फिर गिरीश ने मौका ही नहीं दिया था, उसे बोलने का। गिनती गिनाने की तरह एक-एक कर उसके शराबी बाप, निरीह माँ, मधु और राशन वाला काण्ड उसे गिना दिया था। वह सनाका खा गया। ज़रूर किसी ने उसके बारे में बताया होगा। किन्तु किसने? बातों-बातों में उसने ही? पहले तो नहीं, अब ज़रूर गिरीश के रू-ब-रू नंगा खड़ा है। उसने मौनव्रत धारण करना ही उचित समझा था। लेकिन गिरीश बोले चले जा रहा था, "सच से दूर भागना तुम्हारी नियति बन चुकी है। कसम से मेरे दोस्त! यह नियति बिखरने से कुछ समय के लिए बचा सकती है टूटने से नहीं।"

उसका रुआँसा स्वर उभरा, "किसी को तोड़ने से अच्छा है, टूट जाना।"

"यही बौनापन तुम्हें यहाँ तक खींच लाया है। मैं पूछता हूँ। वह क्या है, जो सज-सँवर नहीं सकता?"

"टूटी हुई चीज़ें कितनी भी जोड़ी जाएँ, पर जुड़ नहीं सकती हैं। मान भी लो वे जुड़ जाएँगी लेकिन उस भद्देपन का क्या होगा, जो जुड़ने पर आ जाता है।"

"जिसे तुम भद्दापन कह रहे हो, वह साहस और संघर्ष का चिह्न होगा।"

उसने अफसोस-सा ज़ाहिर करते हुए कहा, "काश तुम, उस भद्देपन को देख पाते जो जुड़ने पर आ ही जाता है।"

बार-बार गिरीश के न देख पाने की लाचारी की शिकायत-सी करने पर गिरीश खीज गया था। गिरीश ने उदाहरण-सा देते हुए तेज़ स्वर में कहा, "लगातार खो-खो करते हुए जो कफ बाहर फेंकते हो। उसकी आवाज़ सुनकर, मुझ जैसा अन्धा क्या, बहरा-अन्धा भी बता देगा कि तुमने वर्षों से टी.बी. पाल रखी है।"

उसने महसूस किया था, नंगा तो पहले से ही हो चुका था। उसके कुछ तर्कों ने उसकी चमड़ी भी उधेड़ दी। उसने भरपूर ज़ोर मारा कुछ बोले, लेकिन जड़ता उसमें छाती गई। उसने माँस के लोथड़े की तरह अपने-आपको ढीला छोड़ दिया था।

कुछ समय सुन्न रहने के बाद उसे गिरीश की आवाज़ फिर कानों में रेंगती सुनाई दी, "मुखौटों से इंसान ज़रा से वक्त के लिए अनजान रह सकता है। सारी ज़िंदगी में ये कठिन ही नहीं, असंभव है। सच का सामना करो क्योंकि अपनी समस्याओं का हल स्वयं ही खोजना पड़ता है। एक पे कई चेहरे लगा लेने से आदमी अपने को ही धोखा देते हुए समाप्त हो जाता है। मुखौटों की बैसाखियों से आदमी रगड़ सकता है, दौड़ना उसके वश की बात नहीं। मेरे अज़ीज़! अब तुम्हारा विकल्प ही अनेकों में मिल जाना है। सारा छूटा और खोया हुआ पा लोगे तब। नहीं, बिल्कुल भी नहीं। हम एक-दूसरे को खो नहीं सकते। विशु, मैं मधु नहीं।"

पूरा-का-पूरा चुक जाने के बाद गिरीश प्रत्युत्तर की परवाह किए बिना लाठी की सावधान-सी करती हुई खट-खट की आवाज़ के साथ दूर हो गया, सदैव-सदैव संग-संग रहने के लिए। और वह कभी अपने-आपको, कभी स्वयं से दूर होती हुई उन आँखों को देखता ही रह गया था।

000

वसीयत

अनुजीत इकबाल

अनुजीत इकबाल
4 राम रहीम एस्टेट, मलाक रेलवे क्रासिंग के पास, नीलमत्था, लखनऊ, उत्तर प्रदेश 226002
मोबाइल- 9919906100
ईमेल– anujeet.lko@gmail.com

प्रेम उमड़ता है तो बरसता भी है। इसकी बौछार के नीचे भीगने के लिए बस निरुपाय अंतर्भाव में रिक्त पात्र सहित खड़े रहना होता है...ज़िंदगी अनूठे, अप्रत्याशित स्वाद देती है और हम उनको कोई संज्ञा नहीं दे पाते। बाहरी तल पर हमको बार-बार खो देना होता है एक दूसरे को लेकिन अंदर के तलों पर असंख्य कथाएँ लिखी हैं...अंनत यात्राओं की महागाथा के रूप में।

मिस अनीता के आसपास यही दुनिया थी, तिलिस्मी दुनिया, प्रेम की दुनिया। अड़तालीस वर्षीय संभ्रांत वर्ग की महिला, थिएटर से जुड़ी हुई। इस उम्र में भी बहुत दिलकश और हसीन, सूरज और चंद्रमा के बराबर- बराबर हिस्सों से बनीं अनीता जी। शिमला की एक शांत सी सड़क पर बड़ा सा उनका दोमंज़िला घर, हरी छत वाला और सामने छोटी-छोटी पहाड़ियाँ और पूर्व से पश्चिम की ओर विस्तारित होती हुई महान् पर्वत श्रृंखला हिमालय।

मिस अनीता व्हिस्की पीती हुईं अपने ख़्यालों में गुम थीं कि मैक्स अलसाते हुए आगे आया और खुशी से गुर्राया। यह सफेद हस्की कुत्ता ही एकमात्र साथी था उनका। अनीता जी के जीवन में व्हिस्की और हस्की के इलावा कोई नहीं था। नीचे का फ्लोर पिछले एक साल से किराये पर दिया था, नोएडा से लड़का है अनिरुद्ध, लगभग तीस वर्ष का, वर्क फ्रॉम होम करता है, यहीं शिमला में रहकर...लेकिन बिल्कुल एकांत प्रेमी है। सिर्फ अपने काम से मतलब और जब खाली होता है तो बाहर बैठकर सामने फैली हुई वृहत् शृंखलाओं को देखता रहता है, डूबकर...जैसे कोई ध्यान में बैठा हो, जैसे अपने दिमाग में सारे दृश्य, पहाड़ धुआँ, धुँध और रात का अंधकार समाहित कर रहा हो। मिस अनीता उस को ग़ौर से देखती रहतीं। उससे बात करने की कोशिश करतीं; लेकिन वह मतलब भर की बात करके चला जाता। आख़िर ऐसा क्या था उस नवयुवक में जो उन्होंने कभी किसी की आँखों में नहीं देखा था। कभी-कभी वे उसको ऊपर वाले कमरे में बुला लेतीं, अपने हाथों से बनाये कप केक खिलाने और चाय के बहाने। अगर वह आ भी जाता तो एक अजीब सी चुप वहाँ छाई रहती और हवाएँ बोझिल हो जातीं। क्यों यह लड़का उनमें बेचैनी और उत्सुकता पैदा कर रहा था? मिस अनीता के मन की किताब के हर कोरे हिस्से पर नई-नई कविताएँ नाचती रहतीं। शून्य और सृष्टि जैसे एक हो रहे थे। उसके उठ के जाने के बाद मिस अनीता कोहनियों को डाइनिंग टेबल पर टिकाए घंटों वह खाली कुर्सी ताकती रहती थीं, जिस पर वह बैठ कर गया होता...फिर उस कप में चाय पीतीं, जिसमें वह पीकर गया होता, शायद उसके होंठों का स्पर्श महसूसने की कोशिश करतीं...इंसानी इश्क़ और जुनूनी हसरतें क्या न करवा लें! उन्होंने उस पर कविताएँ लिखीं। कभी भी सपनों के सच न हो पाने की लाचारी के बावजूद सहसा वो गुनगुनाने लगतीं 'अपनी आँखों के समंदर में उतर जाने दे, तेरा मुजरिम हूँ मुझे डूबकर मर जाने दे।"

अनीता जी अपने पिता की इकलौती संतान थीं और यह घर उनका पुश्तैनी था। माँ-बाप को गुज़रे हुए लगभग दस साल हो चुके थे। पूरा जीवन दिल्ली और मुंबई में थिएटर को दिया। एक्टिंग की, डायरेक्शन की और इन सबके बीच जवानी के दिनों में प्यार में धोखा भी खाया और उसके बाद किसी और की नहीं हो पाईं। नतीजा आज वह बिल्कुल अकेली थीं और अब इस उम्र में वह एक नवयुवक की तरफ आकर्षित हो रही थीं। शायद वे इस लड़के के प्यार में थीं...बेइंतहा प्यार में... अनीता जी ख़ुद अपनी सोच से कभी-कभी सहम जातीं... "नहीं अनीता, यह सफर मुश्किल है, अपनी ही धज्जियाँ उड़ती हैं, कुछ भी शेष नहीं बचेगा। क्यों उसकी और अपनी ज़िंदगी के साथ खिलवाड़ करना?"

एक दिन अचानक मिस अनीता की तबियत ख़राब हो गई, भयंकर ख़राब। उल्टियाँ रुक नहीं रही थीं और वह निढाल होकर बिस्तर पर लेटी रहीं। आधी रात को फिर उल्टी हुई लेकिन इतनी कमज़ोरी कि बिस्तर पर उल्टी हो गई, खून वाली। उन्होंने अपना मोबाइल उठाया और अनिरुद्ध को फ़ोन लगाया लेकिन कुछ बोल नहीं पाईं। अनिरुद्ध कुछ ही क्षणों में उनके कमरे में था और अनीता जी को बस इतना ही याद रहा कि वह उनको गोद में उठाकर सीढ़ियाँ उतरा था, बाद में क्या हुआ उनको कुछ याद नहीं। अगले दिन आँखें खुलीं तो वह सिटी हॉस्पिटल के

बिस्तर पर थीं। अनिरुद्ध पास कुर्सी पर बैठा सो रहा था। कमरे में खालीपन था और खालीपन में ही ख़ूबसूरती समाती है। अनिरुद्ध देखने में कितना ख़ूबसूरत था, अनीता जी उस को एकटक देखते हुए मायावी सपने देखती रहीं...उसके स्पर्श को तरसती रहीं। बाद में धीरे से सपनों की दुनिया से यथार्थ में आईं। आकाशीय अभिलेख का ब्रह्मांडीय ज्ञान रूपी सूर्य प्रकाश, पेड़ों की पत्तियों में से होकर, सामने की दीवार पर विभेदनयुक्त धब्बे बना रहा था। कमरे में धूप की चहलकदमी चालू थी।

अनीता जी धीरे से बोलीं, ''अनिरुद्ध''

अनिरुद्ध हड़बड़ा कर उठा और उनकी तरफ आकर, उनका हाथ पकड़ कर बैठ गया। ''आप ठीक तो हैं?''

अनीता जी चुप रहीं। वे उसके हाथ की नर्मी और गर्माहट महसूस करती रहीं। घाटी की तलहटी पर बहती नदी की गूँज यहाँ तक आ रही थी। ऐसे पलों को पढ़ना ही नहीं होता, सहेजना होता है, इसलिए अनीता जी ने पढ़ना स्थगित रखा... उसका स्पर्श सावन की अनुभूति करा गया। यह भावों से किया गया पावन अभिसिंचन था... कोटिधारा अभिषेक स्वरूप... जिसमें अनीता जी भीग रहीं थीं। कुछ प्रेम 'प्रार्थना' के अजस्र स्रोत होते हैं...वह उसको गले लगाना चाहती थीं।

''आपको कोई तकलीफ़ तो नहीं?'' वह बहुत ही आत्मीयता और प्रेम से बोला।

''तकलीफ़!'' अनीता जी सोच में पड़ गईं। मन की अप्रत्याशित तह में जाना कब आसान है? नारी मन की भावयात्रा ही तकलीफ का पर्याय है।

लेकिन मिस अनीता कुछ बोल नहीं पाईं और बस इतना कहा ''मैं ठीक हूँ।'' और सहसा उन्होंने आँखें बंद कर लीं, कहीं अनिरुद्ध उनकी भावनाएँ न पढ़ ले।

''अब एक बात और जान लीजिए, रात को तो मैं था, समय पर आपको यहाँ ले आया; लेकिन कल को अगर मैं चला गया तो कौन देखेगा आपको?'' उसके चले जाने की बात पर अनीता के अंदर कुछ टूट सा गया।

''एक अकेलापन घिरा हुआ है आपके अंदर, जो बिल्कुल निकलता नहीं, आपको ख़ुद को सँभालना होगा।'' वह बोला।

अनीता जी स्तब्ध थीं। बिल्कुल चुप रहने वाला अनिरुद्ध आज ये सब क्या बोल रहा था?

''अनिरुद्ध, कभी भागना मत मुझसे, वरना..''

अनिरुद्ध मुस्कराया, ''आप ख़ूबसूरत ही नहीं, ख़तरनाक भी हैं।''

दोनों हँसने लगे। हालाँकि अनीता जी को अनिरुद्ध के अंदर अपने प्रति सम्मान ही नज़र आ रहा था, किसी तरह का आकर्षण नहीं। उसी दिन अनीता जी की रिपोर्ट डॉक्टर ने अनिरुद्ध को दी और पता चला कि उनको स्टेज चार का लिवर कैंसर था। दोनों चुपचाप डॉक्टर को ख़ामोशी से सुनते रहे। छुट्टी मिलने के बाद दोनों बुझे-बुझे से घर की ओर चल पड़े। अगले तीन दिन अनीता जी की बीमारी की पैरवी करते हुए अनिरुद्ध ने ज़्यादा समय उन्हीं के कमरे में बिताया। रात को जब वह चला जाता अनीता जी धीरे से उठकर व्हिस्की पी लेतीं।

लॉक डाउन खुल रहा था। कंपनियाँ अपने कर्मचारी वापस बुला रहीं थीं। अनिरुद्ध को भी बुला लिया गया। अनिरुद्ध कुछ दुखी था। शिमला जैसी सुन्दर जगह छोड़नी थी और मिस अनीता को इस बिमारी की हालत में छोड़ना भी ग़लत था। वह रुकना चाहता था लेकिन रुकने का कोई ठोस कारण भी तो नहीं था उसके पास। जब उसने अनीता जी को यह ख़बर दी तो वह कुछ नहीं बोलीं। एकदम चुप...जैसे जब दर्द हद से ज़्यादा बढ़ जाए तो एक 'नम्बनेस' आ जाती है, उनकी वही स्थिति हो गई। जाते वक्त वह बाकी का किराया देने आया था, जिसको लेने से अनीता जी ने मना कर दिया और जाते-जाते उसको अपनी कविताओं की एक डायरी दे दी।

जिस दिन वह गया था उस दिन अनीता जी ने व्हिस्की नहीं पी। बालकनी में बैठी रहीं। मैक्स भी उनके पैरों के पास बैठा रहा। वे धीरे-धीरे भग्न हृदय की मर्मान्तक वेदना में गा रहीं थीं-''कुछ तो दुनिया की इनायात ने दिल तोड़ दिया और कुछ तलखिए हालात ने दिल तोड़ दिया...'' उनके गाने सिर्फ मैक्स सुनता था।

नुकीले पश्चिमी भाग के पर्वत पर धुँधले से बादल, महान् पर्वतीय शृंखलाएँ सब नितांत अकेली...अनीता जी की तरह.. और पीछे का आकाश एकदम काला। शिमला की घाटी, स्याही जैसे रंग का तालाब लग रही थी। रात के सघन अँधेरे में केवल अनीता जी के अरमान जल रहे थे। सारी रात ऐसे ही बैठे-बैठे बीत गई। क्या कोई इतना भी अकेला होता है? प्रेममय होना बहुत श्रम चाहता है...मन पर काबू वैराग्य धारण करने के समान है और वह अनुशीलन का विषय है...न हो दैहिक संबंध...न की गईं हों प्रेम भरी बातें.. फिर भी जो स्थान किसी ने ले लिया वहाँ कोई और...? नामुमकिन। शिमला जाग रहा था। गाड़ियों के हॉर्न, लोगों की आवाज़ें..अनीता जी बेमन से उठीं और अंदर जाकर बिस्तर पर लेट गईं।

अनिरुद्ध नोएडा आ गया था लेकिन शिमला से ज़्यादा उसको अनीता जी याद आती रहीं। उसने उनके बारे में बहुत सोचा...बहुत बार सोचा.. इसके पीछे जो कारण था उसको कुछ कुछ समझ आ रहा था। नोयडा आकर अनिरुद्ध ने थोड़े प्रयास किए और अंततः एक ऐसी कंपनी मिली जो ''वर्क फ्रॉम होम'' के लिए राज़ी थी। शिमला छोड़े हुए आठ महीने हो चुके थे। वह वापस आ रहा था लेकिन यह ख़बर वह अनीता जी को नहीं देना चाहता था। यह ''सरप्राइज़'' था। उसकी अनीता जी से हफ्ते में एक दो बार बात हो जाती थी। अनीता जी अब ज़्यादा बोलती नहीं थीं। आख़िर वह दिन भी आ गया जब अनिरुद्ध शिमला की तरफ निकल पड़ा।

आज अनिरुद्ध को भी नहीं पता था कि वह अनीता जी के पास जाने के लिए इतना बेचैन क्यों था? उसने बैग में से उनकी लिखी डायरी निकाली और उनकी कविताएँ पढ़ने लगा। क्या ही कमाल का लिखती हैं अनीता जी। सारी कविताओं में प्रेम और बिछोह के भाव सघन और संश्लिष्ट...आज रास्ता कटते नहीं कट रहा था, ''सरप्राइज़'' जो देना था उनको।

आख़िर घुमावदार सड़कों से होते हुए शाम को अनिरुद्ध शिमला आ पहुँचा। ड्राइवर

ने गाड़ी घर के बाहर पार्क की। अनिरुद्ध बाहर निकला तो तीन चार लोग वहाँ खड़े नज़र आए। वह घबरा गया। अनीता जी तो किसी से बात नहीं करती थीं फिर ये सब कौन लोग हैं यहाँ। अनिरुद्ध को किसी अनहोनी की आशंका हुई। जल्दी से भाग कर वह उन लोगों के पास गया तो पता चला कि दो दिन से घर अंदर से बंद था और अख़बार, दूध के पैकेट गेट पर ही इकट्ठे हो रहे थे। कुत्ता लगातार भौंक रहा था दिन रात, तो मुहल्ले वालों को शक हुआ। पुलिस बुलवाकर ताला तोड़कर अंदर आकर देखा तो अनीता जी बिस्तर पर मृत पाई गईं।

आज सुबह ही उनका अंतिम संस्कार कर दिया गया था। यह सब सुनकर अनिरुद्ध का गला रुँध गया।

वहाँ सादे कपड़ों में एक वकील साहब भी खड़े थे जो अनीता जी के पिता जी के वकील भी थे। वे अनिरुद्ध को देखते ही उसके पास आ गए। उनको अनिरुद्ध ने एक दो बार पहले भी देखा था।

"मिस्टर अनिरुद्ध, यह कागज़ रख लीजिए। अनीता जी जाने से पहले अपनी सारी संपत्ति आपके नाम कर गईं हैं। उनकी वसीयत के मुताबिक आप यहाँ के नए मालिक हैं।"

अनिरुद्ध कुछ बोल नहीं पाया और आँसू छिपाता हुआ ऊपर वाले कमरे में चला गया, जहाँ अनीता जी रहती थीं। उनकी तस्वीर के सामने खड़ा हो कर अनिरुद्ध के सब्र का बाँध टूट गया और वह बेतहाशा रोने लगा- "अनीता, सोच रहा हूँ किसी युग में तुम ऋषि कन्या रही होगी। नारी मन की अंतरंग तरंगों में बहने के लिए पुरुष को विकास क्रम की एक लंबी यात्रा पूरी करनी है, तुम औरतें बहुआयामी हो... संभव कर लेती हो तुम लोग असंभव को भी.. तुम्हारी वसीयत में मुझे तुम्हारी संपत्ति नहीं, तुम मिल गई... मुझे मिली तुम अदेह होकर...परिज्ञान का वह स्तर, जहाँ अनुपस्थिति भी उपस्थिति बन जाती, समस्त प्रयोजनों की स्वत: सिद्धि बन जाती...काश, तुम समझ पातीं मेरे अव्यक्त संवाद... में भी तुम्हारे प्रेम में था।

000

लघुकथा

योगदान

टीकेश्वर सिन्हा "गब्दीवाला"

पिछले फ्राइडे को सांसद का आगमन हुआ। उनका ख़ूब आवभगत हुआ। बड़े खुश होकर लौटे थे सांसद महोदय भी। अंचल के लोग उनके दर्शन से धन्य हुए। पब्लिक की माँग पर सांसद से गाँव और ब्लॉक को एक से बढ़कर एक सौग़ात मिली। लोगों को लगने लगा कि पूरे क्षेत्र का उद्धार हुआ इस बार। सांसद-आगमन की उपलब्धि पर सब अपने-अपने कर्त्तव्यों की तारीफ़ करते हुए नहीं अघा रहे थे।

"मैं जानता हूँ कि सांसद महोदय को अपने राहुद गाँव तक लाने में मुझे कितना पापड़ बेलना पड़ा है। बाप रे इतनी मेहनत !" अपनी पार्टी के गमछे से माथे को पोंछते हुए सरपंच राधेश्याम ने कहा।

"कई बार उनके घर जाकर हाथ-पाँव जोड़े; तब कहीं हुआ सांसद महोदय का आना।" एक नेता टाइप के शख्स का कहना था।

"यहाँ इतने सारे लोगों के लिए भोजन व्यवस्था करना कोई मामूली बात नहीं है। पूरा बदन दुख रहा है।" यह स्व-सहायता समूह की महिलाओं की आवाज़ थी।

तरह-तरह की बातें सुन कुछ युवकों का कहना हुआ- "इस गाँव से लगे तुमड़ीसुर में पुलिस चौकी बनना तय हुआ। इसमें हम युवाओं की अहम भूमिका है।"

तभी क्षेत्रीय विधायक, "राहुद जैसे पिछड़े गाँव का मैंने उद्धार कर दिया यहाँ कॉलेज खुलवाकर..." कहते हुए अपने पिछलग्गुओं के साथ कार की सामने वाली सीट पर बैठे।

अब सरकारी महकमें वालों की बारी आई। एस डी एम साहब का भी मन कुछ बोलने को हुआ- "यहाँ की पूरी व्यवस्था को मैंने सँभाला है। सांसद साहब मेरी वजह से यहाँ तक पहुँचे। पूरे अंचल को मेरा शुक्रगुज़ार होना चाहिए।"

"अरे ! कोई कुछ भी; और कितना भी करे, कुछ नहीं होने वाला था हम सबके बग़ैर। हम डटे रहे हैं, तब सांसद जैसे नेता इस नानचुक गाँव में आए।" चार-पाँच कोतवाल और पुलिस वाले हँस-हँसकर बतिया रहे थे।

वहीं पर एक रिटायर्ड टीचर चौहान जी खड़े थे। भीड़ की बातें उनके कानों पर पड़ी। फिर नज़र गई अपने हमउम्र आमवृक्ष पर; जिसे हेलीपैड अरेंजमेंट के लिए जड़ सहित काट दिया गया था।

000

टीकेश्वर सिन्हा "गब्दीवाला", व्याख्याता (अंग्रेज़ी), घोटिया-बालोद (छत्तीसगढ़)
मोबाइल- 9753269282

ज़ख़्मी पंखों की फड़फड़ाहट

पंजाबी कहानी

मूल लेखक : अजमेर सिद्धू
अनुवादक: सुभाष नीरव

अजमेर सिद्धू
जंडे हेयर ड्रेसर, चंडीगढ़ रोड, नवां शहर-144514(पंजाब)
मोबाइल- 9463063990
ईमेल- ajmersidhu2007@yahoo.co.in

सुभाष नीरव
78/2 फर्स्ट फ़्लोर, 3 BHK (बैक साइड), K-1 एक्सटेंशन, डीके रोड, चौधरी डेयरी के पास, शानी बाज़ार, मोहन गार्डन, उत्तम नगर, नई दिल्ली 110059
मोबाइल- 09810534373
ईमेल- subhashneerav@gmail.com

"उफ्फ! बहुत गर्मी है। यूँ लगता है जैसे पिछले सारे रिकार्ड तोड़ डालेगी। ससुरी ने साँस लेना मुश्किल किया हुआ है। देखो तो सही, पशुओं-पंछियों की आँखें बाहर निकल रही हैं।" खिड़की में से किसी राहगीर की आवाज़ आई है।

मेरा भी यही हाल है। न बिजली, न कोई हवा का झोंका। हाथ की पंखी ही है। बिंदु मुझे पंखी से हवा कर रही थी। पसीने से तो वह ख़ुद तर हुई पड़ी थी। एक तो मुझे करवट दिला देती, दूसरा पंखी झल देती। उसके सिर के बालों में से भी पसीना चुआता था। जब कोई बूँद मेरे ऊपर गिरती, वह उसी वक्त उस बूँद को और पसीने को साफ कर देती। मेरी माँ, बिंदु को बुरा-भला बोलती मुझे याद आ जाती। बुरा-भला तो बिंदु भी बोल रही थी, पर वह बिजली वालों पर ग़ुस्सा निकाल रही थी। फिर उसने रब को भी धर लिया था - "आज तो पता नहीं कौन पापी आ बैठा! मानों तंदूर तपा रखा है, जान निकाली पड़ी है। एक पत्ता भी नहीं हिलने देता।"

मैं उसकी बात सुनकर मन ही मन मुस्कराया था। मुझे मेरा एस.डी.ओ. जगविंदर कलपता नज़र आया - "फसलों-दरख़्तों को काट-काटकर शहर बसाए जा रहे हैं। नए पेड़ कोई लगाता नहीं। इन शहरों ने हमारी आबोहवा को ज़हरीला कर दिया।... बस बंदा अपनी मौत को आवाज़ लगा रहा है।"

एस.डी.ओ. साहब की ये बातें मैंने उसे बताई नहीं थीं। यदि बता देता तो वह मुँह फुला लेती - "हाँ हाँ, मैं ही तुम्हें गाँव से उखाड़कर शहर लाई हूँ। तुम्हारे गाँव में तो न ढंग का स्कूल, न हस्पताल और सड़कें टूटी हुईं...। मैंने तो तुम्हारे बच्चों का भला सोचा। शहर में रहेंगे, चार अक्खर पढ़ जाएँगे। नहीं तो हमारी तरह भाड़ ही झोकेंगे। हमें तो ग़रीबी ने पढ़ने नहीं दिया। ये पढ़ जाएँगे, घर की जून सुधर जाएगी।"

मैं उसकी ये बातें कई बार सुन चुका हूँ। यदि मैं कुछ कह दूँ, यह क्लेश करती है। लड़ाई-झगड़े से डरते हुए मैंने कुछ नहीं कहा। वैसे इसे मेरी माँ और भाभी बहुत कुछ कह लेती हैं। कहीं-कहीं बहन भी उनका साथ दे देती है। उन्हें लगता है, यही मुझे गाँव से शहर ले गई। वे मेरा अपना खून हैं और इसके बग़ैर भी मेरा गुज़ारा नहीं होता। अब तो मैं यूँ भी इसके अहसानों तले दबा पड़ा हूँ। जिस दिन का एक्सीडेंट हुआ है, यही देखभाल करती है। मेरे लिए तो करवट लेना भी कठिन है। पसीने से तर हुआ पड़ा हूँ। ख़ुद तो यह सुबह से तीन बार बदन पर पानी डाल चुकी है। इसने मेरे बदन पर भी तौलिया गीला करके फेर दिया था।

जून का दूसरा हफ्ता चल रहा है। जैवी और जाह्नवी को भी तीन दिन पहले ही गर्मियों की छुट्टियाँ हुई हैं। फूल जैसे बच्चे हैं। जैवी यू.के.जी में, जाह्नवी तीसरी में पढ़ती है। रौशनी मॉडल स्कूल वाली प्रिंसिपल छुट्टियाँ कर ही नहीं रही थी। यह तो अब जब जैवी जितने बच्चे बेहोश होकर गिरने लगे, तब जाकर छुट्टियाँ कीं। ये दोनों सुबह से पानी में घुसे हुए हैं। बिंदु बहुत शोर मचाती रही कि पानी ख़त्म हो जाएगा। धरती तो सूखे जा रही है, पर बच्चे कहाँ मानने वाले हैं? यह तो संयोग से घंटे भर को लाइट आ गई। दुबारा टंकी भर ली।

मेरी पत्नी बिंदु बहुत तेज़-तर्रार औरत है। काम की बहुत फुर्तीली है। जब यह टेलीविज़न ऑन कर लेती है, फिर तो बस यह डूब ही जाती है - सासों, बहुओं के सीरियलों में। सीरियल ख़त्म हुए तो व्हट्सअप, फेसबुक...। बस, दिन-रात यही झंझट... पर दवाई का टाइम नहीं भूलती। वैसे जब काम में लगती है तो निपटाकर ही दम लेती है।

गाँव में साझा परिवार हुआ करता था। माँ-बापू, बड़े भाई जी का परिवार और चारों हम। भैंसें पाल रखी थीं। घर का गुज़ारा दूध बेचकर करते थे। वहाँ काम ख़त्म नहीं होता था। दूध दुहने और गोबर-कूड़े का काम भाभी के साथ बिंदु को भी करवाना पड़ता था। ऊपर से भाभी की नुक्ताचीनी। यहाँ कोई ख़ास काम नहीं। हम शहर से बाहर रहते हैं। नई कालोनी काटी जा रही है। अभी थोड़े-बहुत ही घर बने हैं। हमारे वाला मकान करीब डेढ़ सौ गज़ में बना। इसमें दो छोटे-

छोटे कमरे, रसोई, बाथरूम और लॉबी हैं। यह घर में पौचा लगाती है या फिर तीन वक्त फुलके उतारने होते हैं। फिर सारा दिन फ़ोन पर...।

हमारा मकान शहर से थोड़ा बाहर होने के कारण कम किराये पर मिल गया था। यहाँ मकान कम हैं और खाली प्लाट ज़्यादा हैं। दरख़्तों को तो काटकर ढेर कर दिया गया है। कुओं पर मोटरों वाले खंडहरनुमा घर आज भी अपने मालिकों की प्रतीक्षा में भाँय-भाँय कर रहे हैं। गरम लू ने घर को भट्ठी बना रखा है। बिंदु ने परदे भी टाँग रखे हैं। फिर भी लू अंदर आकर झुलसा रही है। मेरी पानी पीने की भी समस्या है। जितना अधिक पानी पीता हूँ, उतना ही पेशाब की हाजत होती है। बिंदु उसी वक्त पॉट उठाकर खड़ी हो जाती है। बलिहारी जाता हूँ इस माँ की बेटी के, यह माथे पर बल नहीं डालती।

बिंदु के माता-पिता की ओर से दोपहर तक तीन फ़ोन आए थे। दोपहर के बाद फ़ोन बंद हुआ ही नहीं। दरअसल कल बिंदु के भाई का विवाह है। मेरा एक्सीडेंट हुए पच्चीस दिन हो चुके हैं। ग्यारह दिन अस्पताल में रहा। सरकारी अस्पतालों की दुर्दशा के कारण मुझे हड्डियों के प्राइवेट अस्पताल में ले गए, पर वहाँ डॉक्टर बड़ा नालायक था। जब भी दर्द होने लगता, उसी वक्त पेन किलर के टीके लगा देते। ग्यारह दिन में एक बार भी शौच न जा सका। घर आया तो अंदर ज़ख़्म हो गए। बवासीर से लहुलूहान हो गया। अब जितना दर्द टाँग और पैर में हो रहा है, उतना गुदा में भी होता है। बहन और माँ मेरी हालत देखकर रो पड़ी थीं।

"इसे कितना कहा था, परिवार में रहा करते हैं। दुख-सुख कट जाते हैं।" पॉट धोता भाई भी दुखी होकर बोला था।

गाँव छोड़कर जब हम शहर में रहने लगे, मुझे भी लगा था कि हम अकेले हो गए हैं। परंतु बिंदु मुझे टूटने से बचाती रही। उसके मम्मी-डैडी के चक्कर बढ़ गए थे। साला और साली कई कई दिन आकर रह जाते। अब उनका विवाह मेरे एक्सीडेंट होने से पहले का तय किया हुआ था। बिंदु ने अपने माता-पिता से साफ़ कह दिया था कि वह विवाह में शामिल नहीं होगी। हाँ, यदि विवाह में शामिल करना ज़रूरी समझते हो तो इनके ठीक होने तक विवाह को आगे बढ़ा दो। इसकी ऐसी बातों के कारण मैं अपने माँ-बाप और बहन-भाई को छोड़कर आ गया था। पर इसके माता-पिता माने नहीं थे। इस पगली को यह नहीं पता कि अब तो मौत भी हो जाए, तब भी लोग विवाह कर लेते हैं। मेरे सास-ससुर कहने लगे, "हमारा लड़का सऊदी अरब से दो साल बाद दो महीने की छुट्टी आया है। फिर उसे अगले साल आना पड़ेगा।"

ख़ैर... बिंदु आज भी दोपहर तक उन्हें मना करती रही। जब वह मुझे गाँव से शहर लेकर आई थी, उसने मेरे साथ कुछ वायदे किए थे। अब वह उन्हें निभाना चाहती थी। मेरे माँ-बाप या बहन-भाई का अहसान तो वह बिल्कुल नहीं लेना चाहती थी। मैं उनके बग़ैर अकेला रह गया हूँ।

शहर आए को हमें दो बरस हो गए हैं। यहाँ इसने मेरा कोई यार-दोस्त भी नहीं बनने दिया। यदि कोई मेरे महकमे वाला आ जाए, यह उसको झेलती नहीं। मेरे रिश्तेदारों को देखकर तो इसके शूल चुभने लगते हैं। इसके माँ-बाप डेढ़-दो सौ किलोमीटर की दूरी पर हैं। यहाँ दुख-सुख में हमारा कोई साझीदार नहीं।

अब यह विवाह पर जाए तो कैसे जाए। पहले इसने अपने भाई के कहने पर स्कीम बनाई कि हम चारों बारात वाले दिन कार में आ जाएँगे। मुझे वहाँ एक कमरे में लिटा देंगे और ख़ुद बच्चों को लेकर बारात में चली जाएगी। इस स्कीम को मैंने पूरा नहीं होने दिया। मुझे अपना जुलूस निकलवाना है? ज़ख़्म कच्चे हैं। कहीं ज़्यादा हालत न बिगड़ जाए। इसकी माँ बड़ी सियासत वाली है। रोती हुई का फ़ोन आया- "बिंदु बेटी, तेरा इकलौता भाई है। विवाह कहीं रोज़- रोज़ होता है? अगर हरजिंदर आने को नहीं मानता, तू बच्चों को लेकर आ जा। इसके पास किसी को छोड़ आ। अपने जेठ को फ़ोन कर ले। वे इतने तो निर्मोही नहीं होने वाले।"

एक तो गर्मी बहुत है, दूसरा इन फ़ोनों ने अक्ल मार रखी है। विवाह में जाया जाए या न, बिंदु इस दुविधा में फँस गई। यह कमरे में इधर-उधर चक्कर काटने लगी। कभी बाहर चली जाती, कभी अंदर आ जाती। बेचारी का मुँह लटका-सा पड़ा है। मेरे से इसकी हालत न देखी गई। ऊबकर मैंने कह दिया, "जा।" पहले तो कहे कि सवेरे सीधी बारात में जाएगी। जब इसने अपनी माँ को सवेरे आने का कहा तो इससे छोटी बहन पंगा डालकर बैठ गई। वह कहने लगी, "दीदी, हम तेरे बिना जागो (विवाह की एक रस्म) नहीं निकालेंगी।" इसका भी 'जागो' में नाचने को दिल उतावला हो रहा था।

दोपहर ढल चुकी थी। बाहर की धूप से मुझे लगा, सूरज पश्चिम की ओर थोड़ा और उतर आया होगा। रसोई से कमरे तक इसके चक्कर बढ़ गए थे। मुझे कभी सूप बनाकर दे और कभी फ्रूट काटकर। मुझे लग रहा था, इसका ध्यान मेरी तरफ नहीं। उसकी रूह तो विवाह में घूम रही है। मैंने कहा, "बच्चों को तैयार कर और जा।" जो टैक्सीवाला मुझे अस्पताल लेकर जाया करता था, मैंने फ़ोन करके उसे बुला लिया। इसने गाँव में भाई को फ़ोन कर दिया। इसके मामा का लड़का गुग्गू शहर में लड़कों के साथ ख़रीद-फरोख़्त करने आया हुआ था, इसने उसे बस पकड़कर आने के लिए कह दिया। इसके होते हुए लाइट भी आ गई।

फिर आधे घंटे में ख़ुद भी तैयार हुई और बच्चों को भी कपड़े पहना दिए। मेरे बेड के साथ टेबल जोड़ा। टेबल पर खाना बनाकर रखा। वाटर कूलर, बर्तन, फ्रूट, छोले, बिस्कुट, टॉर्च, टीवी का रिमोट और अन्य मेरे प्रयोग में आने वाला ज़रूरी सामान इसी दौरान रखा। मैंने एक लंबी सोटी भी पास में रखवाई। वह दौड़ती-भागती फिर रही थी। ज्यों ही कार आई, वह बच्चों के संग उड़ गई। मुझे बीस-पच्चीस मिनट बाद लगने लगा, मैं फिर अकेला रह गया हूँ।

वह मुझे बाँह का सहारा देकर उठाती थी। फिर मैं बेड की पुश्त से पीठ लगाकर बैठ जाता था। धीरे-धीरे खाना खा लेता। तौलिये से हाथ-मुँह साफ करके वह दुबारा मुझे सहारा

देकर लिटा जाती। घुटनों से लेकर पैर की उँगलियों तक पलस्तर लगा हुआ है। यह दायीं टाँग मोटे सिहराने पर रखी हुई है। मैं उसके मामा के लड़के का इंतज़ार कर रहा हूँ। तीन घंटे का बस का सफ़र है। फ़ोन किए को करीब घंटा भर बीता है। वह करीब दो घंटों तक आ जाएगा। बिंदु के फ़ोन की घंटी बजी है - "मुझे लगता है, गुग्गू नहीं आने वाला। यह पूछने के लिए फ़ोन किया था कि कहाँ तक पहुँचा? उसने फ़ोन ही नहीं उठाया। साथ वालों से पता चला, वह ज़्यादा शराब पीने के बाद कहीं लेटा पड़ा है।... तुम गाँव से भाजी को बुला लो।" उसकी आवाज़ में से शर्मिन्दगी झलकी। मैंने उसी वक्त बड़े भाई को फ़ोन कर लिया।

"सूरज छिपने को है, यह कौन-सा वक्त हुआ शहर आने का? पच्चीस किलोमीटर का रास्ता है। अगर मैं मोटर साइकिल पर आऊँ, स्मैकिये घेर कर लूटपाट करेंगे और कुटापा अलग...। बात सुन हरजिंदर... तू जैसे-तैसे रात काट ले। मैं सवेरे-सवेरे भैंसें दुह कर आ जाऊँगा। साथ ही तेरी भाभी से रोटी पकवाकर ले आऊँगा।" बड़े भाई ने यह कहकर फ़ोन काट दिया था।

इस वक्त रात के आठ बजे हैं। बिंदु खाना खा लेने के लिए फ़ोन किए जा रही है। प्यास बहुत लग रही है। इसे गए हुए को दो घंटे हो चुके हैं। तीन बार पानी पी चुका हूँ। लेटे-लेटे करवट लेकर गिलास को मुँह लगाया। दो घूँट अंदर आते हैं और दो घूँट बिस्तर पर गिर पड़ते हैं। आख़िर, खाना खाने के लिए तो उठना ही पड़ेगा। सिरहाना टाँग के नीचे से कैसे खीचूँ? टाँग उठाई नहीं जा रही। मैंने हाथ से सिरहाना खींचकर एक तरफ कर दिया है। दर्द शुरू हो गया है। कोई बात नहीं। अब बैठना तो है ही। मैं घिसट-घिसट कर बिस्तर की पीठ की ओर बढ़ रहा हूँ। कुहनियों पर बोझ डालकर पीठ पीछे टिका ली है। दर्द से मेरी कराह निकली है। मैंने टीस को पी लिया है।

'शुक्र है, अन्न तो मुँह को लगा।' मैं खाना खाने में सफल हो गया हूँ। बिंदु हर पंद्रह-बीस मिनट बाद फ़ोन करके हाल पूछ लेती है। मुझे उम्मीद थी, वह नौ बजे से पहले पहले अपने गाँव में पहुँच जाएगी। यही हुआ। उसने कार से उतरते ही फ़ोन लगाया। पीछे से डी.जे. वालों के गीत-संगीत की कानफोड़ू आवाज़ें आ रही हैं। अब वह रिश्तेदारी में आई और ददिहाल की औरतों द्वारा गाये जाने वाले विवाह गीतों में डूब जाएगी।

बोली, "सुबह फ़ोन करूँगी। अगर ज़रूरत पड़े तो तुम ख़ुद कर लेना।" मैं विवाह में व्यवधान थोड़ा डालूँगा। रात जैसे-तैसे काट लूँगा। सवेरे बड़ा भाई आ ही जाएगा। अगली रात तक वह लौट आएगी।

मैं सोचता हूँ, आदमी अपने आप को अकेला क्यों समझता है? एस.डी.ओ. कह रहा था - "इस भाग-दौड़ वाले सिस्टम ने आदमी को परिवार और समाज से तोड़ दिया है। आज के आदमी को अकेला कर दिया। उसके अंदर एक डर भर दिया।"

दर्द उठता है। पलस्तर के अंदर से टाँग पर खारिश होने लगी है। सलाई के साथ खाज करता हूँ। दर्द के बारे में बिंदु को थोड़ा बताऊँ? पानी का गिलास उठाने लगा था, वह बिखर गया। अब कोई न कोई समस्या आई रहेगी। मैं चाहता हूँ, यह भाई के विवाह में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले। जब मुझे पंप ऑपरेटर की नौकरी मिली थी, मेरी बहन को भी बहुत खुशी हुई थी। और फिर मेरी शादी में उसने ख़ूब धमालें मचाई थीं। वह तो दुख-सुख में अपनी ससुराल से दौड़ी आया करती थी। अब तो बिंदु ने जुदा करवाकर उसके मन पर भी चोट मारी है। वह मेरे एक्सीडेंट वाले दिन बहुत कलपी थी।

मैं सब्ज़ी लेने गया था। बाइक लेकर सड़क पर चढ़ा ही था, सड़क पर बड़ी कार खड़ी थी। जैसे ही उसके करीब से गुज़रने लगा, ड्राइवर की सीट पर बैठे लड़के ने कार का दरवाज़ा खोल दिया था। अगले दिन अस्पताल में ही होश आई थी। मेरा पैर का चूरा हुआ पड़ा था। घुटने तक टाँग कई जगह से टूट गई थी। आपरेशन थियेटर से बाहर निकाला तो बहन धाहें मारकर रो पड़ी। मैंने अपना ध्यान बहन के रोने से हटाकर बिंदु की ओर कर लिया है। वह तो 'जागो' में घूमती होगी। लड़कियों ने गलियों में उधम मचा रखा होगा। दर्द की लहरें उठनी शुरू हो गई हैं। नींद नहीं आ रही। उसका फ़ोन आया है- "ठीक हो जी?...अच्छा, अगर दर्द नहीं हट रहा हो तो दर्द और नींद की गोली खाकर सो जाओ।"

दोनों गोलियाँ पानी से अंदर गटकता हूँ। सोटी के सहारे टी.वी. और लाइट वाले बटन दबाये हैं। कमरे में अँधेरा हो गया है। मेरे शरीर में से एक तार-सी गुज़री है। मानों मैं घुप्प अँधेरे वाले जंगल में होऊँ। मैंने आँखें मूँद ली हैं। गोलियों का असर होना शुरू हो गया लगता है। आँखें बोझिल होने लगी हैं।

...अरे! यह क्या? बड़ी अच्छी आँख लग गई थी, नींद खुल गई। मैं सबसे पहले पंखे की तरफ देखता हूँ। अँधेरे में कुछ पता नहीं चलता। शायद वह फुल स्पीड पर चल रहा है। तेज़ हवा जो आ रही है। मैं टॉर्च जलाता हूँ। रोशनी पंखे की पंखुड़ियों पर फेंकता हूँ। वे चमकने लगती हैं। कुछ पता नहीं चला। मैं टॉर्च और सोटी की मदद से लाइट वाला बटन दबाता हूँ। कमरे में रोशनी फैल जाती है। शुक्र है, पंखा ठीक-ठाक चल रहा है। बेयरिंग में से घीं-घीं की आवाज़ आई है। मैं सोटी से बटन दबाकर पंखा बंद करता हूँ।

मैंने मोबाइल पर टाइम देखा। अभी ग्यारह बजने में सात मिनट रहते हैं। शायद मैं नींद में था या अर्द्धनिद्रा में। मुझे सपना यह आया कि पंखे की पंखुड़ियाँ खुल गई हैं। एक पंखुड़ी गिर कर मेरे माथे पर बजी। माथा चिथड़े-चिथड़े हो गया था। जब से मेरी आँख खुली है, मैं सहमा बैठा हूँ। मेरे दोनों हाथ माथे पर हैं। अब पंखा बंद किया हुआ है। कुछ ही पलों में पसीने से तर-ब-तर हो उठा हूँ। मैं पंखी झलने लगा हूँ। हाथ थक गया है। मैंने पंखी एक तरफ रखकर आँखें मूँद ली हैं। मच्छर 'घूँ-घूँ' कर रहा है। कान या माथे पर काटकर चला जाता है। मैंने पानी पिया है।

मैंने सोटी को पंखे की पंखुड़ियों पर मारा है। ये नीचे नहीं गिरीं। सोटी से उन्हें हिला हिलाकर देखता हूँ। मेरी सोच डर के समंदर में गोते खा रही है। सोचता हूँ कि बिस्तर पर पड़ा हुआ बीमार आदमी कोई मुसीबत आने पर कर भी क्या सकता है? मुझे टी.वी. पर ख़बरों के दौरान भूकंप के आने पर किसी शहर के

लोगों में मची भगदड़ याद हो आई है। लोग हलके झटकों से नींद से जाग पड़े और घरों से निकलकर मैदानों में, सड़कों पर इकट्ठा हो गए, पर जो लोग अस्पतालों में पड़े थे, घरों में बीमारी के साथ लड़ते हुए बिस्तरों पर सालों से पड़े थे, वे सब मौत के साए तले आ गए। लाशें बिछी हुई हैं। मुझे कँपकँपी छिड़ गई है। मैंने पंखे के नटों को सोटी से फिर हिलाकर देखा है। नटों के ढीले होने के बारे में बिंदु ने मुझे ख़ुद बताया था, पर यदि नट ढीले होते, अब तक पंखुड़ियाँ गिर चुकी होतीं। अप्रैल महीने से पंखा चल रहा है। गर्मी में मेरा साँस घुटने लगा है। अगर मैंने पंखा न चलाया तो मर जाऊँगा। मैंने फिर सोटी से बटन दबा दिया है। हवा आने लगी है। मेरी साँस में साँस आई है।

अब मुझे नींद नहीं आएगी। घबराया-सहमा सा बैठा हूँ। एक तरफ दर्द ने मेरी जान निकाल रखी है, दूसरा सारा ध्यान पंखे की तरफ है। मैं घिसटते हुए बेड के दूसरी साइड में हो गया हूँ। यहाँ से पंखा थोड़ा दूर है। पर पंखा फुल स्पीड पर चल रहा है। अगर पंखुड़ियाँ खुल जाएँ तो ये कमरे में कहीं भी गिर सकती हैं। एकबार सोचता हूँ, इसकी स्पीड कम कर दूँ। पर करेगा कौन? मैं तो बैड पर से उतर नहीं सकता। अगर उतर भी जाऊँ, एक टाँग के सहारे चलूँगा कैसे? मैं सोटी के साथ रैगुलेटर घुमाकर देखता हूँ। सोटी का सिरा फिसल-फिसल जा रहा है। मैं बार-बार कोशिश करता हूँ, पर सोटी टिकती ही नहीं। इधर पंखुड़ियाँ 'चर्र चर्र'की आवाज़ करने लगी हैं। अब नहीं बचता। शरीर में सिहरन-सी दौड़ गई है। मैंने बटन पर सोटी दबाई है। पंखा फिर बंद हो गया है।

होंठ सूखने लगे हैं। मैं लेटे-लेटे पानी गिलास में डालता हूँ। एक ही साँस में पी जाता हूँ। दस मिनट नहीं बीतते कि कमरा तपिश छोड़नी शुरू कर देता है। पसीने से कपड़े भीग गए हैं। मैंने टी-शर्ट उतार दी है। निक्कर पहनकर बैठा हुआ हूँ। बैठा भी नहीं जा रहा। दर्द से बुरा हाल है। बिंदु कई बार कह चुकी थी कि कूलर ले लो, मैं ही नहीं माना। पंप आपरेटर की तनख्वाह ही कितनी होती है? बच्चों की पढ़ाई और ऊपर से शहर के ख़र्चे। तब अगर हिम्मत करके कूलर ले लेता तो आज यह दिक्कत न होती। कूलर तो कमरे के बाहर जाली के आगे रखना था। हवा के बग़ैर रात कैसे काटूँगा?

अगर फ़ोन करना हो तो किसे करूँ? शहर में कोई दोस्त नहीं। जो आसपास पाँच-सात घर हैं, इन्होंने कभी सीधे मुँह बुलाया ही नहीं। ये शहर की तंग गलियों में से आ कर यहाँ बसे हैं। मेरे विभाग वाले दो-चार मुलाज़िम हैं, पर वे दूर-दराज़ के गाँव से हैं। मैं मोबाइल में फीड किए हुए नाम देखने लगता हूँ। इनमें से इस टाइम आने वाला कोई नहीं। अरे वाह! इसे तो मैं भूला ही बैठा था। विंदर बिजली मैकेनिक। इसका घर तो शहर में ही है। मैंने विंदर का नंबर लगाया। पाँच बार नंबर लगा चुका हूँ। वह उठाता ही नहीं। मैं भी मूर्ख हूँ। यह हरामी तो दिन में भी फ़ोन नहीं उठाता। रात में कहाँ उठा लेगा? गर्मी के दिनों में इलैक्ट्रीशियन के पास मरने की फ़ुरसत नहीं होती। विवश हो मैं फ़ोन एक तरफ रख देता हूँ। मैं अड़ोस-पड़ोस को आवाज़ें लगा रहा हूँ। कोई नहीं सुन रहा। हारकर चुप हो जाता हूँ।

शहर और गाँव के पड़ोस में बहुत फर्क़ होता है। गाँव के लोग दुख-दर्द के अधिक साझीदार होते हैं। शहर में किसी के पास टाइम कहाँ? मुझे अपने दादा की बताई बात याद आ गई।

'तब कच्चे कोठे थे, खुले आँगन और... एक बुज़ुर्ग बीमार पड़ गया। शहर से डॉक्टर लाया गया। ख़ूब सर्दी का मौसम था। जब डॉक्टर दवा देकर बाहर निकला, उसकी आँखें फटी की फटी रह गईं। उसने देखा, तीस-चालीस के करीब औरतें और मर्द खेसियाँ लपेटे कच्ची दीवार के साथ पीठ टिकाकर बैठे थे। वे ठंड में ठिठुरते हुए भी सब्र के साथ हाथ जोड़े बैठे थे। डॉक्टर ने कहा, "बुज़ुर्ग को कुछ नहीं हो सकता। मेरी दवा से ज़्यादा गाँव के लोगों की दुआ उसको बचा लेगी।"

मेरा एस.डी.ओ. कहा करता है -"गाँव में लोग किसी विपदा, संकट, बीमारी या मौत के समय इकट्ठे हो जाते थे। उनके अंदर मोह-प्यार अधिक था। अब तो वहाँ भी हालात बदल गए हैं। आधुनिक दौर में मनुष्य आत्म-केंद्रित हो गया है और घर से भी जुड़ा हुआ नहीं है।"

मैं गाँव से टूटकर फिर से अपने कमरे से जुड़ गया हूँ। मेरी आँखें सूज गई लगती हैं। कल रात भी सो नहीं पाया था, दिन के समय भी नहीं। दो दिन से लाइट ही नहीं थी। आँखों में चुभन होने लगी है। सिर भारी होकर दुखने लगा है। अब तो रात काफ़ी बीत गई है। गर्मी कम हो जानी चाहिए थी, पर मौसम में बदलाव नहीं आ रहा। कमरा पहले जितना ही गरम है। शुक्र करता हूँ, अभी जुलाई का महीना नहीं है। तब उमस बहुत होती है और चिपचिपाहट अलग। पंखी हिला हिलाकर बाँह दुखने लगी है। आँखों में लाली भी बढ़ गई होगी।

यदि मैं न सोया, बीमार पड़ जाऊँगा। मेरे लिए सोना ज़रूरी है। अपने-अपने शरीर की तासीर होती है। ज़रा-सा खटका होने पर आँख खुल जाती है। गर्मी में तो मुझे कभी नींद आई ही नहीं। मैं हर हालत में सोना चाहता हूँ। देखी जाएगी, कुछ नहीं होने वाला। अगर पहले दो-ढाई महीने बचे रहे हैं, आज भी कुछ नहीं होगा। यह सोचकर मैं सोटी से पंखे का बटन दबा देता हूँ। पंखे ने स्पीड पकड़ ली है। वाह! कितनी राहत महसूस हुई है। बमुश्किल साँस में साँस आई है। मैं पंखे से दूर दीवार की ओर होकर लेट गया हूँ। लाइट जान बूझकर बंद नहीं की। आँखों पर उँगलियाँ रख ली हैं। उँगलियों की झिर्रियों में से तेज़ चलते पंखे की पंखुड़ियों को देखता हूँ। मेरी आँखें भारी होने लग पड़ी हैं। मैं न सोये में हूँ, न जागते में। मेरे कान पंखे की आवाज़ की तरफ लगे हुए हैं। पंखुड़ियाँ ज़रा-सी भी आवाज़ करती हैं तो झट आँखें खोल लेता हूँ। कभी बेयरिंग 'चीं-चीं'करते हैं, पर मुझे इस आवाज़ से डर नहीं लगता। सिर्फ़ पंखुड़ियों की चिरर-चिरर की आवाज़ मुझे डराती है। हो सकता है, हवा-हवा के साथ टकरा कर पंखुड़ियों से बजती हो और आवाज़ पैदा करती हो।... लो, मारे गए। पंखुड़ी की ज़रा-सी आवाज़ क्या आई कि इसने जान ही निकाल कर रख दी।

मुझे अपने गाँव वाली बेबे देबो की कहानी याद आ गई है, जो बिस्तर पर बीमार पड़ी रोज़ रब से 'उठा ले भैड़े' की अरदासें किया करती थी। एक दिन घर के बुज़ुर्ग के यह कहने पर कि खाट के नीचे साँप है, वह उछलकर खड़ी हो गई थी। मैंने कई बार पानी की टंकी पर जहाँ मेरी ड्यूटी है, यह बात सुनाई। एक दिन एस.डी.ओ. कहने लगा - "वैसे भी मौत से ज़्यादा मरने का भय तंग करता है। दहशत में जीता मनुष्य मौत से भी बुरे समय में से गुज़रता है।"

मैं मौत वाले डर में से निकलकर इसके हल के बारे में सोचने लगा हूँ। दूसरे कमरे में टेबल फैन पड़ा है। मगर उस कमरे तक जाऊँ कैसे? वैसे, जिस दिन से गरमी बहुत पड़ने लगी है, मैंने कहा था कि टेबल फैन चला लिया करो। बिंदु कहने लगी, "बिल ज़्यादा आता है। एक से ही गुज़ारा करो। नलके पर पुरानी मोटर लगी है, एक घंटे में टंकी भरती है। यह मोटर मीटर को बहुत घुमाती है। मालिकों से इसे बदलने के लिए कहो।" अब समस्या तो टेबल फैन तक पहुँचने की है। न नौ मन तेल हो, न राधा नाचे।

मैं दुबारा सोने की कोशिश करता हूँ। चार- पाँच खर्राटे बजे हैं। खटके से नींद फिर डिस्टर्ब हो गई। मुझे सिरदर्द से थोड़ी-सी राहत मिली थी। यदि न सोया तो दुबारा सिर भारी हो जाएगा और दर्द करने लगेगा। हवा ठंडक पैदा कर रही है। मेरी आँखें मुँदती जा रही हैं। मैं हड़बड़ाकर उठा हूँ। मुश्किल से आधा घंटा आँख लगी होगी। मुझे गाँव वाले मास्टर गुरजीत की लड़की याद आ गई। मास्टर गुरजीत की लड़की ग्यारह-बारह साल की होगी। उन दिनों में भी आजकल की तरह भीषण गर्मी थी। वे पिता-पुत्र दूसरे कमरे में सोये पड़े थे और माँ-बेटी बैठक के साथ वाले कमरे में। मास्टर की पत्नी दीवार की तरफ सोई पड़ी थी। पंखे के बिल्कुल नीचे उसकी बेटी गहरी नींद में थी। अचानक हुक खुलने से रात को पंखा छत से नीचे आ गिरा था। संयोग से पंखे की मोटरवाला हिस्सा बेड से टकराकर फर्श पर जा गिरा था, पर गिरते गिरते उसकी एक पंखुड़ी सोई हुई लड़की के मुँह पर बजी थी। मुँह की सर्जरी ने लड़की का बहुत कुछ बचा लिया था, पर पहले वाली सुंदरता नहीं रही थी।

मेरी आँखों के सामने वह सारा दृश्य साकार हो उठा। शोर सुनकर हम दौड़े थे। तड़प रही लड़की की ओर देखा नहीं जाता था। चेहरे का कट याद करके काँप गया हूँ। काँपते काँपते उठकर बैठ गया हूँ। सोटी उठाकर बटन दबाया है। पंखा बंद हो गया है। अब चाहे जो हो, इसे नहीं चलाऊँगा। मैंने बल्ब भी बुझा दिया है। मच्छर घूँ-घूँ करने लगे हैं। मारने की कोशिश करता हूँ, पर हाथ नहीं आते। यदि एकाध हाथ आ भी जाए, दूसरे और ज़्यादा करीब आकर गाना गाने लगते हैं। चलो, कोई बात नहीं। अब तो यह सब सहना ही पड़ेगा।

गुरद्वारे के पाठी की आवाज़ आई है। वह बाबा फरीद का श्लोक गा रहा है - 'इनी निक्की जंघीये थल डूंगर भविओम। अज्ज फरीदै कुज्जड़ा सै कोहाँ थीओम।

हमसे दो किलोमीटर की दूरी पर गाँव सलोह है। वहाँ के गुरद्वारा साहिब में अखंड पाठ चलते रहते हैं। मैं परेशानी से ध्यान हटाने के लिए उन श्लोकों में डूब गया हूँ। बाबा ने मनुष्य की सामर्थ्य और असमर्थता का कितना सुंदर वर्णन किया है। मुझे ख़ुद को बिस्तर पर पड़ी अपनी असमर्थ देह का अहसास हुए जाता है।

दिन चढ़ गया। पंछियों के गीत राहत दे रहे हैं। मैंने गाँव में फ़ोन लगाया है। बड़े भाई को जल्दी आने के लिए कहा है। सवेरे-सवेरे तपिश नहीं है। ज्यों-ज्यों सूरज की लाली बढ़ेगी, उतनी ही तेज़ी से आग बरसनी शुरू हो जाएगी।

सात बज गए हैं। गर्मी अपने रंग दिखाने लगी है। शुक्र है, बड़े भाई जी आ गए हैं। अब मुझे किसी की परवाह नहीं। मेरा भाई आ गया। मुझसे खुशी सँभाली नहीं जा रही। सबसे पहले भाई को पंखे के नट कसने के लिए कहता हूँ। उसे सारी घटना नहीं बताता। भाई टेबल बेड पर रख, ख़ुद टेबल पर खड़े होकर नट कसने लगा है। यही एक कोख से जन्में का सुख होता है।

"जिंदे, नट ढीले नहीं थे। फिर भी मैंने और कस दिए हैं।" बड़े भाई ने टेबल से उतरते हुए मुझे बताया है।

पत्नी ने दीवाली से एक दिन पहले घर की साफ़-सफाई करते हुए पंखा साफ़ किया था और पंखुड़ियों पर अख़बारें चढ़ाई थीं। तब उसने मुझे नट कसने के लिए कहा था। उस दिन बुखार ने मेरा हाल बुरा किया हुआ था। दस-बारह दिन बिस्तर पर से ही नहीं उठा था। फिर मैंने दूसरे कमरे में सोना शुरू कर दिया था। एक तरह से दिमाग़ से ही उतर गई नट कसने वाली बात। बड़े भाई ने पंखा चलाया है। बर्फ़ डालकर लस्सी का गिलास दिया है। हवा के साथ चैन तो आया... तीन गिलास लस्सी के पीकर साँस लिया। बिंदु के फ़ोन की घंटी बजी है।

"मैंने कहा जी, रात ठीक-ठाक रहे? शुक्र है... जान मुट्ठी में रही। भाजी?... अच्छा, भाजी से कहो, पहले खाना खिला दें। बारात लेट हो सकती है। भाजी से कहना, रात में गाँव न जाएँ। वैसे मैं रात तक पहुँचने की कोशिश करूँगी।"

"अच्छा, एक बात बता। अपने पंखे के नट ढीले थे?"

"हाँ, ढीले थे, पर मैंने सर्दियों में कसवा लिए थे। एक दिन तुम घर नहीं थे। विंदर बिजली वाला मोटर ठीक करने आया तो उसी से कसवा लिए थे। क्यों? क्या बात हुई?" बिंदु चिंतित हो गई लगती है।

"कुछ नहीं। वैसे ही पूछा।" मैंने रात भर के अपने डर को छिपा लिया था। मुझे बिंदु के सामने शर्मिन्दा भी नहीं होना चाहिए। आदमी को अपनी मर्दानगी भी तो बचाकर रखनी चाहिए। बड़े भाई ने मुझे टट्टी- पेशाब करवाया। फिर खाना मेरे सामने रख दिया। मैंने खाना खाया। चाटी की लस्सी पीकर स्वाद आ गया है। मेरे सिर पर पंखा चल रहा है। पंखुड़ियों में से शर्र-शर्र की आवाज़ आई है।

बिल्कुल डर नहीं लगा। भाई की तरफ देखकर मुस्करा दिया हूँ। लेटते ही मेरी आँखें मुँदने लगी हैं।

000

सौदा

मराठी कहानी

मूल कथाकार: रा. रं. बोराडे
अनुवादक : डॉ. सचिन गपाट

रा. रं. बोराडे मराठी के ख्यात साहित्यकार हैं। कहानी, उपन्यास, नाटक और समीक्षा को लेकर उनकी चालीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। वे महाराष्ट्र राज्य साहित्य संस्कृति मंडल के अध्यक्ष रह चुके हैं।

डॉ. सचिन गपाट
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
मुंबई विश्वविद्यालय
विद्यानगरी, कलिना, मुंबई - 400098
मोबाइल- 9689657974
इमेल- dr.sachingapat@gmail.com

बैलों को हाँकते-हाँकते किसना रुक गया। उसने पीछे मुड़कर देखा। यदाअण्णा बहुत पीछे रह गए थे। उनके नज़दीक आने तक किसना मन ही मन झल्लाता रहा और वे पास आने पर चिढ़कर जैसा बोला जाता है वैसे किसना बोला, "अण्णा, आप ऐसे कैसे चल रहे हैं ?"

किसना ऐसा क्यों बोल रहा है यह उनकी समझ में नहीं आया। मुँह का पसीना पोंछते हुए उन्होंने पूछा, "क्या हुआ ?"

"यहाँ पर ही दोपहर हुई है। अब बाज़ार कब जाएँगे और बैल कब बेचेंगे?"

उसने ऐसा कहा और इसपर यदाअण्णा अधिक गंभीर हुए। उन्होंने छिपी नज़र से किसना की ओर देखा। बोले या नहीं इसपर उन्होंने थोड़ा विचार किया और आख़िर ख़ुद को न रोक पाए इसलिए डर-डरकर जैसा बालते हैं वैसे उन्होंने कहा,

"किसना, सच में बैल बेचेंगे क्या ?"

किसना पहले से ही झल्लाया था। यदाअण्णा द्वारा ऐसा पूछने पर तो वह और अधिक उबल पड़ा। फटाक से चाबुक की फटकार मारते हैं वैसे वह बोला,

"अब भी वैसा लग रहा है तो ले जाइए वापस।"

वह ऐसा बौखलाएगा इसकी कल्पना उन्हें पहले से होगी। इसलिए मन का ताल-मेल बनाते हुए कहा, "अरे, वापस जाना है इसलिए मैं नहीं कह रहा हूँ।"

"तो क्यों कह रहे हैं ऐसा ?"

"पता नहीं क्यों, बैल बेचने के लिए मेरा मन बार-बार टूटता ही जा रहा है।"

"हिम्मत नहीं हो रही है तो ले जाइए वापस।"

कोई भी इलाज न बचा हुआ देखकर वैसा चेहरा बनाकर यदाअण्णा ने कहा,

"अब ऐसा तैश में आओगे तो क्या बोलूँ !"

ग़ुस्से में आकर जैसा बोला जाता है वैसे किसना बोला,

"तैश में न आऊँ तो क्या करूँ अण्णा, अब बाज़ार दो कोस रह गया है और अब आप कह रहे हैं कि बैल बेचने का मन नहीं कर रहा है।"

"ऐसा तो मैं तुझे आठ दिन से बता रहा हूँ, पर तुम्हारे गले कहाँ उतर रहा है ?"

"कैसे उतरेगा अण्णा ? आपको उस खेत के टुकड़े के आगे कुछ दिखाई ही नहीं देता।"

"सारा दिखाई देता है रे किसना, उतना तो मैं अंधा नहीं हूँ।"

"अंधे तो नहीं हैं और बैल भी क्यों बेचने नहीं दे रहे हैं ?"

"बैल बेचने पर खेती का क्या होगा ?"

"उसकी थोड़ी भी लापरवाही हुई तो मुझे बोलिए। मैं कल ही नामा गोमचा के पास गया था। चालीस की जगह तीस पर उसकी नौकरी करूँगा। इसके बदले वह हमारे खेत की बैलों वाली मेहनत-मशक्कत और बुआई करके देगा ऐसी बात हुई है हम दोनों में।"

"वह सारा ठीक है रे; लेकिन घरवाली की बराबरी नहीं कर पाएगा वह। साथ ही इतना टूटा हुआ है, फिर से जोड़ना भी बहुत मुश्किल होगा हमारे लिए।"

"अगले साल ही जोड़कर दिखाता हूँ, आप देखना।"

"कैसे जोड़ोगे ? अगले साल कहीं से अचानक धनलाभ होनेवाला है क्या ?"

"अब मेरी नौकरी के पैसे आएँगे ना, उसे हाथ ही नहीं लगाएँगे। साल के आख़िर में वे पैसे उठाएँगे और ऐसी ही एक जोड़ी ख़रीद लेंगे।"

यदाअण्णा को किसी तरह की एक अलग ही कल्पना सूझी। उत्साह के साथ उन्होंने कहा,

"तुम ऐसा क्यों नहीं करते ? तुम्हारी शादी ही इस साल रहने दो। इस साल मैं हल और हेंगा चलाता हूँ। तुम गोम चाळे की नौकरी पकड़ो। साल के आख़िर में उसी पैसों से तुम्हारी शादी कर देंगे।"

"लेकिन अगले साल मन को भानेवाला रिश्ता नहीं आया तो ?"

"ऐसा कभी हुआ है क्या ?"

"पर आज तक तो ऐसा ही हुआ है ! आज तक इतने रिश्ते आए थे, पर उसमें से किसी को साड़ी पहनना आ रहा था क्या ?"

"ऐसे रिश्तों में ऐसी ही लड़कियाँ मिलती हैं। उनके पैसे बटोरने की जल्दबाज़ी होती है उनके माँ-बाप को।"

"लेकिन अगले साल वैसी लड़की घर लाकर उसकी नाक पोंछते बैठने से यह 'बालिग' लड़की कहाँ बुरी है ? यह खेतों में जमकर काम करेगी। वैसी बचकानी लड़की क्या करेगी ?"

"ऐसा कुछ भी हो किंतु इस साल मेरी बात सुनो तुम, अगले साल सौ-पचास ज़्यादा ख़र्च करूँगा; लेकिन बालिग लड़की से ही तुम्हारी शादी करवा दूँगा।

इतना सब कुछ समझाने पर भी बाप अपनी बात मान नहीं रहा है ऐसा लगते ही किसना बिगड़कर जैसा बालते हैं वैसे वह बोला,

"आपने कहा इसीलिए तो पाँच साल रुका हूँ। मेरी उम्र के लड़कों को दो-दो बच्चे हुए हैं फिर भी मेरी शादी का कोई आता-पता नहीं है। और आख़िर अपने-आपको कब तक रोकूँ मैं?"

"क्या मेरी मुराद नहीं है तुम्हारे शादी की, या मैं नहीं चाहता हूँ कि तुम्हारी शादी हो ?"

"आप मना भी नहीं कर रहे हैं और कर भी नहीं सकते हैं।"

"कुछ पैसे हाथ आए बिना मैं क्या कर सकता हूँ ? मैं तो क़र्ज़ लेने के लिए भी तैयार हूँ। लेकिन कोई हाथ बढ़ाने के लिए तैयार नहीं है।"

बहुत ही खीजकर किसना ने कहा, "अब किसी से क़र्ज़ भी मत लीजिए और बैल भी नहीं बेचिएगा। जब मेरी शादी होने वाली है तब होने दीजिए।"

और चिढ़कर वह फिर बैलों को हाँकने लगा। गाँव की ओर जानेवाले रास्ते की दिशा में उन्हें मोड़ने लगा। ऐसी अचानक निर्माण हुई कशमकश वाली स्थिति से बैल सिटपिटा गए। एक बैल इधर खींचने लगा तो दूसरा बैल उधर खींचने लगा। किसना पहले से ही बिगड़ा हुआ था। ऐसे में बैलों के इस बर्ताव से वह और अधिक बिगड़ गया। बाप का ग़ुस्सा बैलों पर उतारने लगा। यदा अण्णा ने यह सब गंभीरता से देखा। किसना का आचार-व्यवहार देखकर उन्होंने मन में एक निश्चय किया और उन्होंने कहा,

"किसना बैलों को वापिस घुमाओ।"

"क्यों वापिस घुमाऊँ ? बैल वापिस घुमाने पर खेतों का बहुत नुकसान होनेवाला है ना।"

"अब गाँव की ओर ले जाने पर भी नुकसान ही होनेवाला है।"

"दरवाज़े पर पघे को बैल रहेंगे तो नुकसान कैसे होगा ?"

"केवल पघे से बैल बाँधकर क्या होगा ? उन्हें चराने और सानी-पानी करनेवाला कोई चाहिए ना। कुछ दिन पहले मैं रिश्ता नहीं देख रहा था इसलिए आठ दिन बैल बाँधकर बैठ गया था तू। अब तो आया हुआ रिश्ता ठुकरा रहा हूँ मैं। इसलिए तू अब कोई काम करेगा !"

"तब मेरे सिर में दुख रहा था।"

"अब क्या कम दुखनेवाला है ? मैं अब पहले जैसा काम-धाम नहीं कर सकता हूँ इसलिए तुम्हारी हेकड़ी चल रही है। मुझसे यह सब काम-धंधा होता तो तुम ऐसा व्यवहार क्यों करते ?" और कुछ ऐसा ही वे बड़बड़ाते रहे। किसना कुछ समय के लिए रुका और चेतावनी की आवाज़ में बोला,

"अण्णा, मुझे अब एक ही बात बता दीजिए। बैल बेचेंगे या नहीं ?

"बेचने हैं यही तो अभी बता दिया है।"

"नहीं तो फिर आप पैर गढ़ाकर बैठ जाएँगे। ऐसा कुछ करनेवाले हैं तो अभी यहाँ बता दीजिए। यहीं से वापस चलते हैं।"

"ना बाबा ना। अब वापस-फापस नहीं जाएँगे। जो होनेवाला है वह हो जाने दो एक बार।"

"किसना ने फिर बैलों को मोड़ लिया और हाँकते हुए चलने लगा। चिल-चिलाती दोपहर हो गई। धूप और तेज़ हुई। धूप से पैर जलने लगे और पसीने से शरीर तर होने लगा। यदाअण्णा के चेहरे पर थकान दिखाई दे रही थी। तीन-चार कोस का रास्ता काटने के कारण पैरों में पत्थर बाँधा हुआ है ऐसा लग रहा था। ऐसे में धूप और लौ बढ़ती ही जा रही थी। कहीं थोड़ा आराम करे, प्यास से सूखा

गला थोड़ा गीला करें, ऐसा उन्हें बार-बार लग रहा था। उनकी नज़रें ऐसी जगह की खोज करने लगी। सामने कुछ दूरी पर ऐसी जगह दिखाई देते ही उनकी जान में जान आ गई। उस जगह की ओर उम्मीद से देखते हुए उन्होंने किसना से कहा, "किसना"

पीछे मुड़कर न देखते हुए किसना ने कहा, "क्या ?"

"उस सामनेवाले कुएँ पर हम थोड़ा रुकेंगे क्या ?"

"अब केवल एक कोस ही बचा है मुरुड गाँव और ऐसे में क्यों समय बरबाद करना है?"

"एक कोस रास्ता तुम्हें थोड़ा लग रहा है। ऐसे ही तेज़ चले तो भी एक घंटा तो लगेगा ही।"

"उसे एक घंटा कैसे लगेगा ? अब पहुँचे-पहुँचे कहते-कहते हम वहाँ पहुँच जाएँगे।"

"मेरे पैर भी पूरी तरह थक चुके हैं। बैठने के लिए अब मन कर रहा है।"

"बैठेंगे तो बैठ ही जाएँगे। पहले ही बाज़ार के लिए देरी हुई है। उस पर और देरी क्यों करेंगे?"

"क्या होगा थोड़ी देर से ? कल के नाश्ते तक बाज़ार चलता है।"

"फिर भी जल्दी जाना अच्छा होता है। कई बार पहले झटके में ही ग्राहक मिल जाता है।"

"प्यास बहुत लगी है रे।" गला सूखता ही जा रहा है।"

यदाअण्णा के ऐसा कहने पर किसना मजबूर हुआ। थोड़ा नाराज़ होकर उसने कहा, "ठीक है, थोड़ा रुकते हैं।"

कुएँ पर आने के बाद यदाअण्णा ने किसना से कहा, "बैलों को बाँध दो।"

"अभी निकलना ही है तो क्यों बाँधना है उनको ?"

"पानी तो पिलाओ उनको"

किसना ने इसे अनसुना नहीं किया। यदाअण्णा पानी पीकर वापिस आने तक उसने बैलों को पानी पिलाया। बैलों को यदाअण्णा के हवाले किया और वह ख़ुद भी पानी पीकर आया। बाजू में बैठने के बाद यदाअण्णा ने सहजता से जैसे पूछते हैं वैसे पूछा,

"यह मोत्या कितने में बिक सकता है ?"

"दो ढाई सौ तक बिकेगा ऐसा लगता है।"

"बस्स, इतना ही ?"

"नहीं तो क्या ? जानवरों के भाव में ज़रा गिरावट आई है ना।"

"मोत्या को उतने आएँगे तो हि-या तो दौ सौ से कम में बिकेगा।"

"हाँ, दो सौ के ऊपर नहीं जाएगा ऐसा लगता है।"

अपने आपसे जैसा बोलते हैं वैसा वे बोले, "फिर कोई ताल-मेल नहीं बन पाएगा।"

यदाअण्णा मन ही मन कौनसा ताल-मेल बना रहे हैं यह किसना के ध्यान में नहीं आ रहा था, उसने पूछा, "कौन सा ताल-मेल ?"

"कुछ नहीं, तीन सौ के ऊपर यदि मोत्या बिकता तो अकेले मोत्या को ही बेच देते ऐसा लगा।"

"लेकिन इतने में तो वह रिश्तेदार भी मानने के लिए तैयार नहीं है ना।"

"पाँच-पचास रुपयों का कुछ जुगाड़ किया होता।"

"और अकेले हि-या को घरपर रखकर क्या करनेवाले हैं ?"

"अब उसको सँभालना-पालना थोड़ा कठिन होता; लेकिन उसके होने से दूसरा बैल थोड़ा जल्दी ख़रीदते। पघे को एक बैल होने पर दूसरे बैल के फ़िराक़ में इंसान हमेशा रहता है। साथ ही एक बैल ख़रीदना भी हमारी हैसियत में होता है।"

अब हम अधिक समय यहाँ रुके तो यह विषय ऐसे ही बढ़ता चलेगा, ऐसा किसना को लगा। तड़ाक-फड़ाक उठते हुए उसने कहा, "ठीक है उठिए अब। बहुत समय हो चुका है।"

और उनके उठने का इंतज़ार न करते हुए वह चलने लगा। यदाअण्णा भी उठे। जल्दी-जल्दी उसके पीछे-पीछे चलने लगे।

बाप और बेटा जब बाज़ार पहुँचे तब धूप कम हुई थी। जानवरों के सौदे कब के शुरू हुए थे। किसना ने हड़बड़ी में एक जगह चुन ली। अपने साथ लाई खूँटी ठोक दी। बैलों को उस खूँटी से बाँध दिया। दो पुली कड़बी ख़रीद ली। बैलों के सामने डाल दी। अँगोछे से उनकी पीठ पर जमी धूल झटक दी और ग्राहकों का इंतज़ार करने लगा।

यदाअण्णा ने आते ही कंबल बिछा दिया और बहुत थके-माँदे की तरह वे कंबल पर पड़े रहे। बीच-बीच में कोई ग्राहक आता तो वे नज़र उठाते। उसकी ओर देखते रहते। किसना और ग्राहक के बीच जो बातचीत होती उसे वे कान देकर सुनते। ग्राहक निकल जाने पर वे पहले जैसा ही पड़े रहते।

दिन ढलने का समय हुआ। लेकिन बैलों का सौदा नहीं हो रहा था। किसना ग्राहक की उत्सुकता से राह देख रहा था। ग्राहक के आते ही वह झट से आगे बढ़ता। बैलों की ख़ूबी के बारे में, उनके काम की बहादुरी के बारे में वह मुँह तड़कने तक बोलता जाता। पर इतना करने के बाद भी सौदा नहीं हो रहा था। कोई भी ग्राहक साढ़े तीन सौ के ऊपर जाने का साहस नहीं कर रहा था। दिन जैसे ही ओझल हो रहा था वैसे-वैसे वह अधिक अस्वस्थ दिखने लगा। दिन ढल जाने पर तो उससे रहा ही नहीं गया। हताश होकर वह अपने बाप के पास आया और गहरी आवाज़ में बोला,

"अब क्या करेंगे आबा ?"

किसना जो कहना चाहता है वह बात यदाअण्णा के ध्यान में आई होगी। लेकिन वैसा भाव चेहरे पर न दिखाते हुए उन्होंने कहा, "किसका क्या करेंगे ?"

"कोई भी ग्राहक साढ़े तीन सौ के ऊपर नहीं जा रहा है।"

"फिर क्या इरादा है तुम्हारा ?"

"कुछ नहीं। उतनी रकम में बेच दे क्या ? ऐसा सोच रहा था।"

केवल हड्डियाँ बिक रही हैं दो-दो सौ में, और इतनी अच्छी जोड़ी बेचते हो क्या साढ़े तीन सौ में ?"

"आज बाज़ार में थोड़ी गिरावट ही नज़र आ रही है।"

"कल के नाश्ते तक रुक जाते हैं। बाज़ार ख़त्म होते समय ग्राहक थोड़े अच्छे दामों में ख़रीदते हैं।"

"नाश्ते के समय बैल बेचकर रात तक हम गाँव पहुँच पाएँगे क्या ?"

"न पहुँचने के लिए क्या हुआ ?"

"काग़ज़ात-वागज़ात बनाने के चक्कर में यहाँ पर ही दोपहर हो जाएगी और रात तक कैसे पहुँच पाएँगे ?"

"दोपहर तक भी निकलते हैं तो पहुँचेंगे। और मानों, नहीं पहुँच पाए तो कहीं रास्ते में रुक जाते हैं।"

"रास्ते में रात भर रुककर कैसे चलेगा अण्णा ? कल शाम को सौ रुपये देने का वादा किया है उस रिश्तेदार से।"

"वादा किया है इसका मतलब कल शाम को ही देने चाहिए ऐसा थोड़े ही होता है ?"

"वह वादे का बहुत पक्का इंसान है। परसों शाम तक यदि पैसे नहीं आए तो मैं अपने निर्णय के लिए स्वतंत्र हूँ। ऐसा कल ही बताया ना उसने ?"

"बताया इसलिए कोई ऐसा करता है क्या?"

"उस रिश्तेदार का कोई भरोसा है क्या ?"

उसके मन में क्या है यह यदाअण्णा ने ताड़ लिया और उसके कान एँठने की दृष्टि से उन्होंने कहा,

"तो मन में क्या है तुम्हारे ? उतने में ही बैल बेचने का इरादा है क्या तुम्हारा ?"

उनकी आवाज़ का रुख़ देखकर किसना सिटपिटाया। ख़ुद को सँभालने के उद्देश्य से उसने कहा,

"ऐसा कुछ भी मेरे मन में नहीं है। ऐसे ही आपको बता दिया।"

"कल सुबह के नाश्ते तक इंतज़ार करते हैं, और फिर तय करेंगे की क्या करना है।"

इसपर किसना कुछ बोल नहीं पाया। मन में बालने की चाह होकर भी वह बोलने का साहस नहीं जुटा पाया। मन ही मन वह कुढ़ता रहा।

दूसरे दिन सुबह हुई। नाश्ते का समय हुआ फिर भी ग्राहक विशेष उत्साह नहीं दिखा रहे थें। जो ख़रीदने के लिए आते वे साढ़े तीन सौ के ऊपर नहीं जा रहे थे। किसना रुआँसा हुआ। एक ओर साढ़े तीन सौ के ऊपर जाने का साहस ग्राहक नहीं कर रहा था तो दूसरी ओर साढ़े चार सौ के नीचे बेचने के लिए यदाअण्णा तैयार नहीं हो रहे थे। अंत में उससे रहा नहीं गया, बाप के पास आकर उसने कहा, "क्या करेंगे अण्णा ?"

"थोड़ा और इंतज़ार करते हैं।"

"अब और भला कितना इंतज़ार करेंगे ? शाम तक गाँव पहुँचना संभव भी होना चाहिए ना?"

"शाम तक गाँव पहुँचना है इसलिए आने-पौने दाम पर बेच दे क्या ?"

"दूसरा कोई रास्ता नहीं है तो और करें भी क्या ?"

किसना का शादी के लिए इतना उतावला होना यदाअण्णा को पहले से ही पसंद नहीं था। किंतु उसे स्पष्ट शब्दों में यह बताना उन्होंने टाल दिया था। इस बार वे अपने आप को रोक नहीं पाए। किसना जब ऐसा बोला तब उन्होंने कहा,

"शादी के लिए क्यों इतने उतावले हुए हो? शादी के बारे में बोलने के लिए हम अपनी जीभ उठा भी नहीं पाते थे, तुम तो घोड़े पर सवार हुए हो।"

"क्यों जीभ उठाएँगे अण्णा। बीवी क्या होती है यह समझने से पहले ही बाप आपको बीवी लाकर देता था और यहाँ तो गले में दाढ़ी आई है फिर भी मेरी शादी का आता-पता नहीं है।"

किसना जब ऐसा बोला तब उन्होंने घुटनों में सिर दिया और बैठे रहे। किसना थोड़ी देर बैठा रहा और चेतावनी भरी आवाज़ में बोला,

"अण्णा, आख़िरी बार पूछ रहा हूँ, वह व्यक्ति तीन सौ साठ देने के लिए तैयार है। इतने में बेचेंगे या नहीं ?"

"अब क्यों रखते हो ? जाओ, बेच दो।"

"नहीं तो बाद में पिनपिन करते रहेंगे।"

"अब पिनपिन करके भी क्या फ़ायदा ? चलो जल्दी करो। गोधूलि के पहले पहुँचते हैं गाँव।"

इसपर किसना ने दौड़ा-दौड़ की। उस ग्राहक से सौदेबाज़ी की और तीन सौ सत्तर पर सौदा तय हुआ।

बैल और उनके काग़ज़ात ग्राहक के हवाले कर किसना वापिस आया और नोटों की गड्डी यदाअण्णा के सामने रखते हुए कहा,

" यह लीजिए अण्णा। ज़ेब में रख लीजिए।"

"नीचे गिरी हुई बैलों की रस्सी उठाते हुए यदाअण्णा ने कहा,

"मेरे पास क्यों दे रहे हो ? मैं तो ख़ाली हाथ भी चल नहीं सकूँगा और यह नोटों की गड्डियाँ सँभालते हुए कैसे चल पाऊँगा ?

किसना ने और भी आग्रह किया। सारे नोट उनके पास रखने के लिए अनुनय-विनय भी किया; लेकिन इस पर भी वे नहीं माने। उसके चेहरे पर बेबसी छाई। उसने नोटों की गड्डियाँ ख़ुद की जेब में रख दी और सारी चीज़ें समेट कर उसने यदाअण्णा से कहा,

"चलिए"

किसना आगे-आगे चलने लगा और यदाअण्णा उसके पीछे-पीछे। चलते हुए उसकी नज़र बार-बार नोटों से भरी ज़ेब पर जा रही थी। उस ज़ेब को अक्सर चुमकारने का उसका मन कर रहा था और ख़ाली रस्सी सँभालते हुए यदाअण्णा उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। अपने हाथों में पकड़ी रस्सी कोई पीछे से खींच रहा है ऐसा बीच-बीच में उन्हें महसूस हो रहा था।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

नव पर नव स्वर दे..

विनय उपाध्याय

विनय उपाध्याय
एम एक्स 135, ई-7, अरेरा कॉलोनी
भोपाल 462016 मप्र
मोबाइल- 9826392428
ईमेल- vinay.srujan@gmail.com

कलुष भेद तम, हर प्रकाश भर, जगमग जग कर दे... हताश और हारे हुए जीवन में उम्मीद के उजियारे की पवित्र कामनाओं को जगाता यह छंद यक़ीनन बुज़ुर्ग और प्रौढ़ हो चली पीढ़ी की स्मृतियों में अब भी किसी मंत्र की तरह झंकृत होता होगा। इसे बाँचते-सुनते ही अनायास पूरी कविता कौंध रही होगी। याददाश्त में लहराती धुनों के सहारे उनका कंठ गा रहा होगा- "वर दे वीणा वादिनी वर दे। प्रिय स्वतंत्र रव, अमृत मंत्र नव, भारत में भर दे"। अंतरजाल में ग़ाफ़िल आज की नई नस्ल को यह वासंती संदेश बेगाना और कुछ पुरातन-पारंपरिक सा लगे लेकिन साहित्य की अमृत-बूँदों का आचमन कर ज़िंदगी के होश थामने वाली पीढ़ी के लिए शब्द और वाणी की महारानी सरस्वती के प्रति यह निवेदन जीवन की धन्यता का उद्घोष है।

...भाषा-भारती, पाठ-एक। वर दे! कवि-सूर्यकांत त्रिपाठी निराला। यही तो था मंगलाचरण। किताब का पहला शब्द-पुष्प। पाँखुरी-पाँखुरी खिलता जैसे पूरे मानस को महक से भर देता। गुरुजी विस्तार से इस कविता का अर्थ समझाते और अबोध मन वाग्देवी के चित्र को कौतुहल से निहारता! भीतर कोई लौ जागती। एक भरोसा किसी कोने में जगह बनाता कि तमाम दुश्वारियों के बावजूद कोई शक्ति है, जो समाधान की रौशनी लिए हमारे कर्मपथ पर फैले काँटे बुहारकर राह आसान बनाती रहेगी।

इस कविता का संदर्भ इसलिए कि वसंत की पंचमी हिन्दी के महाप्राण कवि निराला के इस नश्वर संसार में पैदा होने का मुहूर्त है। निराला ने अपने रचनाशील जीवन में विपुल और विविध लिखा। वे छायावाद के अप्रतिम कृतिकारों जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा और सुमित्रा नंदन पंत के साथ खड़े एक ऐसे विलक्षण कवि रहे जो हिन्दी के आधुनिक परिसर में नई क्रांति के

प्रतीक माने जाते हैं। यूँ निराला की साहित्यिक मेधा और उनकी महिमा को कई कोणों से मापा जा सकता है लेकिन उनके पक्ष में सर्वाधिक महत्त्व की बात यह है कि निराला भारतीय संस्कृति, जीवन मूल्यों, इतिहास, दर्शन और विश्व मानवीय दृष्टि से समृद्ध व्यक्तित्व थे। संघर्ष उनकी कुंडली में स्थायी भाव की तरह था। निराला इसी आँच में तपकर जीवन के गीत गाते रहे। कविता-वर दे... के आसपास रहकर निराला की साहित्य साधना को समझें तो अनेक दिशाएँ खुलती दिखाई देती हैं।

यह कविता निराला ने 1936 में लिखी थी। उनके अत्यंत लोकप्रिय संग्रह 'गीतिका' में संकलित यह प्रथम गीत है। शब्द-प्रयोग और लय-गति के विन्यास को देखें तो निराला नए छंद की रचना का साहस और सामर्थ्य प्रकट करते हैं। वे शब्द की आत्मा में बसे गहरे नाद को, उसके अंत: संगीत को पहचानते हैं। वे शृंगार, लालित्य और रस-भाव के शिल्पी हैं। कविता कहते-कहते अनुप्रास (यानि एक ही वर्ण-अक्षर या शब्द का बार-बार प्रयोग) की छटा सहज ही उसमें चली आती है। इन तमाम आग्रहों के साथ जब आप इस कविता के पूरे पाठ से गुज़रते हैं तो मंत्र की तरह उसका असर शिराओं में प्रवाहित होता है। सचमुच, निराला ने मंत्र ही तो रचा है-

वर दे!
वीणा वादिनी वर दे!!
प्रिय स्वतंत्र रव,
अमृत मंत्र नव
भारत में भर दे
काट अंध उर के बंधन स्वर
बहा जननि ज्योतिर्मय निर्झर
कलुष भेद तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे
नवगति, नव लय,
ताल छंद नव
नवल कंठ,
नव जलद मंद्र रव
नव नभ के नव विहग वृंद को
नव पर नव स्वर दे।

ग़ौर करने की बात यह भी कि निराला ने इसे उस दौर में लिखा जब पराधीन भारत का आंतरिक संघर्ष स्वाधीनता के सपनों के आसपास परवान चढ़ रहा था। तमाम बंधनों से मुक्ति की कामना के लिए भीतर कसक थी। आज़ादी के आसमान पर अपने अरमानों के इन्द्रधनुषी रंग-बिखेरने की हुमस थी। गति, गौरव और गरिमा के गीत गाने को कंठ मचल रहे थे। ऐसे में निराला की कविता वरदान बनकर प्रकट होती है। पूरे देश की आत्मा की आवाज़ बन जाती है। देवी सरस्वती से यही गुहार कि शापित कालखंड को मथकर नए विहान (सुबह) का अभ्युदय हो! निश्चय ही यह कविता नई गति, नई ताल, नए छंद और नए स्वरों को थामती नए उन्मेष की इबारत बनी। आज भी निराला का यह गीत एक आलोकित दीप शिखा की तरह हमारे अंत:करण के स्याह कोनों को नए उजास से भरता है। शायर-फ़िल्मकार गुलज़ार कहते हैं कि गीत कभी बूढ़े नहीं होते। उनकी झुर्रियाँ नहीं निकलती। किसी मौजूं सी धुन में जड़ दो तो नग़मा फिर से साँसें लेने लगता है। इस गीत के साथ भी कमोबेश ऐसा ही है। अनेक संगीतकार-गायकों ने अलहदा सी धुनों में इस रचना को पिरोया। संगीत की सोहबत में जैसे इस कविता को नए पंख मिल गए। सारस्वत सभाओं से लेकर स्कूलों में होने वाली नियमित प्रार्थना में इसे एकल और सामूहिक गाने की परंपरा हो गई। शास्त्रीय राग-रागिनियों और लोक धुनों से लेकर सुगम संगीत में ढलकर निराला का यह छंद देश-देशांतर में स्वच्छंद विचरण करने लगा। किसी कृति के कालजयी हो जाने का उदाहरण इससे बेहतर और क्या हो सकता है!

लेकिन इतनी स्वर-सिद्ध कविता रचने का कौशल अगर निराला के पास रहा इसकी एक बड़ी वजह शब्द के साथ-साथ संगीत के प्रति उनकी अगाध असक्ति थी। उनकी गीतात्मक कविताओं से लेकर छंद मुक्त रचनाओं तक में अंत: संगीत बहता हुआ दिखाई देता है। 'वर दे' और 'बादल राग' से लेकर 'वह तोड़ती पत्थर' तक आते-आते निराला नए प्रयोगों की मिसाल गढ़ते हैं लेकिन कविता का आरोह-आरोह और उसका ध्वनि सौन्दर्य कभी कम न हुआ।

दरअसल संगीत उनकी चेतना में प्रकृति प्रदत्त था। हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'निराला की साहित्य साधना' में निराला के संगीत प्रेम से जुड़े अनेक प्रसंगों की चर्चा की है। एक दिलचस्प वाक़या कुछ इस तरह हुआ। पत्नी मनोहरा को एक दिन जब निराला ने तुलसी की 'विनय पत्रिका' का पद "कंदर्प अगणित अमित छवि नव, नील नीरद सुंदरम्" गाते हुए सुना, तो उन्हें लगा जैसे गले में मृदंग बज रहा है। जैसे संगीत के सोते हुए संस्कार जाग गए। निराला को लगा कि साहित्य इतना सुंदर है और संगीत इतना आकर्षक! उनकी आँखों ने जैसे नया संसार देखा! कानों ने ऐसा संगीत सुना जो इस पृथ्वी पर किसी दूर लोक से आता हो!

तुलसीदास के इस पद 'श्रीरामचन्द्र कृपालु भजमन' से उन्हें मोह हो गया। एक अजीब विश्रांति और अनंद वे इस छंद में महसूस करते। वे हारमोनियम पर इस पद को गाते तो आपे से बाहर आ जाते। आवेश में उनकी माथे की नसें तन जाती। वे शांत भाव से रामचरिमानस की चौपाइयाँ गाते। उनके स्वर में पिघले हुए सोने का माधुर्य था। 'भैरवी' राग उन्हें अत्यंत प्रिय था। इसी राग में निबद्ध रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता उन्हें प्रिय थी और किसी के आग्रह पर या अपनी रुचि से वे गाने लगते। निराला अक्सर संगीत के शास्त्रीय पक्ष पर भी बहस करते। अपने कोलकाता प्रवास के दौरान उनका परिचय रवीन्द्र संगीत से हुआ। टैगोर की संगीत दृष्टि से वे प्रभावित थे। किसी बंदिश को सुनते हुए सम आने पर चुटकी बजाते। यानी लय-ताल का ज्ञान उन्हें था। वे रवीन्द्र संगीत में आईं कुछ पाश्चात्य धुनों के पक्ष में थे क्योंकि वे टैगोर की विश्व दृष्टि का सम्मान करते थे। निराला के व्यक्तित्व में इन तमाम तत्वों का समावेश था। यह मुमकिन न होता अगर निराला सरस्वती के सच्चे उपासक न होते और सरस्वती की अनन्य कृपा उन पर न होती। वर दे... का लिखा जाना इसी परस्परता की परिणति है।

000

अनंत, फेसबुक और मेटावर्स

डॉ. गरिमा संजय दुबे

पिछले वर्ष की एक ख़बर कि फेसबुक ने अपना नाम बदल कर मेटा कर दिया है और यूनिवर्स की तरह अब उसके कार्यालयों में मेटावर्स शब्द प्रचलन में लिया जाने लगा है। निश्चित ही यूनिवर्स यानी ब्रह्मांड जिसे ईश्वर ने, ब्रह्मा ने रचा है, (या वैज्ञानिक दृष्टि के अनुसार यह ब्रह्मांड बिंग बैंग घटना की उत्पत्ति है), में हम सब जीव और कई अनदेखे, अनजाने रहस्य अस्तित्व में हैं। ठीक उसी तरह मनुष्यों की रची हुई एक दुनिया है जो तकनीक के रूप में अस्तित्व में है, और वहाँ भी एक पूरा का पूरा वर्चुअल ब्रह्मांड नज़र आता है। ब्रह्मांड अनंत है, यह वेदों से लेकर भौतिकी की क्वांटम थ्योरी और गणित के अनंत सिद्धांत (infinity theory) तक में यही माना जाता है। बड़े-बड़े गणितज्ञ, भौतिक शास्त्र के अध्येयता भी ब्रह्मांड के इस अनंत विस्तार की तरफ आकर्षित होते हैं।

अब इस ब्रह्मांड के भीतर एक और ब्रह्मांड रच देने वाले तकनीकी ब्रह्माओं ने फिर उसी अनंत तत्व का आश्रय लिया है तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। वैसे देखा जाए तो हम सभी उस विराट ब्रह्मांड के साथ-साथ अब इस तकनीकी ब्रह्मांड का हिस्सा तो हो ही गए हैं, और यह तकनीक हमारे अस्तित्व का अभिन्न अंग। तो फेसबुक ने जब अपना नाम बदलने की प्रक्रिया प्रारंभ की तो मेटा की तरफ उनका ध्यान जाना स्वभाविक था।

मेटा का प्रतीक चिह्न है, अनंत का प्रतीक चिह्न, आड़ा पड़ा हुआ अंग्रेज़ी का आठ, जिसे इन्फिनिटी कहा जाता है अंग्रेज़ी में। इन्फिनिटी के कई प्रकार होते हैं, जिसमें एक है मेटा फिज़िकल इन्फिनिटी, उद्भव की दृष्टि से देखें तो "मेटा" शब्द का अर्थ होता है, किसी प्रकार के परिवर्तन से, जैसे काफ़्का का मेटामार्फसिस, बदलाव। इसका दूसरा अर्थ है परे, ऊपर, जैसे जॉन डन की कविताओं में मेटाफिज़िक्स दृष्टि, जैसी आदि शंकराचार्य का दर्शन, जैसे हमारे ऋषि मुनियों, मनीषियों, साहित्यिक अध्येताओं द्वारा दी गई ईश्वर की अवधारणा, वह जो परे है, बुद्धि से, ज्ञान की सीमाओं से, भौतिक विश्व से परे। जैसे समस्त भारतीय वांड्गमय, दर्शन, वेद, पुराण, जो इंद्रियों से अनुभव किये जाने वाले सभी तत्वों से परे ईश्वर की व्याख्या करता है। अच्युत, अनंत, परमात्मा, एक ऐसी अनंत सत्ता जो सर्वव्यापी है, जिसका प्रभाव व्यापक है। "नेति, नेति", न इति। न इति दरअसल अनंतता का उद्घोष है। जैसे छायावादी दृष्टि उसी अनंत की बात करती है, जैसे रहस्यवाद उसी अनंत रहस्य की खोज में रहता है, जैसे पेंथइज़्म उसी का गान करता है।

वैसे ही हर वैज्ञानिक प्रकृति की अनंत सत्ता से परिचित होता है और उसी के तत्वों की खोज ही तो करता है। वस्तुत: केवल दृष्टि भेद से ही वैज्ञानिक और जिज्ञासु में अंतर होता है।

जिज्ञासु के लिए ईश्वर ही प्रकृति और चमत्कार है और, वैज्ञानिक के लिए प्रकृति ही ईश्वर।

जिज्ञासु के लिए ईश्वर से बड़ा कोई वैज्ञानिक नहीं और,वैज्ञानिक के लिए प्रकृति ही विज्ञान है। वस्तुत: विभिन्न माध्यमों से खोज उस अनंत की ही है। भौतिकी विषय मुझे अध्यात्म के बहुत करीब जान पड़ता है, वह प्रकाश, ऊर्जा, ध्वनि तरंगों के माध्यम से उस अनंत स्त्रोत की खोज ही तो करता है। तकनीक, विज्ञान की हर खोज, हर आविष्कार किसी जिज्ञासा का आधुनिक विस्तार ही तो है।

अब एक प्रश्न यह पूछा जा सकता है आधुनिक तकनीक से सजे युग में भला किसको अनंत ईश्वर और दर्शन का ज्ञान है, और कौन इतना गहरा सोच कर नाम रखता है? कोडिंग डेकोडिंग और आर्टिफ़िशियल इन्टेलिजन्स के ज़माने में यह जिज्ञास्य वृत्ती, मुमुक्षु कौन है जो अनंत को पहचान सके ?

डॉ. गरिमा संजय दुबे
18 बी वंदना नगर एक्स, इंदौर म. प्र.
मोबाइल- 9009046734
ईमेल- garima.dubey108@gmail.com

तो बताती चलूँ कि मनुष्य चाहे जितना भी आधुनिक क्यों न हो जाए, मशीनी क्यों न हो जाए उसकी जड़ें इसी अनंत ब्रह्मांड से जुड़ी रहेंगी, "उर्ध्व मूल: अध: शाख" के रूप में उसकी चेतना उस चेतना से ही संचालित होती रहेगी और जब-जब कोई बहुत सफल व्यक्ति आपको दिखेगा तो उसके व्यक्तित्व में आपको वही तत्व दिखाई देगा। हो सकता है उस चेतना के अनुभूति में आने के तरीके अलग हों, हो सकता है वह उन्हें ठीक उन्हीं नामों से न पुकारे जो धर्म, अध्यात्म या दर्शन की परिधि में आते हों, किंतु वे उस तत्व को, उस अनंत को, उस ऊर्जा को अनुभूत तो करते ही हैं।

गणित के विशेषज्ञ जब गणनाओं में लगे होते हैं और जिन नियमों पर चलते हैं, अंतत: वे इस ब्रह्मांड के ही किसी प्रश्न को हल कर रहे होते हैं। सितारों की खोज करने वाले इस असीम आकाश में जब तारों की खोज करते हैं तो सहसा प्रश्न मन में आता ही है कितना बड़ा है यह आकाश? और बनाया किसने होगा ? जाने कितने तारे न जाने कितनी आकाश गंगा, उसके किसी कोने पर हमारी पृथ्वी? क्या ऐसी अनेक पृथ्वी होंगी ? ग्रह उनके चंद्रमा, उनके वलय सब देख मन रोमांच से भर कर पूछता नहीं होगा, किसने? कैसे? रचा यह सब। उनका वैज्ञानिक मन लाख, गैस और भिन्न पदार्थों की दुहाई दे कह दे कि यह ऐसे हुआ है, लेकिन एक चरम जिज्ञासा कि कैसे हुआ होगा यह सब? किसने तय किया होगा कि यह इस प्रक्रिया से बनेगा ? चाहे नाम ले लें कि ग्रहों के बीच यह बल है, जिसके चलते वे एक निश्चित गति और दूरी से अपना रास्ता तय करते हैं, लेकिन कौन है जिसने इन्हें इस बल में बाँधा? किसने किए ये गठबंधन? किसने तय किए मार्ग? और करोड़ों वर्षों से उस बल में, उस गठबंधन में तनिक भी व्यतिक्रम नहीं हुआ, कौन है जिसके इशारे पर यह ब्रह्मांड पूर्ण अनुशासन से अब तक चल रहा है? कौन सी ऊर्जा है जो चलाती है? प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता और जिज्ञासु मन फिर उसे अनंत कह देता है।

भौतिकी के शोधार्थी, वैज्ञानिक क्वांटम फिज़िक्स की नई-नई खोज से एक निर्णय तक पहुँचते हैं और उसका नाम गॉड पार्टिकल क्यों रख देते हैं? विश्व के तमाम वैज्ञानिकों से यदि उनके अनुभव बिना पूर्वग्रह के दर्ज करने की अनुमति वे दें तो पाएँगे कि उन्होंने खोजें तमाम की, किंतु एक समय पर वे विस्मित हुए कि किसने यह व्यवस्था बनाई है? व्यवस्था के पीछे के कारण, तत्व वे खोज सके, किंतु कौन था जिसने रचा ?इस प्रश्न पर जाकर उनकी वाणी चुप हो जाती है।

वे उसी अनंत के समक्ष किंकर्त्तव्यविमूढ़ मूढ़, चकित, विस्मित रह जाते हैं। मुझे के. कस्तूरीरंगन साहब का वह वक्तव्य कभी भी नहीं भूलता जब प्रतिदिन गीता पाठ के प्रश्न पर उन्होंने कहा था कि "हर वैज्ञानिक अपनी वैज्ञानिक, खोज तकनीक में जितना आगे बढ़ता जाता है, अनंत अज्ञात सत्ता पर उसका विश्वास उतना ही दृढ़ होता जाता है, कौन? कौन? के प्रश्न उसे घेर लेते हैं, कैसे का जवाब तो मिलता है, किंतु किसने बनाया का उत्तर नहीं मिलता, तब उसके पास किसी ऐब्सलूट को मानने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होता"। वह ऐब्सलूट ही अनंत है, वही मेटा है।

आइन्स्टाइन से लेकर स्टीफन हॉकिंग्स तक, और चार्ल्स डॉर्वीन से लेकर युवाल नोहा हरारी तक, आर्यभट्ट से लेकर बोस, कस्तूरीरंगन तक चाहे बताएँ कि कैसे हुआ है, चाहे नाम दे दे किसी बल या कारण का किंतु कौन चित्रकार है, कौन ऐसा वैज्ञानिक है, जिसने यह सबसे पहले किया होगा पर चुप्पी ही शेष रहती है।

जैसे ब्रह्मा ने विचार किया था। भिन्न-भिन्न रूपों में अभिव्यक्त होने का "एकोहं बहुस्याम:", ठीक वैसे ही जब तकनीक सर्वव्यापी होना चाहती है, भिन्न-भिन्न रूपों में अभिव्यक्त होना चाहती है तो उसने मेटावर्स बना लिया है। अब इस माया रूपी संसार के भीतर एक और माया है, और उसके बीच हम हैं। मनुष्य एक माया काया के भरम से तो निकल नहीं पाया था अब तक, और अब यह तकनीकी माया संसार हमारे ऊपर छाने को तत्पर है।

हमारे जीवन के हर पल, हर निर्णय, हर इच्छा पर जब उसकी नज़र होगी, नियंत्रण होगा तो मनुष्य उस अनंत के हाथ की कठपुतली तो था ही, अब यह तकनीक रूपी डोर उसे अपनी गिरफ्त में ले लेगी। फेसबुक उसी अनंत तकनीक शक्ति का प्रतीक है, और इसी तारतम्य में उसने नाम बदला है, इसलिए मेटा के दोनों अर्थ उसने ग्रहण किये हैं, बदलाव और सर्वव्यापी। आने वाला समय और अधिक आधुनिक तकनीक का होगा, तकनीक का अपना संसार होगा, और वह अनंत होगी, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने हमारी ज़िंदगी में दखलअंदाज़ी शुरू कर दी है, जैसे ईश्वर से कोई भाव नहीं छुपा रहता वैसे ही आपकी सोच के साथ आपके फ़ोन की स्क्रीन पर दृश्य बदलने लगते हैं, यह क्या है, इतनी जल्दी तो भगवान् भी न सुन पाए आपकी पुकार जितनी जल्दी तकनीक सुन लेती है। तो तरंगों का, कणों का यह संसार अनंत है, प्राकृतिक ब्रह्मांड में, ईथर के संसार में यह तरंगें वास्तविक थीं, निरापद, उपयोगी शक्तिशाली, लाभदायक थीं। अब तकनीकी युग की तरंगें जो उपयोगी हैं, शक्तिशाली हैं किंतु निरापद नहीं। तकनीक अब अनंत हो चली है। उसका कोई अंत नहीं होगा। इसलिए भी मेटा शब्द की अवधारणा तकनीक के लिए सही प्रतीत होती है।

ग्रीक में ऑरोबोरस, भारतीय सनातन दर्शन में कुंडलिनी का आकार, मेटा, इंफिनिटी के आकार से मेल खाता है, जो क्रमंश: कभी न ख़त्म होने वाले जीवन- मृत्यु-जीवन के अनंत चक्र, ऊर्जा के कभी न क्षय होने वाले स्वरूप को बताता है। आधुनिक युग में फीफा फ़टबाल के विश्व कप 2022 का प्रतीक चिह्न भी यही है, जो फुटबाल के अनंत, आनंद और रोमांच का प्रतीक है। तो जहाँ अनंत प्रभाव है, वह मेटा है। किंतु तकनीकी युग में मेटावर्स से, नकली अनंत मायावी संसार से अपनी चेतना को इतना मत जोड़ लीजिएगा कि उस असल यूनिवर्स, उस विशुद्ध अनंत से आपका संवाद बाधित हो जाए।

000

स्त्रेत्येंका-सदियों को समेटते चंद रास्ते

प्रगति टिपणीस

प्रगति टिपणीस
नवातरव स्ट्रीट 8/2, फ्लैट नंबर 124,
मॉस्को 119421 रूस
मोबाइल- +7 916 070-95-82
ईमेल- pragatinovmos@gmail.com

सुबह तेज़ बारिश हो रही थी, हवा भी तेज़ थी। आभास था कि दिन सुस्त और बादलों से घिरा रहेगा। फिर पता चला कि शहर के केंद्र में उसकी कुछ गलियों की सैर के लिए जाया जा सकता है। हम जैसे ही तैयार हुए, मॉस्को का मौसम भी सुस्ती छोड़ खुल गया, खिलखिला उठा।

यह एक नियोजित पैदल टूर था, इसका गाइड अलेक्सान्दर इवानोव था। अपनी क़िस्सागोई शैली और ज्ञान के कारण इस गाइड ने ख़ासा नाम कमा लिया है; इसलिए लोग बड़ी तादाद में जुड़े थे। सैर को दिन के एक बजे शुरू होना था, सभी सैलानी समय पर पहुँच गए। क्यू. आर. कोड के माध्यम से टेलीग्राम-चैनल पर टूर गाइड के साथ राब्ता बना। मिलने की जगह सुख़ारेव्स्काया प्लोषद (चौराहा) थी। यह स्थान शहर की दो बड़ी सड़कों स्त्रेत्येंका मार्ग और प्रॉस्पेक्ट मीरा के बीच है। 17वीं शताब्दी में इन दो सड़कों के चौराहे पर एक ऊँची मीनार होती थी, जिसका नाम भी सुख़ारेव्स्काया ही था। सुख़रयोव की रेजिमेंट इस इलाक़े की रक्षा के लिए बरसों तैनात रही थी, उन्हीं के सम्मान में इस स्थान को नाम मिला है। इस मीनार के भी कई क़िस्से हैं। यह गणित का प्रतिष्ठित स्कूल रही, शस्त्रागार संग्रहालय रही, याकव ब्रूस ने वहाँ पहली वेधशाला बनाई, इलाक़े को पानी की आपूर्ति भी इस मीनार से कराई गई। कुल मिलाकर 18वीं सदी के शुरूआती सालों से वर्ष 1934 तक इसका समृद्ध इतिहास रहा। बाद में शहर बढ़ा,

उसकी ज़रूरतें बदलीं, सड़कों को चौड़ा और बहुपथीय बनाने के लिए इसे गिरा दिया गया, इसके पुनर्स्थापन की फिर बात चल रही है।

अगर 17वीं-18वीं शताब्दियों की दुनिया में पहुँचना है तो यहाँ पर लगने वाले इसी नाम के उस बाज़ार की कल्पना भी करनी होगी, जहाँ हर तरह की चीज़ों की (चोरी की गईं की भी) ख़रीद-फ़रोख़्त होती थी। बहरहाल सोवियत सरकार बनने के बाद लेनिन के आदेश पर आधिकारिक तौर पर साल 1924 में बाज़ार बंद कर दिया गया। यहाँ यह याद रखना होगा, देश क्रांति से गुज़रा था, साम्राज्यवादी व्यवस्था की जगह सोवियत राज्य ने ली थी। इतना बड़ा परिवर्तन बिना किसी लूट-खसोट या अवैधानिक कार्यों के नहीं होता। बाज़ार की गतिविधियाँ ख़ुफ़िया तौर पर इस मुख्यमार्ग के पीछे बनी गलियों में पनपती रहीं, लोगों की रोज़ी-रोटी का ज़रिया बनी रहीं। हमारा रुख़ स्त्येंका मार्ग और उसकी गलियों की तरफ़ ही था। इस सैर में इतिहास की ओर हमें समय-समय पर मुड़ना ही पड़ेगा, क्योंकि मॉस्को के केंद्रीय हिस्सों की नींव में कई दौर की ईंटें लगी हैं।

'स्त्येंका मार्ग' के नाम के क़िस्से को भी जान लीजिए। उज़्बेक योद्धा तैमूरलंग 14वीं सदी में बहुत तेज़ी से रूस के हिस्सों पर क़ब्ज़ा करता जा रहा था। उसकी सेना की संख्या और क्षमता मॉस्को में तैनात रक्षकों से कहीं अधिक थी। रूसी मानस तब बुरी तरह से धर्मान्धता की चपेट में होता था; उनका सारा भरोसा इस बात पर था कि जल्दी ही व्लादिमीर शहर से चमत्कारिक देव प्रतिमा मॉस्को पहुँच कर शहर की रक्षा कर लेगी। यह प्रतिमा मॉस्को के नवाब के निवेदन पर ही व्लादिमीर से भेजी गई थी। कहते हैं कि तैमूर लंबी कूच के कारण बुरी तरह से थक चुका था, उसे वतन की याद सपनों तक में सताने लगी थी। उसने लगभग उसी दिन अपनी सेनाओं को वापिस लौटने का हुक्म दिया, जिस दिन उस देव प्रतिमा का स्वागत मॉस्को में हुआ था, उससे शहरवासियों की मुलाक़ात हुई थी। मुलाक़ात का पुराना रूसी शब्द 'स्त्येतेनिये' होता है, इसी शब्द से मार्ग को

अपना नाम मिला। लोगों को लगा था कि देव प्रतिमा के प्रताप से तैमूरलंग रूस छोड़ कर जा रहा है।

गलियों से हमारी रहगुज़र त्रिदेव-गिरजाघर से शुरू हुई। 17 वीं सदी में इस इलाक़े के इर्द-गिर्द लोग काग़ज़ पर पेंटिंग्स बना कर बेचा करते थे, यहाँ पर जब गिरजाघर बनाया गया तो उसे जो नाम दिया गया, उसका अनुवाद होगा 'पन्नों पर त्रिदेव'; बढ़िया बात यह है कि यह मंदिर उसी समय की वास्तुकला की नुमाइंदगी आज तक करता है। वह बदलते समय और प्रचलनों की मार से बचा रह सका है। उस ज़माने में सममिति (सुडौलपन, संतुलन) पर इतना ध्यान नहीं दिया जाता था, चर्च में यह स्पष्ट रूप से दीखता है। यहाँ से बढ़ते ही हम जिस नुक्कड़ पर पहुँचे, वह सबसे अच्छी तम्बाकू के लिए मशहूर होता

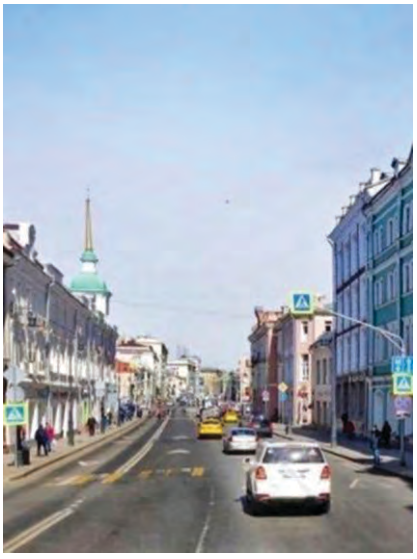

था, लेकिन अब उसका उससे कोई नाता नहीं रहा। कुछ पेचीदा गलियों से निकल हम एक ऐसी इमारत के सामने खड़े थे, जो पूरी तरह से मुख्यमार्ग योग्य थी; तो वह इन अन्दरूनियों में कैसे फँसी? बात दरअसल यह है कि स्तालिन के बहुव्यापी विकास कार्यक्रम के तहत इन सब छोटी गलियों को तोड़कर बहुगामी सड़कें बनाने की योजना थी, जिन पर उस दौर के भव्य भवनों को होना था। यहाँ गंगा थोड़ी उलटी बह गई। भवन तो बन गया, लेकिन द्वितीय युद्ध की मार ने उस विकास कार्यक्रम को रोक दिया, जिसके तहत सड़क बननी थी।

'स्त्येंका मार्ग' के पीछे की गलियाँ आमतौर पर एक दूसरे के समानांतर हैं। इसकी भी एक वजह है। यानी यह इलाक़ा अमीरों का कभी नहीं रहा। जिन क्षेत्रों में बड़े रईस रहा करते थे, उनमें वे कई गलियाँ ख़रीद लिया करते थे और अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ वहाँ अपनी जागीरें बनाया करते थे। किसी बड़े रईस ने इन गलियों में दिलचस्पी नहीं दिखाई, यानी वे जस की तस रह गईं।

अब थोड़ा उन दिनों के मॉस्को के भूगोल के बारे में। क्रेमलिन (दुर्ग) निर्माण से रूस में शहरों का बसना शुरू होता था। क्रेमलिन की दीवारों के भीतर राजे-रजवाड़े और उनके क़रीबी रहा करते थे। क्रेमलिन से आज के बुलवार्ड रिंग तक शहर के अधिकारी, सेनाकर्मी आदि रहा करते थे। यानी हरे-भरे बुलवार्ड रिंग की जगह ऊँची दीवार होती थी। इस दीवार के परे कारीगरों, दस्तकारों, मज़दूरों वगैरह की बस्तियाँ होती थीं। गलियों के नाम भी उसमें होने वाले कामों के आधार पर होते थे। जहाँ घंटियाँ बनती थीं, उसे घंटी वाली गली का नाम मिला (इसी गली में क्रेमलिन के अंदर मौजूद 'शाही घंटे' को ढाला गया था), जहाँ छपाई होती थी, छापने वालों की गली का, वग़ैरह-वग़ैरह। वैसे सबसे बाहरी गली को आख़िरी गली का नाम प्राप्त है; हालाँकि उसके बाद अब एक गली और भी बन गई है।

हर जगह का इतिहास उतना ही रोचक होता है जितने वहाँ के बाशिंदे। चूँकि सभी गलियों में आम जनता का वास था, जो

रोज़मर्रा के कामों और ज़िंदगी में इतनी व्यस्त होती थी कि रंगीनियों के लिए न ही उसके पास संसाधन थे और न ही समय। पर कहते हैं न कि वेश्यावृत्ति वह पेशा है जो सबसे पहले शुरू हुआ और सबसे आख़िर में ख़त्म होगा, और उससे यह इलाक़ा भी अछूता न रहा। हमारे क़दम उस गली में भी पड़े जो रेड लाइट एरिया की नुमाइंदगी करती थी। उस वक़्त वह सड़क 'ग्राचोव्का' कहलाती थी। ख़ुद को सभ्य कहने वाले यह दावा किया करते थे कि उससे उनका कोई रिश्ता नहीं; फिर वह पनपती कैसे थी? गली की दो तिहाई इमारतों से अधिक में आधिकारिक रूप से चकले थे, कहते हैं अनाधिकृत तौर पर लगभग सभी में। चूँकि यह गली बहुत बदनाम हो गई थी, यहाँ पर मकानों का किराया अपेक्षाकृत कम होता था।

अंतोन चेख़व ने भी जब मॉस्को में अपने पाँव ज़माने चाहे, तो आर्थिक स्थिति के कारण उनकी पहली रिहाइश ऐसी ही एक इमारत के तहख़ाने में थी। ये गलियाँ पुरहयात होती थीं, ज़िंदगी के हर रंग से सराबोर। उभरते कहानीकार के लिए यह माहौल काफ़ी कारगर सिद्ध हुआ, उन्हें अफ़सानों के लिए विषयवस्तु हर तरफ़ बिखरी मिल जाती थी। कहानी 'A Nervous Breakdown' का केंद्र यही इलाक़ा है। चेख़व को जल्दी ही अपनी कहानियों से शोहरत मिली, आर्थिक स्थिति सुधरी और वे तहख़ाने का मकान छोड़कर पास की एक बेहतर बिल्डिंग की दूसरी मंज़िल के घर में रहने लगे।

ये गलियाँ लकड़ी के मकानों से आधुनिक इमारतों तक की गवाह रही हैं। इन्होंने वास्तुकला के बदलते प्रचलनों को आते-जाते देखा है। इस इलाक़े को कभी समृद्ध कहलाने (आज का दिन इस तथ्य का अपवाद है) का अवसर नहीं मिला। यहाँ हमेशा आमजन की बस्तियाँ रहीं, इसलिए इमारतें भी कभी भव्य नहीं रहीं।

17-18 वीं सदी के लकड़ी के मकानों की जगह 19वीं सदी में ईंट-गारे के भवनों ने ले लीं। यूरोपीय वास्तुकला की सभी शैलियों की उपस्थिति दर्ज कराती इमारतें अभी भी गलियों

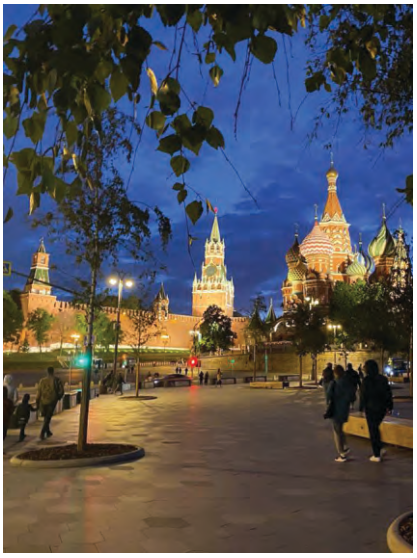

और प्रांगणों से गुज़रते दिख जाती हैं। यहाँ के कुछ घर तो वास्तुकला का नमूना थे और आज भी उनका अग्रभाग ज्यों का त्यों रखा गया है। इलाक़े को वेश्यावृत्ति के नाम से छुटकारा दिलाने के लिए सभी कोशिशें की गईं, यहाँ तक कि कुछ सड़कों के नाम भी बदले गए।

जब तक इंसान है, व्यापार रहेगा। व्यापार रहेगा तो बाज़ार रहेगा। जिस बाज़ार को लेनिन के आदेशानुसार हटा दिया गया था और जो चोरी-छिपे नुक्कड़ों और अँधेरे कोनों में लगा करता था, उसे आख़िरकार जगह मिली। 19वीं-20वीं सदी के महान् वास्तुशिल्पी कंस्तांतिन मेलिंकव की शुरूआती परियोजनाओं में नए-सुख़ारेव्स्काया बाज़ार की बिल्डिंग थी। ये आर्किटेक्ट नव-प्रयोगों (avant-gradism) के लिए जाने जाते हैं।

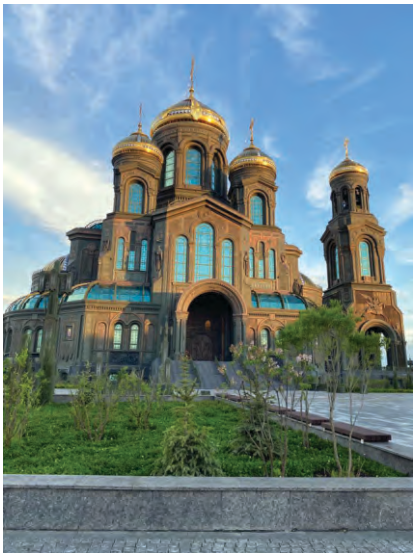

नए बाज़ार की इमारत जहाज़ के आकार की है। इसने इलाक़े को आधुनिकता के रंग में रंग दिया था। आज यह इमारत अपने पुराने गौरव को तरस रही है, एक वीरान-से कोने में अपने नवीनीकरण की गुहार लगा रही है।

इसकी तरफ प्रशासन का ध्यान पहुँच भी गया था,कायाकल्प की योजनाएँ बन भी रही थीं। लेकिन यूक्रेन के साथ युद्ध की स्थिति ने प्रशासन के सभी समीकरण बदल दिए हैं। मेलिंकव की गुम होती इस निशानी को भी अब हम सब की ही तरह शांति के दिनों का इंतज़ार है।

हमारे आख़िरी पड़ाव में वह बिल्डिंग थी, जो अपनी भव्यता के साथ इसलिए भी प्रसिद्ध है कि उसे लेनिन का प्रथम स्मारक होने का गौरव प्राप्त है। इस भवन के लकड़ी के विशाल भव्य द्वार के दाहिनी तरफ लेनिन का सुनहरे रंग का लगभग 50 सेमी व्यास का सुनहरा मेडल-सा लगा है। इस भवन के निवासियों ने 21 जनवरी 1924 को लेनिन की मृत्यु की ख़बर मिलने पर इसे ढालना शुरू कर दिया था और लगभग एक महीने में यह मेडल- सी प्रतिमा तैयार हो गई थी। आधिकारिक तौर पर कोई स्मारक उसके काफ़ी बाद ही बना होगा क्योंकि देश क्रांति के बाद की उथल-पुथल से गुज़र रहा था और उसके सामने अब नए नेता के चयन का सवाल खड़ा था।

यह सैर थी तीन घंटे की, जिसमें साढ़े तीन किलोमीटर की दूरी तय हुई और सैलानियों के सामने इतिहास के लगभग साढ़े तीन सदियों के पन्ने खुले। पिचातनिकव गली की ऊँचाई से नेगलींका नदी के पार बसी बस्ती और उसमें स्थित गिरजाघरों के गुम्बदों का सुन्दर दृश्य दिखलाई देता था, जो आधुनिक फ़ैशन की बनी काँच की ऊँची इमारतों ने छिपा दिया है।

आधुनिकता और विकास की क़ीमत कई बार अतीत के उत्कृष्ट नमूनों को गँवा कर चुकानी पड़ती है। इतिहास के पन्ने पाठ तो पढ़ाते रहते हैं, हम उससे कितना सीखते हैं यह हम पर निर्भर करता है।

000

मठ हाउस

दिलीप कुमार

प्रश्न – हिन्दी साहित्य के वर्तमान परिवेश में मठ और मठाधीशों की क्या स्थिति है ?

उत्तर- हिन्दी साहित्य इस समय मठ और मठाधीशों के कम्रिक रूपांतरण की प्रक्रिया से गुज़र रहा है। कोरोना काल में यात्रा करने की बंदिशों के मद्देनज़र कई मठ खाद पानी (परनिंदा) के अभाव में ध्वस्त हो चुके हैं लेकिन उनके भग्नावेष यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। इन मठों से निकले हुए चेले -चपाटे (सखियाँ -सहेलियाँ) अभी भी इन मठों को महत्त्वपूर्ण, समीचीन और क़िले की भाँति मज़बूत मानते हैं, तथापि नए क़िलेदार ने सबसे मज़बूत और मठों के प्रकाश स्तंभ माने जाने वाले मठ को प्राइवेट लिमिटेड घोषित कर दिया है और भारत के कंपनी ला कानून के मुताबिक सौ-सौ रुपये के मानदेय पर लिखी गई रचनाओं को मठ की बौद्धिक संपत्ति मान लिया गया है। मठ के टीम लेखक (जिन्हें लोग गिरोह लेखक कहते हैं) इस प्राइवेट लिमिटेड को इसलिये अपनी सेवाएँ देते हैं और ख़ुद को "साहित्य का सेक्युलर जीव" और "बौद्धिकता का लाइट हाउस" मानते हैं। ये लोग अपने मठ से बाहर लिखने वाले लेखकों को "कम्यूनल, संघी-कंघी लेखक" कहकर ख़ारिज करते हैं। इसी तर्ज पर आबाद किये गए बनारस, इलाहाबाद, भोपाल जैसे लघु मठ केंद्रों पर अतीत में "लाइट हाउस मठ" से प्रेरित गतिविधियों का संचालन होता रहा था, परन्तु प्रमुख मठाधीशों के काल-कवलित और बीमार होने के कारण इस मठ की गतिविधियाँ मंद पड़ गई थीं। फिर कोरोना काल की दुश्वारियों ने मठ को न सिर्फ खंडहर बना दिया, बल्कि मठ को पदस्थापना भी अन्यत्र करनी पड़ी।

सो कुछ वर्षों पूर्व तक सुरा-सुंदरी की चर्चा से शुरू होकर चरित्र हनन का केंद्र बन जाने वाले अधिकांश मठों में वर्तमान में सिर्फ पढ़ाई -लिखाई और व्यापारिक कोलेबरेशन की बातें होते हैं कि क्रांति के नाम पर इकट्ठा की गई बौद्धिक संपत्ति को इनकैश कैसे कराया जा सके। ध्यातव्य है कि लेखन की इस बौद्धिक संपदा के मानदेय का भुगतान साम्प्रदायिकता से लड़ने के नाम पर चंदा प्राप्त करके किया गया परन्तु अब ये बाज़ार में बिकने को रखे हैं। स्वर, आडियो, वीडियो से लेकर प्रिंट तक, ये उस बकरे की तरह हैं जिसमें माँस, हड्डी तक बिक जाने के बाद उसकी खाल तक बेच दी जाती है। अत: विमर्श और मुक्ति के नाम पर संग्रहित समग्र सामग्री जो क्रांति करने के लिये इकट्ठा थी अब वैल्यू अनलाकिंग की प्रक्रिया में है। क्रांतिकारी लेखकों के तरकश के उधार में मिले तीर अब सन्तानों के बचत खाते में जाकर उनका भला कर रहे हैं।

प्रश्न –मठों की उपादेयता की विवेचना करें और विधाओं के प्रकाश में सन्दर्भ व्याख्या करें।

उत्तर –मठ आवश्यक हैं और मठाधीश भी, विधाएँ बदलती रहती हैं। पहले अतुकांत कविता से क्रांति के प्रयास हुए। प्रयास सफल रहे कविता सभी से कट गई, जो लिखते हैं वे भी नहीं बता सकते कि उनकी कविता का मन्तव्य क्या है। कविता के बाद पाठकों की बारी कहानीकारों से त्रस्त होने की थी, इसमें सुबह से शाम तक क्या बीता टाइप के लेखन और सॉफ्ट पोर्न की लिपिबद्धता को देखा -भोगा यथार्थ मानकर कहानी का मुलम्मा पहनाया गया।

ऐसे लेखक-लेखिकाओं की बहुत बड़ी कतार है, जिनसे पाठक न सिर्फ त्रस्त बल्कि पढ़ने को अभिशप्त हैं, अकहानी, नई कहानी जैसे पड़ावों से गुज़रती अब ये तेरी मेरी कहानी बन गया है। सुरा-सुंदरी के इर्द-गिर्द बिताए गए समय को लिखकर मठों की जड़ों को मज़बूत किया जाता है। होड़ है कि कौन किसकी पोल खोलेगा और कितनी छीछालेदर करेगा या करवाएगा।

प्रश्न -साहित्य में रूपकों से अपनी बात कही जाती है, वर्तमान में व्यंग्य की क्या स्थिति है।

उत्तर –व्यंग्य अब पिट्ठू बैग की तरह हो गया है, जिसे हर कोई हर जगह लेकर जा सकता है। व्यंग्य खालिस साहित्य की पीठ पर बैठकर चल रहा है, ये "हरफ़नमौला और हर फन अधूरा" टाइप की स्थिति है। सब कुछ लिख लेने वाले लोग भी व्यंग्य लिख रहे हैं और कुछ भी साहित्य न लिख पाने वाले लोग भी व्यंग्य लिख रहे हैं। यानी व्यंग्य हर कोई लिख सकता है, भले ही वह कविता का शीर्ष साहित्यकार हो या नौसिखिया। व्यंग्य को बहुतेरे लोग विधा नहीं मानते इसलिए व्यंग्य साहित्य के शिल्प, व्याकरण आदि अधिकांश नए लेखक लिहाज नहीं करते। उनके लिये व्यंग्य हिंगलिश में रेस्टोरेंट में दिए आर्डर सरीखा है। ज़्यादातर पत्रिकाएँ व्यंग्य

दिलीप कुमार
मॉलती कुंज कालोनी, आनन्द बाग,
बलरामपुर, उत्तर प्रदेश- 271201
मोबाइल- 9955919354
ईमेल- jagmagjugnu84@gmail.com

प्रकाशित नहीं करतीं, तो अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने के शौकीन विधा के लोग सीधे इंटरनेट के जरिये व्यंग्य लेखन में पदार्पण करते हैं। इंटरनेट पर न्यूज़ पोर्टल, साहित्यिक पोर्टल जैसे तमाम छोटे-छोटे साहित्य के प्याऊ हैं जहाँ इन व्यंग्य पीड़ितों की छपास की प्यास बुझती है। चूँकि व्यंग्य लेखन में धन नहीं है और ऐसे लेखन की कीर्ति में अमरता का दिवास्वप्न नहीं है, इसलिये इसमें स्थाई कमीशन्ड लेखक कम ही हैं। दो चार लोग अपने निजी संसाधनों से व्यंग्य की मशाल को आगे बढ़ा रहे हैं लेकिन व्यंग्य के उन मशालचियों के पीछे बड़ी कतार ग़ैर व्यंग्यकारों की है। एक बड़ा व्यंग्यकार दूसरे बड़े व्यंग्यकार की मशाल की रोशनी में रचनात्मक योगदान नहीं दे सकता। इसके उलट वह अपनी मशाल लेकर निकल पड़ेगा जिसके पीछे ग़ैर व्यंग्यकारों की पूरी फौज होगी, ये फौज पहली फौज के समतुल्य और अनुवर्ती होगी, इसका नतीजा यह होगा कि संकलन पर संकलन निकलते जाएँगे, मूलत: इसमें भला उन ग़ैर व्यंग्यकारों का हो जाता है जो अपने सेनापति बदलते रहते हैं संकलन में स्थान पाने के लिये, बाराती घूम -फिर कर वही व्यंग्यकार रहते हैं, बस संकलन का मशालची दूल्हा बदल जाता है। व्यंग्य पहले व्यवस्था पर शालीन थप्पड़ हुआ करता था, समाज को जगाने के लिये साहित्य के जरिये एक मिशन हुआ करता था,फिर एक दूसरे को चिकोटी काटने का प्रोफ़ेशन हुआ और अब एक दूसरे पर कीचड़ उछालने का धंधा बनता जा रहा है। इसके अलावा कूल डूड और कूल डूडनियों की एक ऐसी प्रजाति व्यंग्य में विकसित हुई है जो सोशल मीडिया के एक तमाम प्लेटफॉर्म्स से व्यंग्य की थीम चोरी करती रहती है। इस पीढ़ी की ख़ासियत यह है कि चुराए हुई व्यंग्य सामग्री को जब इंस्टाग्राम पर पोस्ट करते हैं तो उसे मीम कहते हैं और जब उसी व्यंग्य को फेसबुक पर पोस्ट करते हैं तो उसे व्यंग्य कहते हैं। व्यंग्य के वैसे तो कोई स्थायी मठ या गॉडफादर टाइप के मठाधीश नहीं हैं, क्योंकि व्यंग्यकारों को धीर -गंभीर टाइप के साहित्यकार, अपनी कोटि का साहित्यकार नहीं मानते। इसलिए व्यंग्य में शाल, मानदेय, काफी कम हैं। इसीलिए बहुत से प्रतिभाशाली व्यंग्यकार, मुंबइया फिल्मों के शार्प शूटर की भाँति अपनी सेवाएँ फ्रीलांस तौर पर देते हैं। यानी सभी मठों को अपनी सुविधानुसार और इच्छा अनुसार सेवाएँ देते हैं प्रोजेक्ट की गुणवत्ता के अनुसार समयबद्ध सेवा, और प्रोजेक्ट ख़त्म होते ही फिर फ्री हो जाते हैं और बतौर फ्रीलांसर नया प्रोजेक्ट में जुड़ने का जुगाड़ खोजने लगते हैं। ये सभी के हैं और किसी के भी नहीं।

प्रश्न – लघुकथा में मठों और मठाधीशों की स्थिति पर प्रकाश डालिये?

उत्तर - "वन्स ए काप, ऑलवेज़ ए काप" यानी एक बार जो पुलिस में भर्ती हो गया वह जीवन भर मन से पुलिसवाला ही रहता है। इस मशहूर फिल्मी डायलॉग की तरह एक बार जो व्यक्ति आभासी संसार के लघुकथा समूहों से जुड़ कर लघुकथा लिखने लगा फिर वह लघुकथा में ही जिएगा और मरेगा। लघुकथा के ये आधुनिक मठ फेसबुक पर जन्म लेते हैं और व्हाट्सप्प ग्रुपों पर इन मठों की सिर फुटौव्वल चलती रहती है। मज़े की बात यह है कि ऐसे लघुकथा लेखकों का आधा जीवन यह समझने में लग जाता है कि "लघुकथा क्या है?" और फिर आधा जीवन इनका यह एक दूसरे को बताने में बीत जाता है कि "लघुकथा यह है"। ये किसी भी विधा में जाकर लिख आएँ; लेकिन शाम होते-होते ये आभासी संसार के लघुकथा के मठ में लौट आते हैं।

सात लाइन की लघुकथा को जानने - समझने के लिये ये लोग पचास लोगों का सम्मेलन करते हैं। ये बड़े ही निष्काम साहित्य सेवी होते हैं, ये चाहे दुबई-इंग्लैंड में रहते हों या बेगूसराय अथवा जबलपुर में, ये बेहद संगठित और अनुशासित रहते हैं। ये सिर फुटौव्वल से लेकर मान मनोव्वल का खेल आपस में ही खेलते हैं, कितना भी लड़-झगड़ लें लेकिन आगामी लघुकथा संकलन की घोषणा होते ही सब एक हो जाते हैं। इन मठों की ख़ासियत यह है कि "या तो आप हमारे साथ हैं या ख़िलाफ़" पर कार्य करते हैं।

व्यंग्य विधा की भाँति यहाँ पर स्वंत्रत लेखन की अनुमति नहीं है, या तो आप एक निश्चित मठ के बैनर तले लिखेंगे और विरोधी मठों के लोगों से बोलचाल तक नहीं रखेंगे। अगर मठ से बाहर किसी व्यक्ति की लिखी लघुकथा की पोस्ट भी लाइक कर दी और उनके किसी साहित्यिक आयोजन में शामिल हो गए तो मठ से ग़द्दारी मानी जाएगी और तुरन्त निकाल दिए जाएँगे। जेंडर, जाति आधारित कई उपसमूह हैं जो इन मठों के लोकल ऑफ़िस की भाँति कार्य करते हैं। फिर भी स्वयं का धन, समय, ऊर्जा और पारिवारिक जीवन ताक पर लगा कर बने रहने वाला ये सबसे निष्काम सेवी साहित्यिक मठ है जो कविता -कहानी के मठों की तरह पावरहाउस मठ बनने की प्रक्रिया में है। भविष्य में लघुकथा के ये उप मठहॉउस कहलाये जाएँगे।

प्रश्न -मठों हेतु भविष्य की विधाएँ क्या होंगी, पहले हाइकू के मठ बनेंगे या तांका के।

उत्तर -फिलहाल तो लघुकथा के आभासी संसार से निकले मठों का भविष्य उज्ज्वल लग रहा है, ये ही भविष्य के शक्तिशाली और क्रियाशील मठ बनेंगे। हाइकु और तांका मठ बनने की प्रक्रिया के अंतिम विकल्प होंगे। भारत में इनका विकास अभी शैशवास्था में है, अलबतत्ता विदेशों में कुछ लोगों ने इसे हिन्दी का मठ हाउस बनाने के प्रयास शुरू कर दिए हैं। इनकी हालत मोहल्ले के उस चाचा की तरह है जो सर्दी आते ही सूट प्रेस करवा लेते हैं कि न जाने किस बारात में बाराती कम पड़ रहे हों और उनका बुलावा आजाए कोरम पूरा करने के लिये। भारत में हिन्दी में ये विधाएँ तब प्रकाशित होती हैं,जब अख़बारों या पत्रिकाओं के पास सारी प्रकाशन योग्य सामग्री का प्रयोग करने के बाद भी कुछ जगह या सामग्री बची रहती है तब वहाँ पर हायकू या तांका प्रकाशित कर दिया जाता है। ऐसा साहित्य और ऐसे साहित्यकार एक दूसरे के प्रेम में पगे निष्काम योगी की तरह होते हैं। इनका सिद्धांत वाक्य होता है "ना काहू से दोस्ती,ना काहू से बैर।" आगामी मठहाउसों पर निरंतर शोध चल रहे हैं।

000

साहित्यकार बनने के नुस्खे

चन्द्र प्रकाश श्रीवास्तव

चन्द्र प्रकाश श्रीवास्तव
208 गंगोत्री (हवेलिया) झूंसी,
इलाहाबाद- 211019 उप्र
मोबाइल- 9451372281, 8318532368
ईमेल- samaysamvad2022@gmail.com

आप साहित्यकार बनना चाहते हैं मगर कोई संपादक या प्रकाशक आपको घास डालने को तैयार नहीं। आप एकदम मायूस न हों, मैं आपको कुछ ऐसे पेटेंट नुस्खे बता रहा हूँ, जिन्हें आज़माने से आपकी साहित्यकार बनने की मनोकामना अवश्य पूरी होगी। अगर आप समझते हैं कि साहित्यकार बनने के लिये आपको साहित्य पढ़ना पड़ेगा तो यह आपकी नासमझी है। इसी नासमझी की वजह से पचास फ़ीसदी लोगों की साहित्यकार बनने की मुरादें असमय ही दम तोड़ देती हैं। अगर आप पढ़ने के चक्कर में पड़कर साहित्य के अथाह सागर में एक बार डूबे तो ज़िंदगी भर गोते लगाते रह जाएँगे और कोई आपको जान तक नहीं पाएगा। अरे भाई! कबीर कहाँ पढ़े लिखे थे? सूरदास के ज़माने में तो ब्रेल लिपि तक ईजाद ही नहीं हुई थी। आपको भी इन्हीं के पदचिह्नों पर चलना चाहिए। आप तो स्वयंभू साहित्यकार हैं, क्या ज़रूरत है निराला, मुक्तिबोध, अज्ञेय, प्रेमचंद, बच्चन, शमशेर, त्रिलोचन और दुष्यंत आदि को पढ़ने की। बस आप लिखना शुरू कर दीजिये और आगे बताए गए नुस्खों पर अमल कीजिये।

काव्य सृजन के लिये बस आपको तुक मिलाना आना चाहिए।

शिल्प अथवा कथ्य की परवाह करने की कोई ज़रूरत नहीं। भाषा का अच्छा ज्ञान होना भी बहुत ज़रूरी नहीं है। किन्हीं चार-छ:कवियों की कविताएँ पढ़ीं, शब्दों में थोड़ा हेर-फेर किया, कुछ पक्तियाँ इधर-उधर कीं, तैयार हो गईं कुछ ताज़ा रचनाएँ।

मुक्तता का युग है, आप मुक्त हैं कुछ भी लिखने के लिये। आपका लिखा किसी के पल्ले

पड़े या न पड़े और उसका कोई अर्थ निकले या न निकले, आप इसके बारे में तनिक भी परेशान न हों। आपका लिखा आसानी से समझ में आ जाए तो आप (साहित्यकार) और आम (पाठक) में फ़र्क ही क्या रह जाएगा। जो चित्र समझ में न आए वही माडर्न आर्ट और जो साहित्य किसी के पल्ले न पड़े उसे ही आधुनिक साहित्य समझा जाता है। स्तरीय साहित्य वही है जिसे लेखक ख़ुद लिखे, ख़ुद पढ़े और स्वयं ही समझे। आपकी सुविधा के लिए नमूने के तौर पर कुछ पक्तियाँ अर्ज कर रहा हूँ-

डण्डे की नोक पर टिका है अंडा, अंडा सफेद झक, अंडा अंडाकार जिसके भीतर है समूचा ब्रह्माण्ड अंडा उछल रहा है, एक बूढ़ा बालक फुदक रहा है फुदक रहा है अंडा...

कृपया उपरोक्त पंक्तियों का अभिप्राय या अर्थ जानने का प्रयास न करें। पाठकों को शब्दाडम्बरों में उलझाना भला कौन सा मुश्किल काम है। छायावाद चला गया तो क्या हुआ आप छायावाद के भूत और रहस्यवाद के फ़ार्मूले का इस्तेमाल करने के लिए स्वतंत्र हैं। यह दीगर बात है कि न तो आप छायावाद के बारे में कुछ जानते हैं और न ही रहस्यवाद के विषय में।

यदि आपकी इच्छा लोकप्रिय मंचीय कवि बनने की है तो सबसे पहले आप चुटकुलों की कुछ किताबें खरीदिये जिनमें नॉनवेज बायोलॉजिकल चुटकुले भी हों। अपनी प्रतिभा का इस्तेमाल कर आप चुटकुलों का काव्य रूपान्तरण कर डालिये। ध्यान रहे अपनी पत्नी और दूसरों की पत्नियों पर कुछ कविताएँ ज़रूर हों। अब आप धौंस जमा सकेंगे मंचों पर, शर्त यह कि मंच पर काव्य पाठ करते समय आपको कुछ लटकों-झटकों तथा कुछ विशेष मुद्राओं का प्रयोग ज़रूर करना पड़ेगा। कुछ ही दिनों में जिसके आप अभ्यस्त हो जाएँगे।

आपकी जो हास्य कविता हिट हो जाए, उसे ही हर मंच पर सुनाकर आप साल दर साल दर्शकों की वाहवाही लूट सकते हैं और पत्र-पुष्प भी अर्जित कर सकते हैं बग़ैर कुछ नया लिखे। मंच संचालक से तालमेल बना कर रखें ताकि कार्यक्रम के बीच-बीच में वह आपकी तारीफ़ करता रहे और हर मौके पर आपको बुलाए भी। अपने स्तर से यदि आप कुछ श्रोताओं का इंतज़ाम कर पाएँ तो यह आपके लिए और अच्छी बात होगी। 'स' और 'श' के बीच या 'इ' और 'ई' के बीच आप अंतर नहीं कर पाएँ या फिर 'पुल्लिंग' और 'स्त्रीलिंग' के बीच भेद नहीं कर पाए तो भी मंचीय कार्यक्रम में चलेगा। मात्रा, विन्यास, व्याकरण, रदीफ़, काफ़िया आदि की चिंता भी करने की कोई ज़रूरत नहीं। ये पब्लिक है कुछ नहीं जानती है।

साहित्यकार बनने के लिये सिर्फ लिखने से काम नहीं चलने वाला। आपको प्रचार तंत्र के महत्त्व को भी समझना पड़ेगा और विज्ञापन के बहुप्रचलित हथियार के प्रयोग में सिद्धहस्त होना पड़ेगा। समीक्षकों और संपादकों का दामन थामना साहित्य की इंडस्ट्री में पाँव ज़माने के लिये अनिवार्य है। आलोचक और समीक्षक जब जिसे चाहें ज़मीन से उठाकर आसमान पर बैठा दें और चाँद से लाकर धरती पर पटक दें। संपादक अगर आप से मुँह फेर लें तो आपका लिखा सब गोबर, इसलिये हे भावी स्वनामधन्य साहित्यकार ! संपादकों और समीक्षकों से रिश्ता जोड़ो। उनसे अपनी घनिष्ठता बढ़ाओ और उन्हें ही अपना माई-बाप सब कुछ समझो। सोशल मीडिया पर उनकी चाटुकारिता करते रहो, उनकी संस्था की मेम्बरशिप लो और अगर वह कोई पत्रिका छापते हों तो उसके आजीवन सदस्य बन जाओ। कुछ लोग साहित्यकार बनाने का ऑनलाइन कोर्स चला रहे हैं जिसे आप ज्वाइन कर सकते हैं। वे आपको ठोंक-पीट कर पंद्रह दिन में कविता-कहानी लिखना सिखा देंगे और छपने में भी उनका आशीर्वाद काम आएगा।

प्रकाशकों और संपादकों तक आपकी ठीक ठाक एप्रोच हो, इसके लिये ज़रूरी है कि या तो आप ख़ुद उच्च अधिकारी हों अथवा ऊँचे अफ़सरों से आपका अच्छा संपर्क हो। आज की तारीख में तक़रीबन हर बड़े सौ अफ़सरों में से पचास साहित्यकार के रूप में जाने जाते हैं। आए दिन किसी न किसी अफ़सर के उपन्यास या कविता संग्रह का विमोचन होता ही रहता है। इसलिये आप किसी न किसी बड़े अफ़सर की चाटुकारिता करिये और उससे दोस्ती गाँठिये। वह आपके लिये साहित्यकार बनने की सीढ़ियाँ बनाएगा। अगर आप अध्यापक हैं तो भी आपके साहित्यकार बनने का रास्ता बहुत आसान है। बस आप पढ़ाना छोड़कर उन सभी शिक्षणेत्तर कार्यों में लग जाइए जो साहित्यकार बनने के लिए ज़रूरी समझे जाते हों। मसलन धरना, प्रदर्शन, गोष्ठी, कार्यशाला, पदयात्रा, कंदील मार्च, ऑफलाइन- आनलाईन परिचर्चा, विमोचन, सम्मान समारोह आदि में आपकी शिरकत होती राहनी चाहिए, क्लास नहीं लेंगे तो भी सैलरी तो आपको मिलेगी ही। मेरे जानने वाले सौ अध्यापकों में से अस्सी की पहचान लेखक, कवि या समीक्षक के रूप में है। अख़बारों में अक्सर उनका नाम छपता रहता है और अधिकारी उनसे सवाल-जवाब करने से बचते फिरते हैं। कवि अथवा कथाकार के रूप में लगातार चर्चा में बने रहने के लिये समय समय पर पुरस्कृत होना व प्रशस्ति पाना आवश्यक है। इनकी व्यवस्था आपको ख़ुद करनी पड़ेगी और खर्च भी आप ही को वहन करना पड़ेगा। नुस्खा थोड़ा खर्चीला ज़रूर है पर है बड़ा कारगर। आप किसी संस्था द्वारा अपना सम्मान समारोह अथवा अपनी नई किताब का विमोचन समारोह स्वयं आयोजित करवाइये।

विमोचन अगर किसी स्थानीय नेता या किसी पत्रिका के संपादक द्वारा हो तो बेहतर है। सम्मान समारोह की रिपोर्टिंग दो चार स्थानीय अख़बारों में होनी चाहिए, जिसमें किसी स्वनामधन्य आलोचक द्वारा आपको युग प्रवर्तक साहित्यकार तथा आपकी रचनाओं को कालजयी घोषित किया गया हो। दो चार पत्रकारों से भी नाता जोड़े रहिये चाहे वे टटपूँजिया पत्रकार ही क्यों न हों।

यदि आप अंग्रेज़ी, रूसी या अन्य किसी विदेशी भाषा का ज्ञान रखते हैं तो आपके लिये साहित्य सृजन और भी आसान है। किसी विदेशी भाषा की रचना का कामचलाऊ तर्जुमा कर उसे आप मौलिक रचना के रूप में

अपने नाम से छपवा सकते हैं। किसे फुर्सत है छान-बीन करने की और अगर किसी को आपकी कारस्तानी का पता चल भी गया तो वह क्या बिगाड़ लेगा आपका।

मेरे एक मित्र साहित्यकार तो रूसी, चीनी, इतालवी भाषा जाने बग़ैर इन भाषाओं की रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद कर डालते हैं। दरअसल वह उन्हीं रचनाओं का हिन्दी तर्जुमा करते हैं जो पहले ही अंग्रेज़ी में अनूदित होकर छप चुकी होती हैं।

साहित्य के क्षेत्र में रातों-रात नाम कमा लेने का एक नया तरीक़ा हाल ही में ईजाद किया गया है और वह है अपने जवानी के दिनों की पोल-पट्टी खोलना। अपनी कहानी या संस्मरण में आप वह सब कुछ लिख मारिये जो अपने जवानी के दिनों में किया। मसाला साहित्य की डिमांड इन दिनों अच्छी-अच्छी पत्रिकाओं से आ रही है। अगर आपने अपनी जवानी के दौर में कुछ ऐसा वैसा नहीं किया, इधर-उधर मुँह नहीं मारा तो पछताने की ज़रूरत नहीं। नहीं किया तो भी लिख डालिए जैसे आपने किया ही हो। आपकी कहानी या संस्मरण में कुछ जीवित पात्र हों और छपने के बाद उनकी नींद हराम हो जाए तो और अच्छी बात।

यदि आप स्त्री हैं तो पुरुषों को पानी पी-पी कर कोसिये, दलित हैं तो सवर्णों को गरियाइए और स्त्री विमर्श, दलित विमर्श में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कीजिए। अगर आप हिन्दू हैं तो मुसलमानों और ईसाइयों की राष्ट्रनिष्ठा पर उँगली उठाइये और अगर अल्पसंख्यक हैं तो हिन्दुओं की धर्मान्धता पर चीखिये-चिल्लाइए।

चीखने-चिल्लाने और गरियाने से ही पता चलता है कि आप विचारों के प्रति कितने प्रतिबद्ध हैं। गरियाने के लिए आप सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का इस्तेमाल करने के लिए स्वतंत्र हैं। यदि आप धर्म विशेष, सम्प्रदाय विशेष या किसी महान् विभूति के बारे में अपमानजनक टिप्पणी करने की कूवत रखते हैं, तो आप रातों-रात चर्चित हो सकते हैं, लेकिन यह तरीक़ा सुरक्षित नहीं है। यह नुस्खा आज़माने के लिये आपको छिपने के लिये पहले से ही सुरक्षित स्थान का इंतज़ाम कर लेना चाहिए।

पासपोर्ट और किसी यूरोपीय मुल्क का 'वीज़ा' तैयार रखें तभी इस नुस्खे का इस्तेमाल करें। बेहतर होगा कि जब अन्य नुस्खे फिसड्डी साबित हो जाएँ तभी आख़िरी हथियार के रूप में इस नुस्खे को आज़माने का साहस करें। एक साहित्यकार के लिये निहायत ज़रूरी है कि वह किसी न किसी साहित्यिक बैनर या ब्राण्ड के साथ जुड़ा हो। साहित्य के किसी 'वाद' से आपका संबंध हो चाहे न हो, किन्तु अवसरवाद' से आपका गहरा तअल्लुक़ होना आपके लिये कल्याणकारी होगा। विवाद तथा अवसरवाद का स्थान साहित्य में अन्य सभी 'वादों' से ऊपर है, अत: इन्हें शिरोधार्य करिये। आप दफ़्तर से फ़र्जी टूर बनाकर साहित्यिक संगोष्ठियों में शिरकत कर सकते हैं। एयरकूल्ड सभागार में अच्छे खाद्य पदार्थ व बेहतरीन किस्म के पेय का लुत्फ़ उठाते हुए आम आदमी की तकलीफ़ों पर बहस कर सकते हैं।

यदि आपको कभी आकाशवाणी या दूरदर्शन पर चाँस मिले तो आप व्यवस्था या सरकार पर कुछ टिप्पणी मत करिये। याद रखें, अगर आप व्यवस्था को चोट पहुँचाएँगे तो व्यवस्था पलटकर आप पर वार करेगी, यानी आपको इन माध्यमों पर दुबारा मौक़ा नहीं मिलेगा। इसलिए इन माध्यमों पर कोई रचना प्रस्तुत करने से पहले उसे अच्छी तरह सूँघ लें। कहीं उसमें व्यवस्था के प्रति आक्रोश तो नहीं है ?

यदि आप कहानी, कविता, संस्मरण कुछ भी नहीं रच पा रहे हैं तो बेहतर होगा रचनाकार बनने की बजाए समीक्षक या आलोचक बनने के बारे में आप सोचें। साहित्य में टाँग अड़ाने का इससे आसान और शार्टकट तरीक़ा व विकल्प हो ही नहीं सकता। यदि आप समीक्षक या आलोचक बनने में कामयाब हो गए तो आपका कल्याण तो होगा ही, आपके मित्रों-रिश्तेदारों का भी कुछ न कुछ भला अवश्य होगा। बस आपको कुछ प्रचलित शब्द, वाक्य व चलताऊ मुहावरे सीखने होंगे, फिर आप किसी भी रचना की समीक्षा कर सकते हैं, उसे पूरी तरह पढ़े और समझे बग़ैर भी। काफ़्का से नीचे की बात मत करिए बस इतना ध्यान रखना है। अगर आप ऐसा कर सकें तो साहित्यकार क्या संपादक और प्रकाशक भी आपके क़दमों में होंगे। पत्रिकाएँ व पुस्तकें छपते ही आपके पास पहुँच जाएँगी, वह भी एकदम मुफ़्त।

यदि आपको ऊपर लिखे नुस्खों में से कोई भी नुस्खा पसंद न आ रहा हो या कठिन प्रतीत हो रहा हो तो आप साहित्यकार या समीक्षक बनने का विचार त्याग दें और अपनी ख़ुद की पत्रिका निकालनी आरम्भ करें। संपादक भी आप और प्रकाशक भी आप ही। अपने सरीखे रचनाकारों की रचनाएँ लेकर पहला अंक निकालें।

बुक स्टाल पर आते ही आपके पास रचनाओं के ढेर लग जाएँगे। अन्य पत्रिकाओं के संपादकों की रचनाएँ अगर प्राथमिकता के आधार पर छापेंगे तो आपकी रचनाएँ भी उन पत्रिकाओं में ज़रूर छपेंगी। इस तरह आप बिना हींग-फिटकिरी के ही साहित्यकारों के मैनुफैक्चरर बन जाएँगे। जिसे चाहेंगे उठाएँगे और जिसे चाहेंगे उठा कर पटक देंगे।

स्टार्टअप के तौर पर आप शहर के अपने समकक्ष कवियों का संकलन भी प्रकाशित कर सकते हैं और उनसे सहयोग राशि भी वसूल कर सकते हैं। यह संकलन आपके और आपके सहधर्मी मित्रों के ड्राइंग रूम की शोभा तो बढ़ायेगा ही और कहीं सही पौव्वा लग गया तो सरकारी ख़रीद में आप मालामाल हो जाएँगे। इसलिये किताब का दाम जहाँ तक हो सके ऊँचे से ऊँचा रखें।

ऊपर बताए गए नुस्खे आजमाएँ, कामयाबी आपके क़दम चूमेगी और फिर साहित्य के अखाड़े में कूदने के बाद नए- नए नुस्खे आप अपने आप स्वत: सीखते जाएँगे। हो सकता है आपसे नुस्खे सीखने कल मुझे आपके पास आना पड़े। तो शुरूआत कीजिये, अब देर किस बात की है। जमाइए जल्द से जल्द अपना भी सिक्का साहित्य की इंडस्ट्री में।

000

कुत्ते की मौत

हनुमान मुक्त

हनुमान मुक्त
93, कांति नगर, गंगापुर सिटी, जिला सवाई माधोपुर, राजस्थान
मोबाइल- 9413503841
ईमेल- hanumanmukt@gmail.com

वर्मा जी का कुत्ता मर गया। कुत्ते के मरने की घटना आग की तरह सारे शहर में फैल गई। टी.वी. चैनलों और अख़बारों पर ब्रेकिंग न्यूज़ में उसे दिखाया जाने लगा। यूँ तो रोज़ाना हज़ारों कुत्ते मरते हैं। कुत्तों का मरना और जीना ज़्यादा मायने नहीं रखता लेकिन इस चुनावी वातावरण में कब क्या चीज़ महत्त्वपूर्ण हो जाए पता नहीं चलता। वह भी वर्मा जी से जुड़ी हुई।

लोग अटकले लगाने लगे कि वह कुत्ता मरा नहीं बल्कि मारा गया है। इतना हृष्ट-पुष्ट, गबरू जवान वैसे ही कैसे मर सकता है। कल शाम को तो वह शर्मा जी की कुतिया के साथ देखा गया था। कहीं ऐसा तो नहीं, शर्मा जी को उस कुत्ते और अपनी कुतिया का साथ अच्छा नहीं लगा हो और उन्होंने उसे मरवा दिया हो।

उनके पड़ोसी कह रहे थे कि एक-दो दिन से वह वर्मा जी पर कुछ ज़्यादा ही भौंकने लगा था। वर्माजी को कुत्ते का भौंकना अच्छा नहीं लगा हो।

वैसे भी अपने कुत्ते का अपने पर ही भौंकना (मेरी बिल्ली, मुझसे ही म्याऊँ) किसे अच्छा लगता है, और उन्होंने उसे मरवा दिया हो। अटकलों का बाज़ार गर्म था। जो भी कुत्ते के मरने की घटना सुनता, अपनी ओर से कुछ न कुछ इन्वेस्टीगेट कर बता ही देता। मीडिया इस बात को काफी हवा दे रहा था।

मैं वर्मा जी का शुभचिन्तक हूँ। सुनी-सुनाई बातों पर ज़्यादा विश्वास नहीं करता।

मैंने उनसे पूछा, 'वर्मा जी, आपका कुत्ता मर गया। इस बारे में आपका क्या कहना है?'

वे बोले, 'कहना क्या है? कुत्ता मर गया, मतलब मर गया। रोज़ाना जाने कितने कुत्ते मरते हैं। इतना शोर कभी नहीं मचता। कोई मेरा ही कुत्ता थोड़े मरा है। कुत्तों की ज़िंदगी होती ही ऐसी है। कुछ दिन वफ़ादारी करो और जब वफ़ादारी से पेट भर जाए तो रास्ते जाओ।'

'आप क्या कह रहे हैं? मेरे कुछ समझ नहीं आ रहा। वफ़ादारी से पेट भर जाए तो रास्ते जाओ?'

वर्मा जी बोले, इसमें समझने की क्या बात है। अभी कुछ दिन पहले मेरे घर की अलमारी में बंद बरसों पुरानी एक सीक्रेट पोटली को वह खा गया। सभी सीक्रेट्स उसके पेट में पहुँच गए। वे उसे पच नहीं पा रहे थे। पेट में कुछ ज़्यादा ही आफरा आ गया था। भौंकने भी ज़्यादा लगा था। मेरी नींद तो ख़राब कर ही रहा था, पड़ोसियों को भी नहीं सोने दे रहा था। उस पेट में आफरे की वजह से वह मर गया। लोगों ने तिल का ताड़ बना दिया। मेरा कुत्ता मरा है। सबसे ज़्यादा दुख मुझे है। मैं जाने कैसे इतना दुख सहन करने की कोशिश कर रहा हूँ लेकिन लोग हैं कि मुझे शांति से दुख सहने तक नहीं दे रहे।"

यह कहते हुए वर्माजी चुप हो गए। वर्माजी की मन: स्थिति भाँपकर, मैं भी चुपचाप वहाँ से लौट आया। लोगों को बिल्कुल तसल्ली नहीं थी। वर्माजी का कुत्ता उनके लिए अपने घर के किसी भी इष्ट मित्र से भी ज़्यादा अज़ीज़ था। उनके घर का इष्ट मित्र मर जाता तो शायद 10-12 दिन शोक मना कर वे चुप हो जाते, लेकिन वर्माजी के कुत्ते के मरने का दुख उनसे सहन नहीं हो रहा था।

उनके कुत्ते के शुभचिंतक कह रहे थे कि कितना प्यारा कुत्ता था। जब भी कोई मोहल्ले का व्यक्ति वर्मा जी के यहाँ जाता तो वह बड़े प्यार से जीभ निकालते हुए, आगंतुक के पैरों को चाटने हुए, पूँछ हिलाने लग जाता। कभी उसने किसी को नहीं काटा। वर्माजी के इशारे के बगैर वह कभी भौंकता तक नहीं था। बेचारा...। पता नहीं, कैसे मर गया?

वर्मा जी के विरोधी कुत्ते के मरने से सबसे ज़्यादा ख़फ़ा थे। उन्होंने कुत्ते के मरने की सीबीआई से जाँच करने की माँग तक कर डाली।

चुनावी अधिसूचना जारी हो चुकी थी। सरकार किसकी बनेगी? भविष्य के गर्त में था। कब वर्माजी की समर्थकों को ज़रूरत पड़ जाए, कोई पता नहीं था। सीबीआई से जाँच कराने का आश्वासन ही कहीं सरकार बनाने में बाधा बन जाए, किसी को पता नहीं था। हर कोई फूँक-फूँक कर कदम रख रहा था।

विपक्षियों ने धरने-प्रदर्शन शुरू कर दिए। उनका कहना था कि इस सारे घटनाक्रम की जाँच होनी ही चाहिए।

कुत्ते का ऐसे समय मरना, जब कुत्तों की सबसे ज़्यादा ज़रूरत होती है। वह भी ऐसे वफ़ादार कुत्ते का असमय मरना। अपने आप में जाँच का विषय है। कुत्ते तो रोज़ ही पैदा होते हैं और मरते रहते है लेकिन इतना बरसों से साथ दे रहा, भोला-भाला, समझदार कुत्ता और वह भी वर्माजी का। उसका मरना सामान्य घटना कैसे हो सकती है।

हम कहते हैं, वह कुत्ता मरा नहीं है, बल्कि उसे मारा गया है। उसको मरवाने में वर्मा जी का ही हाथ है। ऐसे हत्यारे वर्मा जी को तुरन्त अरेस्ट किया जाना चाहिए। जाँच की माँग करते-करते, वर्माजी के विपक्षी वर्मा जी को हत्यारा घोषित कर उन्हें ही अरेस्ट करने की माँग करने लगे।

भूख- हड़ताल शुरू कर दी गई। प्रशासनिक अधिकारी के कार्यालय के सामने मजमा लगा दिया गया। तख्तियाँ टाँग दी गई।

वे कहने लगे, 'कुत्ते के पेट में जितने भी राज़ दफ़्न हैं कुत्ते का पोस्ट-मार्टम कर बाहर निकाले जाएँ। जब तक सारे राज़ कुत्ते के पेट से बाहर नहीं निकाले जाएँगे तब तक जाँच ठीक ढंग से हो ही नहीं सकती।'

प्रशासन परेशान हो गया। कुत्ते के मरने की इस घटना ने सारे शहर की फिज़ा ही बदल दी।

कुत्ते बिरादरी के लोगों में उत्साह था। उन्हें अपने कुत्ते होने पर गर्व हो रहा था। विपक्षियों की आवाज़ के साथ आवाज़ मिलाकर वे भी साथ देने लगे थे। कुत्ते के मरने की घटना से वर्माजी का भविष्य धूमिल होने जा रहा था। उन्होंने कभी कल्पना तक नहीं की थी कि उनका पालतू कुत्ता ही उनके भविष्य को इस प्रकार चौपट कर जाएगा। यदि उन्हें थोड़ा भी अंदेशा होता तो वे राज़ की उस पोटली को ज़मीन में ही दफन कर देते जिस तक कभी कोई कुत्ता पहुँच ही नहीं पाता।

अब जो होना था सो हो गया। वर्मा जी के ख़िलाफ़ देश में एक लहर फैल गई। उन्होंने ही कुत्ते को मारा है, इस प्रकार का माहौल तैयार हो गया। वर्मा जी की पार्टी के लोग, ख़ूब समझाने की कोशिश करते कि उस कुत्ते से वर्माजी बहुत प्यार करते थे, जिस दिन कुत्ते की मौत हुई, उस दिन वर्मा जी घर पर तक नहीं थे। वह कुत्ता अपनी स्वाभाविक मौत मरा है। इतिहास गवाह है कुत्तों की मौत हमेशा ऐसे ही होती आई है।

पूर्व में मरे कुत्तों के रिकॉर्डों को चैनलों पर दिखाया जाने लगा। अख़बारों में वर्मा जी दोषी नहीं है, यह सिद्ध करने के लिए बहुत सी बातें समझाई जाने लगी। वर्मा जी के कुत्ते की पुरानी फ़ोटोज़ को एडिट कर उस पर वृत चित्र बना दिया गया। वर्मा जी को उस कुत्ते से लिपटते हुए, प्यार करते हुए, खाना खिलाते हुए दिखाया जाने लगा, जिससे जनता वर्मा जी को कुत्ते की हत्या का दोषी नहीं मानें।

चुनावी माहौल था। विपक्ष ने भी कमर कसी हुई थी। वह किसी भी कीमत पर इस मुद्दे को अपने हाथ से निकलने नहीं देना चाहती। उसने कुत्ते के पेट के अंदर दफ़्न 'राज़ की पोटली' नाम से टेली फिल्म बनवा दी।

कुत्ता अपने पेट में कौन-कौन से राज़ रख सकता है और उस दिवंगत कुत्ते के पेट में कौन-कौन से राज़ दफन हुए होगें। उनको वे अपने अनुसार दिखा रहे थे। कुत्तों को इस जाति में जन्म लेने पर गर्व की अनुभूति हो रही थी।

वातावरण पूरी तरह कुत्ता मय हो रहा था। जगह-जगह कुत्ते की दिवंगत आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना हो रही थी। मैं भी ऐसी एक प्रार्थना में शामिल होने जा रहा था।

000

व्यंग्य

बीमार रहने के शौकीन लोग

उर्दू व्यंग्य

मूल रचना – कृष्ण चंदर

अनुवाद - अखतर अली

अखतर अली
निकट मेडी हेल्थ हास्पिटल, आमानाका,
रायपुर, छत्तीसगढ़ 492010
मोबाइल- 9826126781
ईमेल- akhterspritwala@gmail.com

ग़ालिब साहब ने यह तो समझ लिया था कि दर्द का हद से गुज़र जाना दवा हो जाता है लेकिन वे यह नहीं समझ पाए कि दवा की कीमत का हद से गुज़र जाना दर्द बन जाता है। अब तो बीमार होने के लिये भी हैसियत वाला होना बहुत ज़रूरी है। नब्ज़ देखते हुए डॉक्टर साहब जो पूछते हैं कि नाश्ते में क्या खाए थे ? इस सवाल का बीमारी से कोई संबंध नहीं होता, यह बात पूछ कर डाक्टर अपने मरीज़ की हैसियत का अंदाज़ा लगाते है। जिस्म बीमार हो इसके लिये जेब का तंदरुस्त होना बहुत ज़रूरी है। यही वजह है कि ग़रीबों में बीमार होने का चलन धीरे-धीरे ख़त्म होता जा रहा है। अब अमीर के बीमार होने की और ग़रीब के मरने की ख़बर आती है। ग़रीब बहुत दिनों तक जीता है फिर एक दिन मर जाता है, जीने और मरने के बीच वह बीमार नहीं होता। बीमार वही कहलाते हैं जो बीमारी को स्वीकारते हैं ग़रीब इसे बर्दाश्त करता है।

जब से ईलाज महँगा हुआ है पैसे वालों को बीमार होने की बीमारी लग गई है, बीमार रहने में ही ये अपनी शान समझते है। दिखावे के इस खेल में न दर्द है न दवा है, बस बीमारी है। आजकल मेरी तबियत ठीक नहीं रहती, चार लोगों के बीच यह कहने में जो सुख मिलता है वह अद्‌भुत है। जैसे किसी को शराब और किसी को जुए की लत होती है उसी प्रकार ऐसे बहुत से लोग है जिन्हें बीमार होने की लत लग गई है। हालाँकि इस बीमारी का कोई ईलाज नहीं है फिर भी डॉक्टर इन्हें दवाएँ देता है क्योंकि वह जानता है ये दवा लिये बिना मानेंगे नहीं। इन्हें दवाएँ दी ही नहीं जाती बल्कि बदल-बदल कर दी जाती हैं, अलग-अलग रंग की दी जाती हैं। उस डॉक्टर को ये डॉक्टर मानने को तैयार ही नहीं होते, जो इंजेक्शन नहीं लगाता ग्लूकोस नहीं चढ़ाता।

ये जो शौकिया बीमार होते है बहुत दिलचस्प बीमार होते हैं। खाने-पीने पर इनका कोई कंट्रोल नहीं होता है, हँसते क्या हैं ठहाके लगाते हैं लेकिन जैसे ही कोई मुलाकाती आता है सीरियस हो जाते हैं, शॉल ओढ़ लेते हैं और धीरे-धीरे बोलते हैं। बैठे हैं तो मुश्किल से खड़े होते हैं और खड़े हैं तो बैठने में आ उ करते है। मुलाकाती पूछता है हुआ क्या है तो कहते हैं यही तो समझ नहीं आ रहा है डॉक्टर ख़ुद परेशान है कि हुआ क्या है ? शरीर टूट रहा है जिस्म में हरारत है, बुखार चढ़ रहा है उतर रहा है। मुलाकाती माथा छू कर कहता है जिस्म गरम तो नहीं है तो कहते हैं अंदरूनी बुखार है अब उसे कैसे समझाएँ कि ख़यालाी बुखार में टेम्प्रेचर नहीं होता है।

जिस्म टूट रहा है और बदन में हरारत है यह ऐसी बीमारी है जिस में एक्सरे जैसी तकनीक का भी इस्तेमाल नहीं हो सकता है। इनकी जो हरारत है, वह इनकी शरारत है। जिस्म का टूटना किसी शाख़ का टूटना तो है नहीं जो दिखाई दे। इन आँखों ने बीमारी के ऐसे-ऐसे शौकीन देखे है जो किसी एक बीमारी से कभी संतुष्ट नहीं होते है। इन्हें हर रोज़ सुबह चाय और बिस्किट के साथ रोग का एक नया नाम चाहिए। इन्होंने इस काम के लिये एक मैनेजर नुमा आदमी भी रखा है जो इनकी बीमारी को मैनेज करता है, उसका ढंग से प्रचार करता है। अगर ठीक से प्रचार ही न हो तो बीमार होने से कोई फ़ायदा ही नहीं। एक बीमार सेठ ने अपने नौकर को सिर्फ़ इसलिये निकाल दिया क्योंकि वह बीमार हो गया था, सेठ जी का कहना था – कमबख्त नौकर होकर मालिक की बराबरी करता है।

बीमारी का शौक भी बहुत महँगा शौक है और इसमें स्पर्धा भी बहुत है। ख़ुद की बीमारी मैनेज करने के साथ दूसरे की बीमारी पर भी नज़र रखनी होती है। एक काल्पनिक बीमार कभी नहीं चाहेगा कि कोई दूसरा काल्पनिक बीमार बीमारी में उससे आगे निकल जाए। जो जितना बड़ा पूँजीपति वह उतनी ही शान से बीमार होता है। बीमार होने की ये आपस में एक दूसरे को बधाई भी देते हैं। ये सब पुराने खानदानी रईस होते हैं, जो नए रईस को कभी स्वीकार ही नहीं करते है। एक बीमार को उस समय साँप सूँघ गया जब उसको मालूम पड़ा कि उसका एक प्रतिस्पर्धी सेहत में सुधार के लिये मसूरी गया है, तो उन्होंने फ़ौरन कश्मीर जाने का प्रोग्राम बना लिया लेकिन उस वक्त उनकी तबियत सही में ख़राब हो गई जब उनको ख़बर मिली कि उनका पड़ोसी हवा पानी बदलने के लिये स्वीट्ज़रलैंड चला गया है।

000

व्यंग्य

बस एक चुप-सी लगी है..

कमलेश पांडेय

मैं श्रीमतीजी का मुँह देख रहा था। वे किसी नेता की तरह बोल रही थीं और मैं जनता की तरह चुपचाप सुन रहा था। फ़र्क़ इतना भर था कि माइक के बदले उनके हाथ में फ़ोन था और वे मुझसे नहीं किसी और से मुखातिब थीं। मैं बीच में बोल भी पड़ता पर मेरे आस-पास की ध्वनि तरंगों का फुरसत में होना ज़रूरी था ताकि उन्हें रिसीव करने योग्य किसी ख़ाली कान तक ले जा सकें। पर वे लगातार बोल रही थीं और हो न हो उधर सुनने वाला भी ज़रूर कभी-कभी बोल रहा था, जिससे निरन्तरता टूट नहीं पा रही थी। या हो सकता है वह भी मेरी तरह सिर्फ सुन ही रहा था। मैं श्रीमतीजी के बोलने के बीच कोई अंतराल बनने की ताक में था।

इन दिनों हालात ऐसे हैं कि बोलने वाले रुकते नहीं और मुझ जैसे चुप करा दिए लोगों की चुप सी लगी है। समाज जैसे बोलतों और चुप्पों में बँटा हुआ है। बोलने वाले चुप हो जाएँ तो अलग मुसीबत है। श्रीमतीजी का चुप रहना मुझ पर बहुत भारी पड़ता आया है। जब मैं अपनी चुप्पी तोड़ कर उनके चुप होने की वजह पूछता हूँ, तो जवाब में वे चुप ही रहती हैं। कई बार बोल भी पड़ती हैं, तो उसमें मेरे सवाल का जवाब नहीं होता कि यों बोलते-बोलते चुप क्यों हो गईं।

आपकी बोलती चाहे कोई दूसरा बंद कर दे, पर चुप्पी खुद ही साधनी पड़ती है। चुप्पी कई प्रकार की होती है। क्षमतावान की चुप्पी अर्थवान और सोद्देश्य साधी हुई होती है, जो कुछ सवालों और दीगर किस्म की हलचलों को जन्म देती है। कोई-कोई चुप्पी किसी के अंदर दबे राज़ पर ठेपी की तरह लगी होती है। कुछ चुप्पियाँ डर और आशंकाओं से बचने के लिए ओट का काम करती हैं। कवि या लेखक लोग यूँ ही मूड में आकर चुप सी लगा लेते हैं, जिसमें ध्यान लगाने का-सा भाव होता है। पर ऐसी चुप्पियों के टूटने पर अक्सर एक कविता या रचना पैदा हो जाती है। ऐसी ख़तरनाक किस्म की चुप्पी नेता भी उस वक़्त धारण करते हैं, जब किसी जलते हुए मुद्दे को राख होने तक धधकाना होता है। यहाँ भी चुप्पी के अंतराल के बाद नेताजी की ज़ुबान एक नए मुद्दे को जन्म देती है। ये नवजात मुद्दा जनता का ध्यान पुराने मुद्दे से हटा कर अपनी ओर खींच लेता है। नेताजी की चुप्पी से उठे सवाल और पुराने मुद्दे की अस्थियाँ दोनों ग़ायब हो जाते हैं। इसके बाद नेताजी अगली चुप्पी साधने तक मज़े में बोलते रहते हैं। सबसे आम किस्म की चुप्पी जनता की होती है, जिसके पास बोलने को बहुत कुछ होता है पर मेरी तरह किसी सुनने वाले की तवज्जो के इंतज़ार में वह चुप रह जाती है और धीरे-धीरे बोलना ही भूल जाती है। कुछ लोग जनता की चुप्पी में दबी आवाज़ों को निकाल कर बोलों में ढालते और ज़ोर-ज़ोर से बोलने की कोशिश करते हैं। सत्ता को ये शोर पसंद नहीं, सो अपने तरीक़े से "तुम तो चुप ही रहो" कह कर उनकी बोलती बंद करने का प्रबंध करती है। एक तरीका प्रायोजित चुप्पी से अनसुना कर इस शोर का गला बैठा देना है, तो दूसरा ख़ूब ज़ोर से किसी अलग सुर में शोर करके उसे दबा देना है। जो भी करे, आख़िर में इस ओर भी चुप्पी छा जाती है।

आज हमारी दुनिया में इतना शोर है कि चुप्पियाँ सुनाई ही नहीं देतीं। समाज एक ऐसा नक्कारखाना है जिसमें चुप्पियों की हैसियत तूती जितनी भी नहीं। कवि कहते रहें कि हर चुप्पी के भीतर कोई न कोई कहानी, आहें या चीखें दफ़न होती हैं। पर आज के दौर में ये कभी बाहर रिस भी आएँ तो बोलने वाले इन्हें लपक लेते हैं और किसी शोर में ढाल देते हैं। इस शोर में अधिकतर आवाज़ें ऐसी ही हैं, जो किसी के बोले हुए की ही आवृति लगती हैं। बोलने वाले बेलगाम हुए जा रहे हैं और चुप्पे और सावधान। बोलने वाले चुप्पों के हिस्से के बोल भी बोले जा रहे हैं। उनका प्रतिनिधि बन कर बेखटके उन के मन के बोल कह कर कुछ भी बोल देते हैं। चुप रहने वाले सोचते रह जाते हैं कि ऐसा हमने कब बोला या बोलना चाहा।

चुप्पियाँ इस कोरस को सुनने को मजबूर हैं। वे बोलते मुखों के रुकने के इंतज़ार में हैं। रहीम होते तो बताते कि ऐसे मुखों के लिए कैसी सज़ा का प्रावधान है। पर ये शायद अब समय बताएगा जो चुपचाप सब सुन रहा है। समय सभी तरह की चुप्पियों का भी अलग हिसाब रखता है, उनका भी हिसाब करेगा। समय की चुप्पी जब टूटती है, तब दौर बदल जाते हैं।

000

कमलेश पाण्डेय
बी-260, पॉकेट-2, केंद्रीय विहार, सेक्टर 82, नोएडा, उप्र 201304
मोबाइल- 9868380502
ईमेल- kamleshpande@gmail.com

डॉ. राजेंद्र मिश्र : पॉलीटिक्स से बेख़बर

ब्रजेश श्रीवास्तव

ब्रजेश श्रीवास्तव
मोबाइल- 7355538384
ईमेल- brajeshlitt@gmail.com

वर्ष 2000 से सृजन संवाद पत्रिका निकालना शुरू किया। डॉ. राजेंद्र मिश्र से पहली मुलाकात 2002 में हुई। दिल्ली साहित्य का केंद्र हो गया है। यहीं कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, मृणाल पांडे, अनामिका, निर्मला जैन और नासिरा शर्मा रहती हैं। यहीं कमलेश्वर, निर्मल वर्मा,राजेंद्र यादव, केदार नाथ सिंह, अवध नारायण मुद्गल, नामवर सिंह, अशोक वाजपेई, मैनेजर पांडे, नित्यानंद तिवारी, राम शरण जोशी, पंकज बिष्ट, अरुण कुमार, पुरुषोत्तम अग्रवाल आदि साहित्यकार रहते हैं। मेरे अभिन्न श्री गोविंद शर्मा नोएडा एन टी पी सी में इंजीनियर हैं।

"यार तुम तो बहुत साहित्यकारों से मिलते-जुलते रहते हो, चलो अपने कार्यालय में एक-दो लोगों से मिलवाता हूँ। क्या लिखते हैं यार। तबियत खुश हो जाती है।"

उनकी उन्मुक्त हँसी आधी बात निगल गई। इन ठहाकों के बीच दौड़-धूप की सारी थकान जाती रहती। नोएडा, एन टी पी सी भवन में राजभाषा - उपमहाप्रबंधक का अफ़सराना कमरा।

"मिश्र जी बहुत बड़े अनुवादक हैं। कितने ही उड़िया उपन्यासों के अनुवाद कर चुके हैं।"

मैंने मुस्कराकर स्वागत किया। वैसे हँसने में कोताही नहीं करता हूँ। कभी-कभी तो उसकी अनुगूँज कमरे के बाहर वैसे ही चली जाती है, जैसे मध्यवर्गीय गलियों में खेलते हुए बच्चे। पर वह हस्तक्षेपी सी बीच में नहीं अड़ जाती है। भंग या रस रंजन प्रिय अड्डों, बहस और रोने-गाने के बीच जब कभी सुनता हूँ पर मैं उसका हिस्सा कभी नहीं बन पाया।

"ब्रजेश जी सृजन संवाद के संपादक। देखो इसमें सभी शरीक हैं -- नामवर सिंह, राजेंद्र यादव, केदार नाथ सिंह, मृदुला गर्ग, गिरीश मिश्र, अनामिका, पुरुषोत्तम अग्रवाल, राम शरण

जोशी आदि।" शर्मा जी का गर्व और उछाह भरा अपनापा किसी को भी खुश कर सकता था। शर्मा जी विशुद्ध आध्यात्मिक व्यक्ति। वह तो मैं भी हूँ, लेकिन मेरे लिए वह है -- धारासार बारिश में भीगते हुए धरती से उठती गंध, हवा की सिहरन की जो अनुभूति सृष्टि की किसी भी विधा में व्यक्त न हो सके। मुझे यह घोषित करते हुए ज़रा भी संकोच नहीं लगता है कि मैं नास्तिकों में अंतरंग नास्तिक और आस्तिकों में अंतरंग आस्तिक हूँ ; क्योंकि मेरी समझ में दोनों के बीच विभाजक रेखा दर्शन से अजनबीपन ही दर्शाता है, लेकिन शर्मा जी की भक्ति छलक जाती है। वह कहीं ज़्यादा पारदर्शी हैं। मानस, गीता तो उन्हें कंठस्थ ही है, बहुत दिनों तक राग दरबारी भी कंठस्थ था।

मिश्र जी बड़े ध्यान से पत्रिका उलटने - पलटने लगे।

"स्तरीय पत्रिका। देखो भाई, तुम लोग साहित्यकार हो और मैं अनुवादक हूँ। लेकिन हाँ, मेरे पाठक जब बोलते हैं, लगा ही नहीं अनुवाद पढ़ रहा हूँ तो अच्छा लगता है। मेरे गुरु मैनेजर पांडे जी चाहते थे कुछ मौलिक लिखूँ। ऐसा नहीं कि शिष्य परंपरा रोशन हो; पांडे जी में इतनी निस्पृहता है, बल्कि यह कि हर गुरु अपना हिया निकालकर सौंप देता है।" मिश्र जी की बेलौस हँसी के पीछे हम लोगों की हँसी की अनुगूँज खुली हुई लंबी खिड़कियों पर पड़े चिक के पार चली गई।

"मिश्र जी आप अपने रचनाकर्म से संतुष्ट हैं क्योंकि पाठक को यह नहीं लगता है कि वह अनुवाद पढ़ रहा है। भाषा की धरती पर बेगानी सैर। रचनाकार का मूड.. फिर देश, काल का अतिक्रमण, सब कुछ भाषा बहता नीर के ही सहारे तो।"

मेरी प्रशंसा प्रशंसा के लिए थी नहीं। कुछ बड़े साहित्यकारों को मैंने देखा प्रशंसा प्रोत्साहन के लिए नहीं बल्कि अनुभूति का फस्ट ड्राफ्ट। बिना आलोचक की भूमिका में आए अंतरंग बातचीत।

"मैंने शरद चंद और गुरुदेव टैगोर के सारे उपन्यास, कालिदास और जयदेव का साहित्य अनूदित ही पढ़े, फिर प्रभा खेतान ने सीमोन के सेकंड सेक्स का अनुवाद स्त्री उपेक्षिता के रूप में जो की, संवाद प्रकाशन मुंबई, राजकमल क्लासिक्स की अनूदित शृंखला पढ़ी और उड़िया की प्रतिभा राय के उपन्यास का अनुवाद किसने हिन्दी में किया है .. शंकर ..। पूरा नाम भूल रहा हूँ।"

"शंकर लाल पुरोहित।" मिश्र जी ने पूरा किया।

"हाँ, शंकर लाल पुरोहित। तो कभी लगा ही नहीं कि अनुवाद पढ़ रहा हूँ। और एक आप का अनुवाद देख रहा हूँ। जे एन यू का भाषा केंद्र वामपंथी ज़रूर है पर वह सृजनात्मक भाषा के मामले में भारतेंदु से लेकर निर्मल वर्मा, कृष्णा सोबती तक की परंपरा को आगे बढ़ा रहा है।"

"ब्रजेश जी आप लेफ्ट विरोधी हैं क्या।" उज्ज्वल हँसी का सोता फूट पड़ा।

कहीं हमारे गुरुदेव द्वय (नामवर जी और मैनेजर पांडे) के सामने न कह दीजिएगा। मिश्र जी ने ठहाका लगाया, शर्मा जी स्वाभाविक रूप से फुटकर को दुहाई पर पहुँचाए।

"विरोधी नहीं हूँ मिश्र जी, असहमत हूँ। दक्षिणपंथी भी नहीं हूँ। साहित्य में दक्षिणपंथ है कहाँ ? आप के गुरुदेव पांडे जी से 1996 में जब मैं उनके दक्षिणापुरम आवास में मिला। जलपान पहले भिजवा दिया था। पूर्व परिचय था नहीं, न कोई रेफरेंस न संगी - साथी। उनके पास जो स्लिप पहुँची थी, उसने महज इतना बताया कि लखनऊ के एक अनाम से कॉलेज में हिन्दी के एक अनाम से लेक्चरर हैं कोई ब्रजेश श्रीवास्तव। कोई पैंतालीस मिनट प्रतीक्षा करनी पड़ी होगी। जाड़े की ऋतु। ओवरकोट डाले हुए शाही सिगार पीते हुए वह ड्राइंग रूम में प्रवेश किए। मैंने उठकर प्रणाम किया। मुस्कराते हुए बैठे।

"तुम्हें प्रतीक्षा इसलिए करनी पड़ी क्योंकि विश्वविद्यालय से लौटने के बाद लंच लेता हूँ। उसके बाद सोने की आदत है। तो मैं सो रहा था।"

"कोई बात नहीं सर"।

"हाँ कहो कैसे कष्ट किया।" सिगार का छल्ला उड़ान का सहज रचनात्मक संतोष उनके तेजस्वी व्यक्तित्व में फब रहा था। मैंने अपनी कृति सरोज स्मृति : भाष्य उन्हें भेंट की। वह बड़े ध्यान से उलटने-पलटने लगे मेरी प्रत्याशा के विपरीत।। मैं सोच रहा था- इतने बड़े और नामी-गिरामी आलोचक। ऐसे विश्वविद्यालय में शिक्षक जहाँ के लिए सपना देखना भी कोई सुकून भरी कहानी; एक तरफ रख देंगे। लेकिन उसके कुछ अंश उन्होंने मेरे सामने पढ़े। फिर आहिस्ते से बोले -- अच्छा कर रहे हो। और अच्छा करो। तुम्हारा नाम सुना है मैंने विद्यार्थियों से।"

'जी"

आई-गई बात हो गई। फिर बाद में कई बार मुलाकात हुई.. बहुत वर्षों बाद।

मैंने सोचा -- वह सो रहे थे, मैंने खलल डाला। लेकिन उनींदे भी मैनेजर पांडे जी आतिथ्य भाव नहीं विस्मृत कर सके। तो साहित्यिक मित्र तो निन्यानबे प्रतिशत वामपंथी हैं, यदि फर्क पड़े तो लोकतंत्र की मर्यादा क्या रही ?

"पांडे जी में यह बात तो है। मिश्र जी अपने शोध का वाक़या सुनाने लगे।"

"आप बहुत गहरे हैं ब्रजेश जी। मैं तो यहाँ कार्यालय के काम में आकंठ डूबा साहित्यिक दुनिया की पॉलीटिक्स से बेख़बर हूँ। जो समय मिला, उसमें यही अनुवाद..।" मिश्र जी मुस्कराते हुए बोले।

हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय की पारिभाषिक शब्दावलियों की शृंखला देख लीजिए तो मचली आने लगती है। उपसर्गों-प्रत्ययों से लदी-लदी। आप लोगों को क्यों नहीं बुलाते ?

"जोड़-तोड़ की दुनिया है। आजकल पॉलिटिक्स जहाँ नहीं है, वहीं सृजन है।"

"वाह मिश्र जी यह तो कविता बन गई।" शर्मा जी का ठहाका गूँजा। "बड़प्पन ऐसा ही होता है ब्रजेश जी। मैं एक सामान्य पाठक हूँ, मुझसे किसी का क्या स्वार्थ सध सकता है लेकिन जब भी चित्रा मुद्गल दीदी के यहाँ जाता हूँ मुझे एहसास ही नहीं होता है कि मैं उनके घर का सदस्य नहीं हूँ।"

"लखनऊ में आप लोगों का जमावड़ा होता है ? गोष्ठियाँ होती हैं ? हजरतगंज का काफ़ी हाउस।"

"शहर अपनी रफ़्तार में है। साहित्यकार अपने-अपने में व्यस्त हैं। अखिलेश, श्री लाल शुक्ल और वीरेंद्र यादव यदा-कदा बैठते हैं। गोष्ठियों के नाम पर साल में एक बार शैलेंद्र सागर साहस करते हैं। कथाक्रम कराते हैं।"

"यह तो अख़बारी हाल है।"

"तब तो कहानी लिखनी होगी, जो बहुत लोग कर रहे हैं।"

इस बीच मैं आग्रहपूर्वक खिसका। आप लोग अपने कार्यालय के काम निपटा लीजिए। हम लोग लंच कैंटीन में हो लिए। मिश्र जी और शर्मा जी यह भी लीजिए... यह भी लीजिए करके भूख से ज़्यादा ही खिला दिए।

उस दिन मीठे में जलेबी छन रही थी। मिश्र जी चार पीस लेकर आए, मुझे थमा दिए।

"एकदम गरम .. गरम।"

"जलेबी दही मेरा प्रिय डिश। छोटी पतली और थोड़ा कुरकुरी, देशी घी में छनी जलेबी बहुत टेस्टी लगती है। वैसा तो नहीं था पर जैसा भी था, मिश्र जी और शर्मा जी के अनौपचारिक आतिथ्य ने अधिक ही स्वादिष्ट बना दिया था। जिन दिनों (1980) मैं फ़ैज़ाबाद जी आई सी में पढ़ता था, कॉलेज के बाहर एक मेहनती ईमानदार व्यक्ति ठेले पर ऐसी ही जलेबी छानता। मैं उसका मुरीद ग्राहक। शहर छूटने के बाद वैसी खाने को नहीं मिली फिर लगभग छूट ही गई।"

"ब्रजेश जी आपका यह अनौपचारिक स्वभाव बहुत अच्छा लगता है, जब भी दिल्ली आना हो ज़रूर आया कीजिए।"

किसी और बैठक में मैंने बताया -- मिश्र जी यदि कोई सोबर और अभिजात्य व्यक्तित्व का नहीं है तो मैं बेहद चुप्पा इंसान। मुझे बात करना अच्छा नहीं लगता। लेकिन मंच पर हर स्थिति में उतना ही मुखर। ज्ञान विज्ञान के किसी भी अनुशासन का कोई बड़ा से बड़ा तीरंदाज़ बैठा हो मुझे इसकी परवाह नहीं।

"आप की सुरुचि का अंदाज़ा तो मुझे जल्द ही लग गया था लेकिन अभिजात्यता भी दो प्रकार की होती है।"

मैं समझ गया। मैं विश्व बंधुत्व और अहम्हीनता वाली अभिजात्यता जीता हूँ। मैं निरामिष हूँ, शराब नहीं लेता, सिगरेट, पान मसाला नहीं चलता तो क्या, मेरी टेबिल पर बंदे अगर यह सब ले रहे होते हैं, मैं कोई दूरी नहीं महसूस करता हूँ पर कोई ओवर स्मार्टनेस की बात करे, सम्मान-स्नेह का सलीक़ा न हो, व्यंग्य-निंदा धनी हो, किसी भी स्त्री की हँसी उड़ाए, इमेज शैटरिंग करे या बोलचाल में याराना मिज़ाज में भी गालियों का प्रयोग करे तो नहीं चलता है।"

"लोग आप को अज्ञेय टाइप कहेंगे।"

"लोग अभी तो कुछ नहीं कहेंगे। लिख-लिखकर बक्से में रखता गया। फ़ुरसत ही नहीं मिली। छपे, पाठकों का अगर कुछ मिज़ाज बनता है, लोग तब नोटिस लेते हैं। वह बड़े साहित्यकार हैं। मुझे कोई ग़लतफ़हमी नहीं।"

दूसरी बार जब मैं आया मिश्र जी बोले सृजन संवाद हिन्दी की दुनिया में यादगार तो हो गई पर ब्रजेश जी इसका इतिहास तब बनेगा जब आप जारी रख सकेंगे। कैसे करेंगे बताइए। घर फूँक तमाशा देखेंगे ? इसमें विज्ञापन एक भी नहीं। मैं कुछ रास्ता बताता हूँ। इसलिए कि वाकई पत्रिका शानदार है।

मुझे लगा इसे इंसान कहते हैं, रचनाकार होने के पहले ऐसा होना एक शिनाख़्त है। वास्तविकता तो यह है कि भागती हुई दुनिया में कौन किसके लिए क्षण भर भी विलम जाने को तैयार है। ऐसा ही निश्छल अपनापा मुझे राजेंद्र यादव, चित्रा मुद्गल, प्रभा खेतान, अनामिका, पुरुषोत्तम अग्रवाल, सुमन केशरी, वीरेंद्र यादव, राम शरण जोशी, अर्थ शास्त्री अरुण कुमार, अर्चना वर्मा, कर्मेंदु शिशिर आदि से मिला। आप निस्पृह रहते हुए सृजन के नए मानक रचते हुए अपने लिए कितनी जगह बना पाते हैं, मूल बात यह है।

"कल आप का क्या प्रोग्राम है ?" मिश्र जी ने पूछा।

"बताएँ। यदि कुछ ख़ास नहीं तो जे एन यू कैंपस।"

"ऐसा है कल पहले सत्र में आप का व्याख्यान रखते हैं। आचार्यवर ने दूसरे सत्र में समय दिया है।"

"कौन पांडे जी ?"

"अरे भाई, उनके भी आचार्य। नामवर जी।"

"ठीक है रख लीजिए"

"ब्रजेश जी आप क्या समझते हैं, जे एन यू में वाम क्यों हावी है ?"

"मिश्र जी यंग एज में बच्चों के लिए खुलापन चाहिए, सौ प्रकार की बंदिशें उनके विकास को बाधित करती हैं। वे स्वयं कर्म के अर्थ की भूमिका में होते है। धर्म के सौ टोटके उनकी अबाध क्षमता को अनुशासित करते हैं।"

"हाँ, और कुछ ज़्यादा ही बौद्धिक पॉलिटिक्स के साथ पेश किया जाता है तो बच्चे समझते हैं यहीं वे दूसरों से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं।" मिश्र जी चाय की घूँट लिए फाइल पर ड्राफ़्टिंग करते हुए बोले।

"एकदम सही।" मैं मौन हो गया।

मिश्र जी को समझते देर न लगी कि मैं ड्राफ्टिंग करते हुए बेध्यान न हो जाऊँ।

मेरा मौन तोड़ते हुए मिश्र जी बोले -- "बारिश की उमंग में कोई काम रोकता है ? महिलाएँ कविता - कहानी भी रच रही होती हैं और बीच में उठकर स्कूल से लौटे बच्चे को खाना भी परोस आती हैं। किसान खेत में धान की रोपाई भी करते है और आलाप भी भरते हैं।"

यह एक अनुवादक का खांटी रचनाकार बोल रहा था।

दूसरे दिन जब मेरा व्याख्यान हुआ मिश्र जी पूरे समय वहाँ बैठे रहे। लंच के समय उन्होंने माशा-तोला देखकर प्रशंसा नहीं की। बेलौस।

"ब्रजेश जी आप मेरे मित्र हैं इसलिए नहीं कह रहा हूँ, आख़िरकार जेनुआइत हूँ। अद्भुत। गोष्ठियों में न जाकर आप वाचिक आलोचना का बड़ा अनभल करेंगे। अभी तो नामवर जी हैं। लेकिन बाद में .. ।"

"अरे... मिश्र जी सार्वजनिक न कह दीजिएगा। आप की और मेरी भी शुभाकांक्षा है नामवर जी शतायु हों। रही बाद की बात तो प्रलेस जलेश की गोष्ठियों में जाए बिना मैं वाचिक आलोचना की मुख्य धारा में नहीं आ पाऊँगा। मैं किसी विश्वविद्यालय में हूँ नहीं और भी बहुत सी बातें। और मेरे पास समय बहुत कम रहता है।"

"मैं कथा साहित्य का अनुवाद करता हूँ इसलिए बात कर रहा हूँ। हिन्दी में बड़े कथाकारों में किसे रखना चाहेंगे ?"

"किस दृष्टि से बताऊँ ?"

"मतलब ?"

"मतलब महत्त्व के हिसाब से।"

"पंडित चंद्र धर शर्मा गुलेरी, देवकी नंदन खत्री, प्रेमचंद, रेणु, अज्ञेय, भगवती चरण वर्मा, अमृत लाल नागर, यशपाल, जैनेंद्र, निर्मल वर्मा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियम्वदा, चित्रा मुद्गल, शैलेश मटियानी, भीष्म साहनी, हिमांशु जोशी, शिव प्रसाद सिंह, श्रीलाल शुक्ल, गोविंद मिश्र, अमरकांत, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मृदुला गर्ग, मारकंडेय, उदय प्रकाश, सुरेंद्र वर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, अलका सरावगी, नीलाक्षी सिंह, जया जादवानी, अखिलेश, शिवमूर्ति।"

"पूरे होशो हवास के साथ ?" मिश्र जी ने हँसते हुए पूछा। "दिल्ली, बनारस, देहरादून, इलाहाबाद, लखनऊ के कुछ कथाकारों को छोड़ रहे हैं या छूट गए हैं ?और कुछ लोगों का नाम बड़े आलोचकों ने पहले लिया है आप ने क्रम तोड़ा है।"

"आलोचक के पास स्मृति बड़ी बहुमूल्य पूँजी होती है, मिश्र जी। मैंने बड़ी सावधानी के साथ नाम लिया है। उनके योगदान के आधार पर क्रम रखा है। जो नाम छूटे हुए लग रहे हैं मैंने अपनी आलोचना दृष्टि के आधार पर छोड़ा है। पाठक आलोचक से बड़ा होता है। मेरी क्या बिसात? जिनके पास मर्मस्पर्शी क़िस्सागोई नहीं है या जिन्हें हिन्दी पाठक वर्ग बहुत समय तक नहीं याद रख सकेगा उन्ही का नाम छोड़ा है। बहुत से लोगों के यहाँ आप एक तरफ से और सीनियारिटी के हिसाब से नाम पाएँगे। यह मेरा निजी मत है, अन्य कथाकारों के प्रति पूरी विनम्रता के साथ।"

मिश्र जी ने निस्वास छोड़ा। कुछ देर मौन रहने के बाद बोले- यार ऐसे काम नहीं चलेगा। कोई बड़ा ग्रंथ निकालिए।

मैंने मिश्र जी से उस समय नहीं कहा। अग्रज की तरह उनका स्नेह उसमें भी समादर। दोहरा मुक्त बंधन था मेरे लिए।

"क्या बंगला उड़िया से समृद्ध है।" मैंने पूछा।

"मैं ऐसा नहीं कह सकता।" मिश्र जी मुस्कराए।

"हिन्दी, साहित्य की दृष्टि से ?"

"ऐसा भी नहीं।"

"अनुवादक गोताखोर होता है। आप की स्थिति वही है।"

"समय की बड़ी कमी रहती है उसी में जो हो पाता है, करता हूँ।" मिश्र जी उहापोह में थे।

"अभी तक कितनी कृतियाँ हुईं ब्रजेश जी और आप ने मुझे पत्रिका के अलावा अपनी कोई रचना क्यों नहीं दी ?"

"गंभीर लेखन वर्ष 1985 से मान सकता हूँ। ज़्यादातर पांडुलिपि रूप में हैं। आप को देने लायक प्रकाशित कहाँ है ?"

"क्यों ?"

"पांडुलिपियों को फेयर करने या टाईप कराने का समय नहीं मिला।"

"तो लिख लिखकर बक्से में रखते गए। धन्य हो महाराज।" मिश्र जी ठहाका लगाए।

तिरती हँसी से बोले : रचनाकार बेशर्त होता है, यश, धन सभी फांसों से मुक्त।

मैं मुक्त ही था लेकिन समय पर कोई काम न करना प्रमाद होता है, यह अब समझ में आया। लिखकर रखते जाना बड़ी बेवकूफी। दूसरा कोई कहता तो बुरा लगता।

अगली बार जब जाना हुआ तो मिश्र जी दुर्घटना में विद्यानिवास मिश्र जी के स्वर्गवास से बहुत आहत थे। वह विद्यानिवास जी के आत्मीयों में थे। मैं तो मिला नही था। मिश्र जी के पास संस्मरणों का खज़ाना था।

मिश्र जी बोले -- छितवन की छाँह चला गया।

ललित निबंध के क्षेत्र में हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के बाद वह और कुबेर नाथ राय बस ये दो ही थे।

राजेंद्र प्रसाद मिश्र जी ने सृजन संवाद के लिए भी लिखा। लेखकों की विचारधारा कुछ भी हो उन्हें जो बात एक परिवार बनाता है, वह रचनाकार को प्रकृति की तरफ से सौंपा गया सहजात लोकतंत्र। उतना ही स्वतंत्र जितनी हवा, उतनी ही आत्मीय जितनी बारिश और कोई किसी के साथ कितना दूर तक चल सकता है यह उसकी निस्पृहता पर ही नहीं, लोक मुखरता पर भी निर्भर करता है ; यह बात अनामिका ने मुझसे अपने आवास पर 2001 में कही थी। वह पहली रचनाकार थीं जिसने सृजन संवाद की इतनी तारीफ़ की, जितना मुझे ख़ुद पता नही था। लगभग ऐसी तारीफ़ तो नामवर जी ने भी की लेकिन अपने एक शिष्य से। उन्हें भारत भारती और विश्वविद्यालय सम्मान एक ही मंच पर मिला था, उस दिन वह काफी खुश नज़र आ रहे थे। मैंने उन्हें बधाई दी तो बोले ब्रजेश तुम सृजन संवाद तो बहुत अच्छा निकाल रहे हो, लेकिन भाई खुलकर आलोचना के क्षेत्र में आओ, तुमसे मेरी उम्मीदें भी कम नहीं। बी एच यू में मैं रिफ्रेशर कर रहा था, वहाँ उनकी कुछ बातों का मैंने विनम्रतापूर्वक खंडन किया था। अनामिका जी की प्रशंसा में कुछ बचाकर रखने की बात नहीं थी। वह उन दिनों ही साहित्य जगत् की स्टार थीं। मेरी दृष्टि में वह हिमालियन सम्मान की हकदार हो गईं। उनका वैदुष्य, मुक्त कवि रूप और एक बोल्ड, विरक्त और निस्पृह किंतु बारिश सा अपनापन भरा मित्र रूप मुझे अंदर से झिझोरा। मैं अन्य साहित्यकारों से मिलने-जुलने लगा। मैंने बहुत पहले संपादकीय में लिखा था वाम, दक्षिण की थ्योरी कब की फ्रांस की सेन दरिया में बह गई।

जिससे मिला मैनेजर पांडे हों या पुरुषोत्तम अग्रवाल, चमन लाल हों या अर्थशास्त्री अरुण कुमार, चित्रा मुद्गल हों या मधुरेश, राजेंद्र यादव हों या कर्मेंदु शिशिर, राम शरण जोशी हों या नित्यानंद तिवारी सभी में बेशर्त अपनापा। जिसे दक्षिणपंथी कहा जाना चाहिए, वह न तब था न अब हूँ, जिसे वामपंथी कहा जाता था वह न तब था न अब हूँ। पोंगा पंथी मुक्त आध्यात्मिक, विज्ञान और दर्शन का अपने प्रयोग और अनुभूति के आधार पर सार ग्राही तब भी था, अब भी हूँ।

फिर माँ को पैरालिसिस अटैक। आठ वर्षों से पत्नी सीमा ही देख रही हैं, फिर सोने में सुहागा, मेरा एक्सीडेंट। स्वयं और परिवार को सहेजने की जद्दोजहद में द्वीप वासी हो गया।

000

हिन्दी ग़ज़ल में समकालीनता

डॉ. भावना

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल सिर्फ़ शब्दों की क्रीड़ा भर नहीं है। यह अपनी लयात्मकता और कोमलता के साथ बहर, वज़्न, काफ़िये-रदीफ़ के अनुशासन में रहकर भी आम आदमी के संघर्षों, उम्मीदों, आशाओं और सपनों को ज़ुबान देने में सक्षम है। यही कारण है कि हिन्दी ग़ज़ल हिन्दी कविता के बनिस्बत आम जनमानस पर ज़्यादा असर छोड़ने में कामयाब है।

कुछ लोग ग़ज़ल को हिन्दी ग़ज़ल कहने पर ही सवाल उठाते हैं। वे कहते हैं कि ग़ज़ल तो ग़ज़ल होती है, चाहे वह हिन्दी, उर्दू, फारसी या साहित्य की किसी भी विधा में कही जाए। बात कुछ हद तक सही भी है। ग़ज़ल अपने अलग व्याकरण की वजह से ग़ज़ल होती है। जैसे कि दोहा और हाइकू अपने-अपने व्याकरण की वजह से ही अपना अस्तित्व पाते हैं। चूँकि हिन्दी ग़ज़ल की भाषा हिन्दी की बोलियों और उनके मुहावरों से समृद्ध हुई है। अत: स्वभाविक है कि उसके चाल-ढाल, कहन और बिम्बों के निर्माण में उर्दू ग़ज़ल से अलग होगी। जब हिन्दी और उर्दू ग़ज़लों के रंग दूर से पहचान में आ जाएँ तो फिर इन्हें हिन्दी ग़ज़ल कहने में एतराज क्यों? कुछ लोगों की हठधर्मिता और चर्चा में बने रहने की बेबुनियाद ज़िद भी इसके कारण हो सकते हैं लेकिन हिन्दी के युवा ग़ज़लकारों को इस झमेले से ख़ुद को दूर रखते हुए ग़ज़ल की समकालीनता और उसकी भाव-भंगिमा के प्रति प्रतिबद्ध होना ज़्यादा ज़रूरी है।

समकालीन का अर्थ होता है एक युग में। समकालीन हिन्दी ग़ज़ल का मुख्य उद्देश्य इतिहास और भविष्य को आत्मसात् करने के साथ-साथ वर्तमान के क्रूर यथार्थ की अभिव्यक्ति करना है। कोई भी काव्य अपने समय के मुहावरे में लिपिबद्ध होकर लोगों के दिलों पर राज करता है। इस कठिन और उलझन भरे समय में अपनी बात पूरी नवीनता के साथ कहना किसी भी ग़ज़लकार के लिए आसान नहीं है। ग़ज़लकार के सामने ग़ज़ल के व्याकरण से बिना कोई छेड़छाड़ किए तथा ग़ज़ल की ग़ज़लियत को बरक़रार रखते हुए ग़ज़ल कहने की चुनौती होती है।

डॉ. भावना
आद्या हॉस्पिटल, सीतामढ़ी रोड,
जीरोमाइल, मुजफ्फरपुर 842004, बिहार
ईमेल- bhavna.201120@gmail.com

सर्वप्रथम हिन्दी ग़ज़ल के प्रगतिवादी विचार और समाजशास्त्रीय पहलू की ओर जाते हैं तो, यह कहा जा सकता है कि अन्य विधाओं की तुलना में इनके सामाजिक स्वर कमज़ोर नहीं है। अंतर है भी तो विचारधारात्मक।

हिन्दी ग़ज़ल बँधी हुई परिपाटी और विचारधारा पर चलने वाली नहीं है। यह प्रकृति के विराट् सौंदर्य में अपना रूप खोजती दिखती है तथा जीवन की पीड़ा, सामाजिक विसंगतियों और उत्तर आधुनिकता की पूँजीवादी व्यवस्था से अपनी सामाजिक असमानता को भी तेज़ी के साथ पकड़ती है। यह मात्र छंदों की समस्या पूर्ति नहीं है, अपितु समय का वह हथियार है, जिसके बल पर पाठक परिवर्तन की खोज करता है। इस परिप्रेक्ष्य में हम कुछ ग़ज़लकारों के शेरों को समकालीनता की कसौटी पर रखने की कोशिश करते हैं। ताकि ग़ज़ल की दशा व दिशा और उसकी समकालीनता का प्रामाणिक तौर पर उल्लेख किया जा सके। मुझे ऐसा कोई भ्रम नहीं है कि ग़ज़ल की समकालीन दृष्टि को जाँचने और परखने की यह मेरी पहली कोशिश है। इस विषय पर ढेर सारी सामग्री लिखी गई है और लिखी जा रही है। विचार और तर्क के साथ परिवेश की भूमिका का उल्लेख करना ही मेरा एक मात्र ध्येय है।

ग़ज़ल में आज की नई चिंता और चुनौती के विषय के संदर्भ में अभिकल्पना और विचार की मनोगतता को आधुनिक परिदृश्य में ग़ज़ल के ज्ञान और क्रिया के संबंधों को एक साथ प्रतिबिंबित करना होगा। यह सही है कि ग़ज़ल की असली कसौटी प्रभावोत्पादकता है। अपनी अलग दृष्टि, कहन का अलग तरीक़ा और प्रवाह किसी भी ग़ज़लकार को भीड़ से अलग करने के लिए पर्याप्त है। इस आर्थिक युग में रिश्ते भी स्टेटस की तराज़ू में तौलकर बनाए जाते हैं। सबकी आँखों पर जैसे स्वार्थ की पट्टी लगी हुई है। कोई इससे इतर सोचने को तैयार नहीं। हालात इतने बिगड़ गए हैं कि हर तरफ़ धुआँ-धुआँ-सा है। तभी तो प्रसिद्ध शायर अनिरुद्ध सिन्हा कहते हैं—

छुपाये बैठा हूँ तुमको बता नहीं सकता
जले हैं हाथ ये कैसे दिखा नहीं सकता

हवस इतनी बढ़ी जाती है लोगों की यहाँ पर
वो खाली घर में भी कोई ख़ज़ाना देखते हैं

वहीं नूर मोहम्मद नूर भी हालात को देखकर बेचैन हो उठते हैं। शेर देखें—

चमन में साँप भरते जा रहे हैं
कहीं क्या साँप का मंतर नहीं है

वहीं युवा ग़ज़लकार के. पी. अनमोल के शेरों में भी वक़्त के सिसकते दस्तावेज़ को महसूस किया जा सकता है। शेर देखें—

इक भीड़ बदहवास-सी है चारों तरफ़ ही
कैसा अजब है वक़्त का नक़्शा मेरे आगे

सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार कमलेश भट्ट कमल भी आज के हालात से बहुत बेचैन प्रतीत होते हैं। वे कहते हैं—

बढ़ी है धूप में कितनी तपिश मत पूछिए हमसे
बहुत डर-डर के अंबर में कोई बादल निकलता है

वहीं सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार व छंदशास्त्री दरवेश भारती अपनी पीड़ा कुछ इस तरह से व्यक्त करते हैं—

यूँ फँसे लोग ज़र के चंगुल में
ज़िन्दगी का भी अर्थ खो बैठे

आजकल लोगों का जीवन सिर्फ़ दिखावे पर टिका है। मुखौटे की इस संस्कृति से आहत कृष्ण कुमार प्रजापति कहते हैं—

चस्पां है जिनके चेहरे पर ख़ुशियों के इश्तिहार
मेरी तरह वह लोग परेशान कम नहीं

यह सही है कि आज का शायर ग़ज़ल में चमक पैदा करने के लिए प्रतीकों, संकेतों, तंजों तथा नए मुहावरों का ख़ूब प्रयोग करते देखे जाते हैं। कुछ हद तक यह ज़रूरी भी है। यह देखना और सोचना भी तो ग़ज़लकारों का ही काम है कि हम ग़ज़ल में नया क्या दे रहे हैं। आज यथार्थ के नाम पर ग़ज़ल में कुछ भी कह देने से बचने की सख़्त ज़रूरत है। क्योंकि ग़ज़ल में ग़ज़लियत उसके ख़ूबसूरत बिम्बों के साथ नए प्रतीकों से ही आती है। अनछुए बिंब और अलहदा कहन के साथ बेहतरीन तरीके से अपनी बात कहना ग़ज़ल की पहली शर्त है। आज के कुछ युवा ग़ज़लकार इस तरह के प्रयोग करने में ख़ूब सफल नज़र आते हैं। उदाहरण के तौर पर गौतम राजऋषि के शेर पर नज़र डालें तो बात स्पष्ट हो जाएगी—

रह गई उलझी किचन में फिर से भीगी ज़ुल्फ़ वो
और छत पर धूप बेबस हाथ मलती रह गई

एक कप कॉफ़ी का वादा भी न तुमसे निभ सका
कैडबरी रैपर के अंदर ही पिघलती रह गई

वहीं एक और युवा ग़ज़लकार के पी अनमोल कहते हैं—

अचानक ठंड से ए. सी. की उचटी नींद तो सोचा
परिन्दें ऐसी गर्मी में सुलगते फिर रहे होंगे

आज की सामाजिक विसंगतियों पर युवा ग़ज़लकार संजू शब्दिता अपने शेर किस तरह कह रही हैं। उदाहरण के तौर पर देखें—

बड़े होकर बड़ा बनने का सपना
कहाँ ले आई है बचपन की हसरत

मिली रहमतें भी हमें इस तरह
हवा हमने चाही तो आँधी मिली

युवा ग़ज़लकार विकास सामाजिक समस्याओं पर बारीक नज़र रखते हैं। उनके शेर ग़ज़ल की नाजुकी का पूरा ख़याल रखते हुए बड़ी से बड़ी बात करने में महारत हासिल किए हुए हैं। शेर देखें—

साँस मेरी भी रोक दो कुछ पल
मैं सफ़र कर के थक गया यारों

तीन मुंसिफ़ यहाँ हुए जब से
एक भी फ़ैसला नहीं होता

ग़ज़ल द्वारा उकेरा गया चित्र अगर अपने क्षेत्र व परिवेश के अनुरूप नहीं हुआ तो ग़ज़ल में वह भाव शिद्दत से आ नहीं सकता, जिसकी उसे दरकार थी। मेरे कहने का मतलब यह है कि रचनाकार जिस परिवेश में जीता है, उसकी भाषा उसका कथ्य एवं प्रस्तुति उसके अनुरूप हो तभी बात पूर्ण रूप से संप्रेषित होती है। अन्यथा वह पाठकों के बीच अपना असर छोड़ नहीं पाती। नवीनता के वाहक केवल रूपकों के कवि नहीं होते। नूतन

प्रयोग ही ग़ज़ल की विशेषता मानी जाती है।

सामान्यत: साहित्यकार का जीवन-संघर्ष ही साहित्य का विषय बनता है। कहना न होगा कि प्रेम किरण जैसे ग़ज़लकार बड़ी बारीकी से अपनी गज़लों का ताना-बाना बुनते हैं और उसे जनता को समर्पित करते हैं। शेर देखें—

आँख खोले दीवारों से चिपके बैठे हैं
कैसी चुप्पी साधे घर में पुरखे बैठे हैं

शाम थी तो साथ थे सब दिन निकलते क्या हुआ
पेड़ के हर इक परिंदे का ठिकाना बँट गया

वहीं अशोक मिज़ाज कहते हैं—

मैन टू मैन डिफ़र करता है नेचर अपना
सबसे हम एक-सा व्यवहार नहीं कर सकते

भारत की 80 प्रतिशत आबादी गाँव में बसती है। भारत की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है। स्वभाविक है यह देश श्रमजीवी किसानों का है, जिसके दिन-रात परिश्रम के परिणाम स्वरुप हम अनाजों का सेवन कर अपना जीवन-यापन करते हैं। आदमी कभी पैसा नहीं खाता। वह सिर्फ़ अन्न खाता है। फिर भी सारे निर्णय रसूख़दारों के इशारे पर होते हैं। आम आदमी उसके हाथ की कठपुतली भर है। यह स्थिति आख़िर क्यों है? जिन किसानों के उपजाए अनाजों को खाकर हम बड़े-बड़े मॉल और अपार्टमेंट बनाते हैं... तन झुलसाती गर्मी में ए. सी. में कंबल चढ़ाकर सोते हैं और वे खेतों की रखवाली करते मचान पर जीवन यापन करते हैं। फिर ये खाये- पीये- अघाये लोग किसानों की परेशानियों को भला कैसे समझेंगे? उन्हें तो अपनी प्रगति से मतलब है। पैसे दो से चार कैसे बनाएँ... इसी गणित में उनका जीवन बीतता है। प्रेम, अपनत्व, सौहार्द, सेवा के भाव उनके भीतर से कहाँ गुम हो गए, ढूँढ़ना मुश्किल है। स्वभाविक है, ओमप्रकाश यती जैसा ग़ज़लकार किसानों की अत्यंत दयनीय स्थिति से आहत होंगे ही। शेर देखें—

यह देश किसानों का है, कहते हैं सभी लेकिन
इस देश में कब होगा सम्मान किसानों का

वहीं वरिष्ठ ग़ज़लकार दिनेश प्रभात की नज़र में भी इनके हालात दयनीय हैं। वे कहते हैं—

देखना जल्दी बनेंगे हम महाराणा प्रताप
रोटियाँ नज़दीक चलकर आ रही हैं घास की

पूर्व प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने जय किसान, जय जवान का नारा दिया था। साठ के दशक में आई हरित क्रांति ने कृषि क्षेत्र को नया आयाम देने में मदद की। खेती के लिए नई तकनीक, सिंचाई सुविधाओं का विस्तार बेहतर गुणवत्ता के लिए उपलब्ध कराये गए हैं। फिर भी गर्मी का मौसम आते ही किसानों की आत्महत्या की ख़बरें अख़बारों में आने लगती है। इसका मुख्य कारण खेती में पटवन की समस्या है। डीज़ल इतना महँगा होता है कि इसे ख़रीद कर खेत पटाना किसानों के लिए टेढ़ी खीर है। पर, बिना खेत पटाए काम भी तो नहीं चल सकता? स्वभाविक है, उसे ब्याज पर पैसे लेने होते हैं। जो उसके लिए कतई आसान नहीं होता। कृषि बजट 2018 में हर खेत को पानी के आश्वासन के साथ कृषि सिंचाई योजना के लिए 26 सौ करोड़ देने की घोषणा हुई है। महेश कटारे सुगम कहते हैं—

हो गया डीज़ल बहुत महँगा करें तो क्या करें
किस तरह मिट पाएगा, सूखा हमारे गाँव का

जिसका भोगा यथार्थ होता है
उनके वक्तव्य होंगे तीखे से

कहना न होगा कि गाँव की ख़ुशहाली मुखिया व सरपंच के चाटुकारों तक केन्द्रित होती है। ख़ुशहाली एक ऐसा वादा है जो धरातल पर उतरने से पहले ही तिरोहित हो जाता है। स्वभाविक है कि डी एम मिश्र जैसा जनधर्मी ग़ज़लकार अपनी ग़ज़ल के शेरों में इसकी अभिव्यक्ति देने को विवश हो जाता है। शेर देखें—

गाँवों का उत्थान देख कर आया हूँ
मुखिया की दालान देख कर आया हूँ

करें विश्वास कैसे सब तेरे वादे चुनावी हैं
हकीकत है यही सारे प्रलोभन इश्तिहारी है

सुख- सुविधाओं एवं उपलब्धियों की अदम्य प्यास मनुष्य को नैतिक पतन की राह पर ले आई है। येन-केन-प्रकारेण लोग धन-अर्जन में व्यस्त हैं। समाज "समरथ को नहिं दोष गुसाईं" की तर्ज पर जिए जा रहा है। आज की शिक्षा पद्धति युवा वर्ग को सुख-सुविधाओं एवं उपलब्धियों का अंबार लगाने की अंधी दौड़ में शामिल कर असंतोष, निराशा व खीज के दलदल में गिरा देती है। दिन-रात की मेहनत उसकी दिनचर्या को अनियमित तो करती ही है, आचरण भी छीन लेती है। वरिष्ठ ग़ज़लकार व आलोचक एहतराम इस्लाम की ग़ज़लों में इसकी बानगी देखी जा सकती है—

हाय शिक्षा-नीति, सोचा ही नहीं जिसने कभी
वह नई पीढ़ी को कैसा आचरण दे जाएगी

वहीं दिनेश प्रभात शिक्षा के बदले ग़रीब बच्चों को काम करते देख द्रवित हो लिखते हैं—

चमकता है विदेशों में मुरादाबाद का पीतल
धधकती भट्टियों में देश का पर गल गया बचपन

साहित्य समाज से निकल कर आता है। समाज जैसा होगा उसकी पीड़ा, उसकी चिंताएँ भी वैसी ही होंगी। उस समय का साहित्य भी वैसा ही होगा। आज का समय स्व में सिमटा हुआ है। जहाँ अपना सुख, अपनी संपत्ति और अपने परिवार की चिंता हीं वसुधैव कुटुंबकम का भाव कहलाता है। ब्रांडेड कपड़ों के युग में सादा जीवन उच्च विचार ग़रीब सोच के इंसान होने का परिचायक है। फेसबुक पर किसी कविता या ग़ज़ल की चोरी आम हो गई है। कोई भी व्यक्ति आसानी से किसी की भी रचना कॉपी पेस्ट करके अपनी वॉल पर चस्पा कर देता है और उसे अपनी घोषित कर देता है। स्वभाविक है, जो रचनाकार हैं, वे आहत होंगे। इसी भाव को राम मेश्राम जैसे ग़ज़लकार कुछ इस तरह व्यक्त करते हैं—

छपवा ले अपने नाम से चोरी नहीं है ये
कविता किसी की अब कोई पहचानता नहीं

आज के खूंखार समय को रेखांकित करता सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार वशिष्ठ अनूप का

यह शेर द्रष्टव्य है—

हदों के पार होता जा रहा है
समय खूंखार होता जा रहा है

बूढ़े माँ-बाप की सेवा करना हमारे देश की संस्कृति है। यहाँ के बच्चों के आदर्श राम एवं श्रवण कुमार जैसे पात्र रहे हैं। जिन्स वर्ग के अनुसार सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य सामाजिक संरचना में परिवर्तन अर्थात् समाज के आकार, इसकी बनावट, माँगों के संतुलन या इसके संगठन में सामाजिक परिवर्तन से है। आज का समाज एकल परिवार का है। जिसे आदमी न्युक्लियर फैमिली कहते हैं। जिसमें माता-पिता और एक बच्चे होते हैं। इसमें दादा-दादी नाना-नानी जैसे रिश्तों का कोई स्थान नहीं है। हालात इतने ख़राब है कि बच्चे अपने माता-पिता के मरने पर मातम मनाने के बदले उनकी तेरहवीं पर उनके द्वारा छोड़ी गई संपत्ति बँटवारा में लग जाते हैं तथा बीमारी पर हुए ख़र्च का हिसाब-किताब भी करते हैं। सच! दुनिया का सबसे पवित्र रिश्ता स्वार्थ के बलिवेदी पर कब हवन हुआ, पता ही नहीं चला। यह हालात किसी भी संवेदनशील इंसान को झकझोर कर रख देने वाला है। समय इतना विकृत हो चुका है कि काम पर गए व्यक्ति जब तक सकुशल घर नहीं लौटे, उसके सुरक्षित लौटने की आशंका बनी रहती है। कहना न होगा कि यह हालात हरेराम समीप जैसे ग़ज़लकार को बेचैन करने के लिए पर्याप्त है। शेर देखें—

तेरहवीं के दिन बेटों के बीच बहस बस इतनी थी
किसने कितने ख़र्च किए हैं अम्मा की बीमारी में

रैलियों, दंगों, तमाशों की न थी फुर्सत मुझे
मैं दिहारी पर गया था क्यों मुझे गोली लगी

किसान को ही केंद्र में रखकर देवेंद्र आर्य जैसे प्रयोगधर्मी ग़ज़लकार ने कई शेर कहे हैं। वे किसान की आत्महत्या को अनुचित मानते हैं। उनके अनुसार उन्हें संघर्ष का रास्ता अपनाना चाहिए। जान देने से बेहतर है समस्या से निजात पाने का उपाय ढूँढ़ना। यही सही और उचित भी है। गज़लकार सिर्फ़ किसानों से ही दमदार भाषा उगाने की अपेक्षा नहीं करते, बल्कि इस बेस्वाद समय में थोड़ी थकान भी माँगते हैं। ताकि कुछ पल ही सही चैन की नींद आए, सुकून के सपने आए। शेर देखें—

किसानों जान देने से न होगा
उगाओ अपनी इक दमदार भाषा

ये भाग-दौड़, उबले खाने का बेस्वाद समय
नमक के तौर पर थोड़ी थकान दोगे क्या

वहीं सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार अशोक मिज़ाज कहते हैं—

कितना मुश्किल है नए दौर में ज़िंदा रहना
लोग मरने को ही आसान समझ लेते हैं

आज की ग़ज़ल अपने कथ्य की नाज़ुकी व कहन के अंदाज़ की वजह से अलग मुकाम पर आ गई है। जहाँ शब्द बेहद कलात्मक तरीके से कब दृश्य उत्पन्न कर देते हैं, पता ही नहीं चलता। आज के हालात बद से बदतर होते जा रहे हैं। एक तरफ़ जहाँ अमीर और अमीर होता जा रहा है तो दूसरी तरफ़ ग़रीब और ग़रीब होते जा रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अमीरी-ग़रीबी की खाई एक लाइलाज बीमारी है, जो ख़त्म ही नहीं होगी। युवा ग़ज़लकार नज़्म सुभाष के यह शेर देखें—

मुफ़लिसों के वास्ते है योजना
लीजिए चावल सड़े, गेहूँ घुने

वहीं युवा ग़ज़लकार राहुल शिवाय आज के हालात पर व्यथित हो कहते हैं—

रोटियाँ दो-चार दे दो स्वप्न के बदले हमें
भाषणों से पेट नेता जी कभी भरता नहीं

पैसों की हवस ने आदमी को जानवर से भी नीचे ले जाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। स्त्रियाँ पुरुषों की निगाह में महज़ उपभोग की वस्तु हैं। रिश्ते-नाते न जाने कहाँ खोते जा रहे हैं? जब कोतवाल ही चोर हो जाए तो भला कोई जगह सुरक्षित कैसे हो सकती है? सर्वे कहता है कि सबसे अधिक बलात्कार जैसी घटनाएँ परिवार में होती हैं। ऐसे में कहाँ जाएँ? जहाँ वह पूर्ण सुरक्षित हों। शेर देखें—

घर में पलते कामुक पंजे
ज़ख़्मी है शर्मीली दुनिया

वहीं सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार हातिम जावेद कहते हैं—

बोटियाँ नोचकर अभागन की
भूख अपनी मिटा गया कोई

जल का मुख्य स्रोत नदी, तालाब, कुआँ और झीलें हैं। जनसंख्या वृद्धि, औद्योगीकरण आदि ने हमारे जल स्रोतों को प्रदूषित कर दिया है। इसका ज्वलंत उदाहरण हमारी पवित्र नदी गंगा है। पहले गंगा नदी का जल कई वर्षों तक रखने के बाद भी निर्मल रहता था। पर, आज स्थिति ठीक उल्टी है। सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार हस्तीमल हस्ती आज के हालात पर बारीक नज़र रखते हैं। उनके शेर देखें—

मैली न होती गंगा तो फिर होता और क्या
हर कोयले ने अपने यहाँ हाथ धो लिए

आज समाज स्व में सिमटता जा रहा है। लोगों को सिर्फ़ अपने से मतलब है। अपनी चोट पर ख़ूब चीखते-चिल्लाते हैं। पर, बस्तियों के तबाह होने पर भी तटस्थ बने रहते हैं। यह किसी भी संवेदनशील इंसान को हिला कर रख देने वाला है। हस्ती जी का एक शेर और देखें—

बस्ती के क़त्लेआम पर निकली न आह भी
ख़ुद को लगी जो चोट तो दरिया बहा गए

यहाँ उद्धृत शेर समकालीन ग़ज़लों की बानगी भर हैं। हिन्दी ग़ज़ल ऐसे ही समकालीन संदर्भों को समेटे समय, परिस्थिति व संवेदना से लगातार संवाद कर रही है। आम आदमी की पीड़ा का सवाल हो या राजनीतिक, सामाजिक संकट, हिन्दी ग़ज़लें तमाम पीड़ाओं से जूझती ग़ज़ल के व्याकरण को आत्मसात् करती आगे बढ़ रही है। पिछले कई दशक से हिन्दी ग़ज़लों में जो विस्तार देखने को मिल रहा है, यह ग़ज़लकारों की सोच का परिणाम है।

ऐसी कोई भी विषय-वस्तु नहीं है, जो हिन्दी ग़ज़लों से छूटी हुई हो। भाषायी संवेदना के नाम पर बिना विरोध दर्ज कराये हिन्दी ग़ज़ल अपने सफ़र पर है। इसकी दशा व दिशा देखकर यह कहा जा सकता है कि आने वाला समय हिन्दी ग़ज़लों का होगा। समय के साथ हमारी भावी पीढ़ियाँ इसे और समृद्ध करती रहेंगी।

000

कुछ कोरोना पश्चात् की बीमारियों का तुलनात्मक अध्ययन

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

मेरे एक बहुत अच्छे मित्र हैं, नाम बताने में भी कोई हर्ज नहीं है, उनका नाम है रईस शाह। बहुत अच्छे वायलिन वादक हैं। जगजीत सिंह से लेकर चंदन दास तक सब के साथ संगत कर चुके हैं। अपनी ही तरह के हैं, छोटी-छोटी चुटकियाँ छोड़ते रहते हैं। कहते हैं न कि आदमी जितना गुणी होता है, उतना ही उसके अंदर व्यंग्य भाव रहता है, वैसे ही रईस भाई भी हैं। एक दिन मुझे मिले तो कुछ खिन्न नज़र आ रहे थे। मैंने पूछा 'रईस भाई क्या हो गया आज कुछ मूड उखड़ा हुआ है।' कहने लगे 'भाई कोरोना तो चला गया पर अपने पीछे एक बहुत बड़ी बीमारी छोड़ गया।' मैंने हैरत में पड़ते हुए पूछा 'भाई पहेलियाँ मत बुझाइए, सीधे बताइए कौन सी बीमारी की बात कर रहे हैं आप।' कहने लगे 'भाई मत पूछो बीमारी का नाम ही बहुत भयंकर है, उसका नाम 'गवासीर' है।' मैं एकदम हैरत में पड़ गया कि यह कौन सी बीमारी है। उन्होंने खुलासा करते हुए कहा 'भाई कोरोना में जब समय काटने का संकट था, तब लोगों ने नए-नए शौक पाल लिए। सबसे ज़्यादा कॉमन जो शौक पाला गया वह गाना गाने का था। इंटरनेट की कृपा से ऑनलाइन बहुत कैरीओकी संगीत की भरमार है, बस माइक उठाया और गाना शुरू कर दिया। अब हाल यह है कि कोरोना तो जा चुका है, पर गवासीर की चपेट में आ चुके लोग बंद ही नहीं हो रहे हैं। जब देखो, जहाँ देखो, गाना शुरू कर देते हैं।' मैंने कहा 'रईस भाई आपकी बात तो ठीक है, लेकिन इससे आपको क्या परेशानी है, गाने दो लोगों को।' रईस भाई कहने लगे 'भाई मुझे किसी के गाने से कोई परेशानी नहीं है, परेशानी इससे है कि मुझे ही सुना रहे हैं। दुर्भाग्य से संगीत में मेरा थोड़ा बहुत नाम है, इसलिए उनको लगता है कि इस गाने में उन्होंने जो लता जी या किशोर दा या रफ़ी साहब को अभी-अभी पीछे छोड़ दिया है, उस पर मैं अपनी प्रतिक्रिया प्रदान करूँ। मेरी दुविधा यह है कि अगर सच बोल दूँगा, तो एक दोस्त से हाथ धोना पड़ेगा और जो झूठ बोलता हूँ तो हश्र के दिन अल्लाह के साथ लता जी, किशोर दा और रफ़ी साहब को भी तो मुँह दिखाना है। आप ही बताओ क्या करूँ ? मेरे व्हाट्सअप पर गाने के वीडियो भेजते हैं और लिखते हैं- सुन कर अपनी प्रतिक्रिया अवश्य दें। या कभी किसी के घर चला जाऊँ तो पूरा परिवार घेर के बैठ जाता है गाना सुनाने। हालत यह है कि अपने सबसे पसंदीदा गाना 'तूने ओ रंगीले कैसा जादू किया' को अब मुझे सुनने की इच्छा भी नहीं रही, क्योंकि कुछ दिनों पहले एक आंटीजी ने ऐसे सुर में सुनाया कि सारे सुरों ने आत्महत्या कर ली। बताओ क्या करूँ इस गवासीर का ?' मैंने कहा 'रईस भाई आप संगीत वाले हो, तो अपनी सुना रहे हो, मैं अपनी किस से कहूँ ? मेरा भी तो यही हाल है। हर दिन व्हाट्सअप पर, मैसेंजर पर कविताएँ, कहानियाँ चली आ रही हैं, पढ़िए और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कीजिए। प्रतिक्रिया प्रदान कर दो तो कहेंगे 'जलते हैं हम से' और अगर न व्यक्त करो तो 'घमंडी हैं'। हालत तो मेरी भी आप के जैसी ही है। मगर आपमें और मुझमें अंतर यह है कि संगीत में यह बीमारी अभी कोरोना के बाद आई है, हमारे साहित्य में यह 'छपासीर' बीमारी बहुत पहले से है। मैं तो जब से सोशल मीडिया आया है, तभी से इससे परेशान हूँ। मेरी कविता छपी, पढ़िए, मेरा व्यंग्य छपा, पढ़िए, मेरी कहानी छपी, पढ़िए, मेरी किताब छपी, पढ़िए। जैसे आपके यहाँ गवासीर आई है, वैसे हमारे यहाँ बहुत पहले से छपासीर है। इसके आगे आपके यहाँ का गवासीर वायरस कुछ भी नहीं है। आप अगर मेरा व्हाट्सअप या मैसेंजर खोल कर देखोगे अभी, तो बस यही मिलेगा। यह मत समझिए कि आप अकेले हैं जो परेशान हैं।' रईस भाई ने एक ठंडी साँस छोड़ी और बोले 'सोचता हूँ अपना पुराना बैंड बजाने का काम ही शुरू कर दूँ फिर से।' मैंने कहा 'आप तो बैंड बजा लोगे, मैं कहाँ जाऊँगा ? छपासीर वाले तो यहाँ मेरा ही बैंड बजाने पर तुले हैं।' रईस भाई तो चले गए लेकिन मुझे पीछे छोड़ गए, सोचता हूँ कि उनको ही गवासीर का इलाज मिल जाए, तो उसी दवा से छपासीर वालों का भी इलाज करवा लूँगा। दुआ कीजिए उनको यह दवा समय से मिल जाए...।

सादर आपका ही

पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

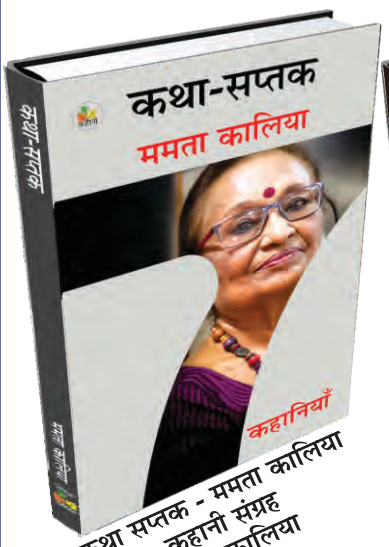

कथा सप्तक - ममता कालिया
कहानी संग्रह
ममता कालिया

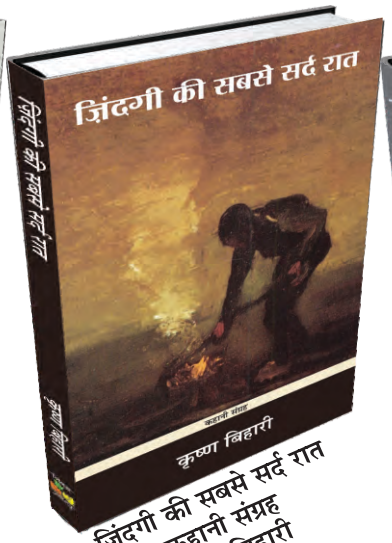

ज़िंदगी की सबसे सर्द रात
कहानी संग्रह
कृष्ण बिहारी

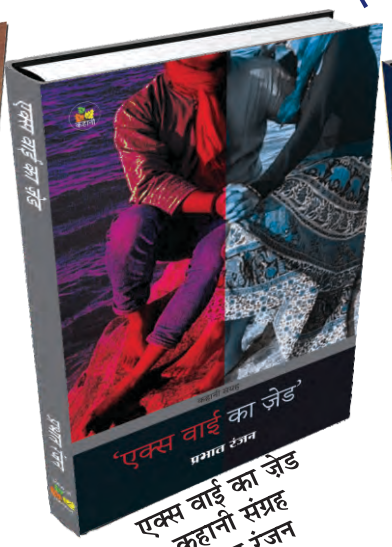

एक्स वाई का ज़ेड
कहानी संग्रह
प्रभात रंजन

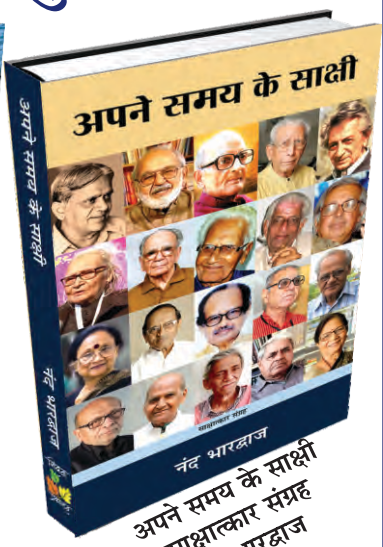

अपने समय के साक्षी
साक्षात्कार संग्रह
नंद भारद्वाज

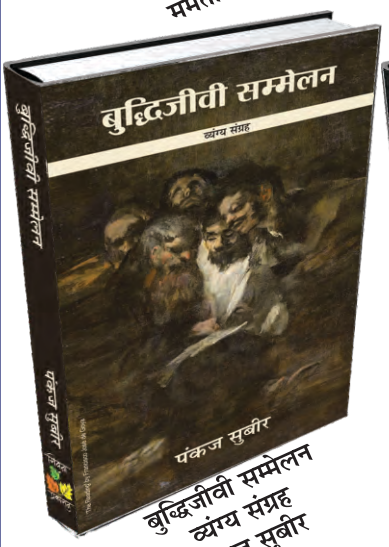

बुद्धिजीवी सम्मेलन
व्यंग्य संग्रह
पंकज सुबीर

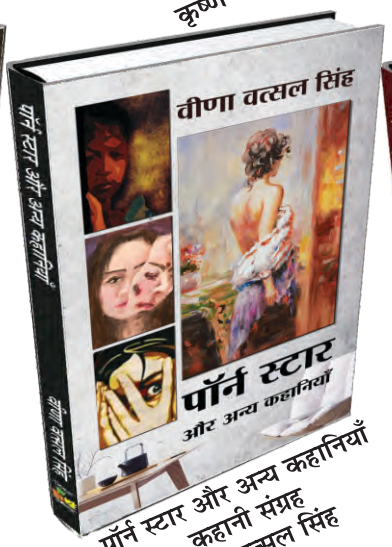

पॉर्न स्टार और अन्य कहानियाँ
कहानी संग्रह
वीणा वत्सल सिंह

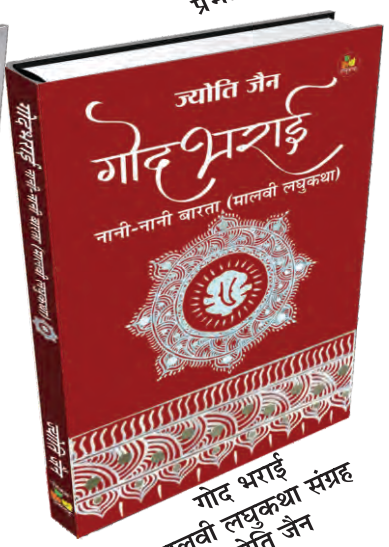

गोद भराई
मालवी लघुकथा संग्रह
ज्योति जैन

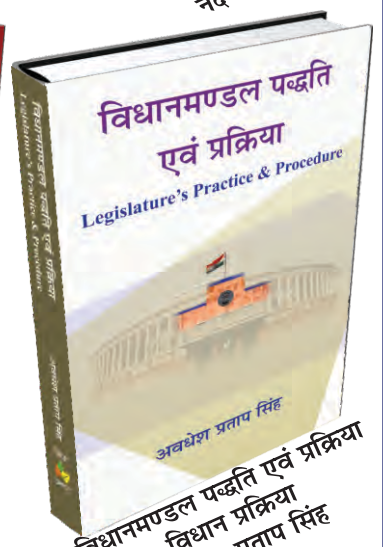

विधानमण्डल पद्धति एवं प्रक्रिया
विधान प्रक्रिया
अवधेश प्रताप सिंह

समुंदरों के पार
यात्रा वृत्तांत
चौधरी मदन मोहन समर

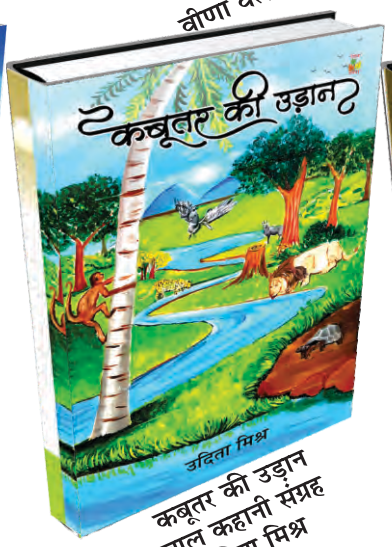

कबूतर की उड़ान
बाल कहानी संग्रह
उदिता मिश्र

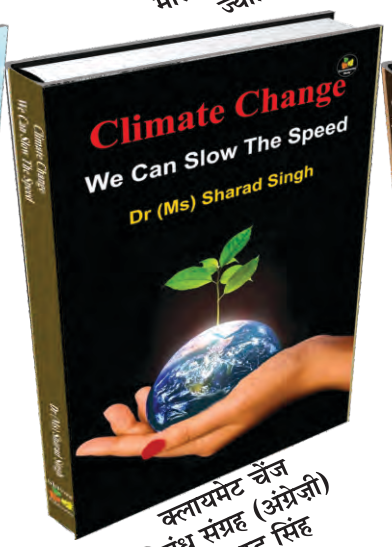

क्लायमेट चेंज
निबंध संग्रह (अंग्रेज़ी)
डॉ. शरद सिंह

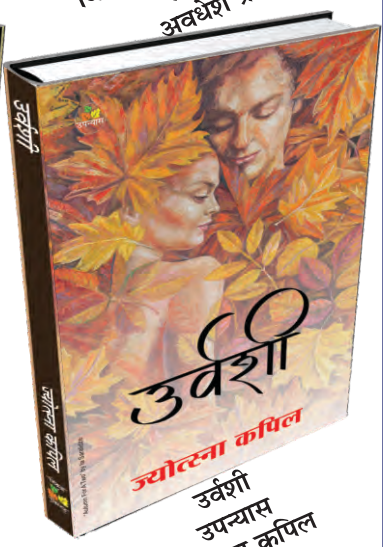

उर्वशी
उपन्यास
ज्योत्स्ना कपिल

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
WhatsApp +91-8819806162
twitter https://twitter.com/shivnac
facebook https://www.facebook.com/shivna.prakashan
YouTube https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

Vibhom Swar ● Quarterly ● January-March 2023 ● RNI No. MPHIN/2016/70609 ● ISSN2455-9814

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2021-22 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित, फ़िल्म अभिनेता यशपाल शर्मा, समाजसेवी श्री अखिलेश राय तथा शिक्षाविद् डॉ. अनीता भालेराव।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2021-22 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित, फ़िल्म अभिनेता यशपाल शर्मा, समाजसेवी श्री अखिलेश राय तथा शिक्षाविद् डॉ. अनीता भालेराव।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2021-22 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित, फ़िल्म अभिनेता यशपाल शर्मा, समाजसेवी श्री अखिलेश राय तथा शिक्षाविद् डॉ. अनीता भालेराव।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2021-22 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित, फ़िल्म अभिनेता यशपाल शर्मा, समाजसेवी श्री अखिलेश राय तथा शिक्षाविद् डॉ. अनीता भालेराव।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।